प्रकाशक :
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

●

पहली बार : ३
नवम्बर, १९५९
मूल्य : डेढ़ रुपया

●

मुद्रक :
ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ५५७ -११

भूमिका

भारत में प्राय हर आदमी समाजवादी होने का दावा करता है। यही स्थिति एशिया और अफ्रीका के अधिकतर भागों की भी है, जहाँ अश्वेतों को पुन स्वतन्त्रता मिली है। फिर भी सभी लोगों के समाजवादी बनने के साथ साथ स्थिति यह है कि समाजवाद को वे अच्छी तरह से और बारीकी के साथ नहीं समझते।

समाजवादी विचार और आन्दोलन प्राय डेढ सौ वर्षों से विकसित हो रहा है। उसके अध्ययन से हमें नयी अन्तर्दृष्टि और अधिक गहन दृष्टिकोण मिल सकता है। एशिया के देशों के लिए इस बात की आवश्यकता है और उन्हें इस बात का अवसर प्राप्त है कि वे फिर से सोचें और समाजवाद तथा अपनी विशेष प्रकार की स्थिति को खूब अच्छी तरह से समझकर समाजवाद का भविष्य निश्चित करें। समाजवाद को जहाँ सार्वलौकिक दर्शन बनाना है, वहीं एशिया की स्थिति के प्रकाश में उसकी पुनर्व्याख्या हमें इस बात का अधिकारी बनाती है कि हम सामान्य तौर पर एशियाई समाजवाद की बात करें।

मैंने इन अध्ययनों की शुरुआत कारावास के समय की थी। जेल में मैंने जो कुछ लिखा, उसके सभी भाग इस पुस्तक में नहीं हैं। मैंने शुरू में छह अध्याय रखे हैं

(१) समाजवाद का उदय,
(२) उतोपियावाद का उफान,
(३) सर्वहारा दर्शन,
(४) सशोधनवाद की पुनरावृत्ति,
(५) खेतिहर और समाजवाद और
(६) पुनर्निर्माण का अर्थशास्त्र।

प्रथम चार अध्यायों में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है उसे अन्तिम दो अध्यायों में एक दृष्टिपथ में रखने की कोशिश की गयी है।

मैं समाजवाद का विद्यार्थी रहा हूँ और उसके लिए लगभग तीस वर्षों से काम कर रहा हूँ। निश्चय ही मेरे कुछ मत हैं और मैंने जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है उसके स्वरूप-निर्धारण में उन मतों का प्रभाव है। किन्तु मैंने यही प्रयत्न किया है कि भूत के उपयोगी अनुभवों से काम की चीजें निकालूँ और भविष्य के विचारों में न खो जाऊँ।

मैंने समाजवाद के उद्देश्यों और तरीकों दोनों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। मेरा खयाल है कि इस विचारण और विश्लेषण की पूर्ति के लिए कम-से-कम छः और अध्यायों की आवश्यकता होगी। इस पुस्तक में जो प्रारम्भिक अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं, वे मेरे विचाररूपी भवन की आधारशिला हैं।

—अशोक मेहता

प्रकाशकीय

समाजवाद की ओर जनता का आज विशेष रूप से आकर्षण हो रहा है, पर कठिनाई यही है कि उसे लोग भली प्रकार समझते नहीं। श्री अशोक मेहता ने समाजवाद का जैसा गम्भीर अध्ययन किया है, वह किसीसे छिपा नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अपनी दृष्टि से समाजवाद के उद्देश्यों और उसके साधनों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि खुले मस्तिष्क से साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय जैसी विश्व को प्रभावित करनेवाली विचारधाराओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाय। हम प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टि से प्रकाशित कर रहे हैं। इससे एशियाई समाजवाद की विचारधारा को समझने में पाठकों को सहायता मिलेगी और वे स्वतन्त्र रूप से चिन्तन की ओर प्रवृत्त हो सकेंगे। यह आवश्यक नहीं है कि हम श्री मेहता के सभी विचारों से सहमत हों, परन्तु यह निर्विवाद है कि इससे हमारे स्वतन्त्र चिन्तन को बल मिलेगा और यह तो है ही कि—'वादे वादे जायते तत्त्वबोध'।

श्री मेहता ने यह पुस्तक प्रकाशित करने के लिए हमें अनुमति दी, इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

●

समाजवाद का उदय : १ :

समाजवाद का विद्यार्थी मौलिक दृष्टि तभी प्रदान कर सकता है, जब वह अपने को बराबर नया बनाये रखे और इसके लिए उसका नवीन विचारधाराओं से निरन्तर अवगत रहना आवश्यक है। खाली समय में, जैसे कारावास-काल में, भूतकाल के बृहत् साहित्य के गवेषणात्मक अध्ययन से अधिक उपयोगी और कोई काम नहीं हो सकता। समाजवाद का श्रेष्ठ साहित्य लाभदायक अनुभव प्राप्त कराने का उत्तम साधन है।

पढने के लिए सामग्री इतनी अधिक है, धारा इतनी विस्तृत एवं विशाल हो गयी है कि संक्षेपण की लालसा बराबर बनी रहती है। पचाना और सार-संग्रह करना—ये दो समानान्तर उत्कण्ठाएँ हो जाती हैं। अनातोले फ्रांस की 'ला वाई लिटरेरे' के एक खण्ड की एक छोटी-सी कहानी यहाँ उल्लेखनीय है। एक अल्पवयस्क राजा ने सिंहासनारूढ होने के बाद अपने राज्य के विद्वानों को बुलाया और उनसे कहा कि आप मेरी सहायता और पथ प्रदर्शन के लिए संसार की श्रेष्ठ पुस्तकों से ज्ञान का निचोड निकालिये। वर्षों की शोध के बाद विद्वान् लोग पाँच सौ पुस्तकें लेकर उपस्थित हुए। तब तक राजा अपने काम में इतना लीन हो चुका था कि इतने व्यापक अध्ययन के लिए उसके पास समय ही नहीं था। और भी शोध होने से पुस्तकों की संख्या घटकर पचास हो गयी, किन्तु तब तक राजा वृद्ध हो चुका था और इतनी ही पुस्तकें उसके लिए बहुत अधिक थीं। उसने कहा कि विश्व के ज्ञान के सारतत्त्व को निचोडकर केवल एक पुस्तक में संगृहीत कर दिया जाय। यह तत्त्वसंग्रह होने के पूर्व ही विद्वान् और जिज्ञासु राजा इस लोक से चल बसे। फिर भी सारे ज्ञान का सारांश रखनेवाली पुस्तक का स्वप्न बना हुआ है।

सन् १८४२ में लॉरेंज वॉन स्टाइन से लेकर १९४९ में लेखक के समय तक समाजवाद का गुणगान करनेवाली अगणित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जैसा कि सिजविक ने इसी प्रकार के एक दूसरे सन्दर्भ में कहा है इन 'रचनाओं' को 'ज्ञान का मानवीकरण' कहा जा सकता है, तथापि वे विलक्षण स्वप्न की उत्कट प्रतिक्रिया भी हैं। 'इतिहास' और 'दर्शन' प्रस्तुत करनेवाली सभी पुस्तकें विभिन्न लेखकों के विचारों और विभिन्न आन्दोलनों के अनुभवों को कालक्रम अथवा वर्ग के अनुसार एक साथ गूँथने तक सीमित रह गयी हैं। वे बदलते हुए इस नित वैचारिक भूमिका का संकेत करती हैं ऐसा प्रतीत होता है कि इसे समझने का कोई प्रयास नहीं किया गया। बदलते हुए 'रूप' में क्या कोई स्थिर 'तत्त्व' है? अथवा विचारों का क्या एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्या वे वर्ग विशेष के खर पतवार की तरह उगते हैं या तर्क और अनुभव की कड़ी से जुड़े हुए हैं?

कुछ वर्ष पूर्व मैंने कतिपय मूलभूत तत्त्वों के आधार पर समाजवाद का विश्लेषण करने और उन तत्त्वों के साथ बदलने के आधार पर समाजवाद के विकास की व्याख्या करने का प्रयास किया था। यह प्रयास कितना उपयुक्त रहा इसे 'डेमोक्रेटिक सोशलिज्म' (लोकतान्त्रिक समाजवाद) के पाठक ही समझ सकते हैं। अब मुझे लगता है कि कतिपय प्रवृत्तियों उनकी चुनौतियों और प्रतिक्रिया की दृष्टि से समाजवाद की धारा का अध्ययन विश्लेषण का अधिक उपयोगी साधन है। विभिन्न समाजवादी विचार वातावरण बदलने से बहुत थोड़ा बदलते हैं, उन पर विचारकों की प्रकृति और विशेषता की भी प्रतिक्रिया होती है। इन दोनों में पारस्परिकता की एक निश्चित क्रम है। इस क्रम को समझना बड़ा आनन्ददायक अनुभव है।

जहाँ तक ज्ञात है, शुरू में 'समाजवाद' शब्द का सबसे पहला प्रयोग सन् १८ ३ में इटली में हुआ किन्तु यह बाद के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले 'समाजवाद' से बिलकुल भिन्न था। १८२७ में 'समाजवादी' शब्द का

प्रयोग 'कोऑपरेटिव मैगजीन' में रॉबर्ट ओवेन के अनुयायियों के लिए
किया गया। 'समाजवाद' शब्द का पहला प्रयोग
'समाजवाद' शब्द १८३३ में नियतकालिक फ्रेंच पत्र 'ल ग्लोब' में सेण्ट
साइमन के सिद्धान्त की व्याख्या और विशेषता प्रकट
करने के लिए हुआ। उसके बाद के १२० वर्षों में इस शब्द का न जाने कितना प्रयोग हुआ है, किन्तु इतने भिन्न-भिन्न अर्थों में कि इसका सामान्य आशय समझने के लिए गम्भीर विवेचन की आवश्यकता है।

प्रायः प्रारम्भ से ही यह शब्द किसी-न-किसी विशिष्टतासूचक या अर्थ को सीमित करनेवाले विशेषण के साथ प्रयुक्त होता रहा है, कतिपय विशेषणों की रचना विरोधियों ने कुछ मतों को तुच्छ दिखाने के लिए की। मार्क्स द्वारा अपने घोषणापत्र में प्रयुक्त 'सामन्तीय समाजवाद' और 'पेटी बुर्जुआ समाजवाद' इसका उदाहरण है। क्षेत्र को सीमित करनेवाले बहुत से शब्द जान-बूझकर चुने गये, जैसे 'वास्तविक समाजवाद', 'राज्य समाजवाद' 'क्रिश्चियन समाजवाद', 'फैबियन समाजवाद', 'शिल्पी संघ (गिल्ड) समाजवाद' 'लोकतान्त्रिक समाजवाद'। जैसा कि ऐसे मामलों में आम तौरपर होता है, विशेषण अपने विशेष्य को हड़प लेता है—सीमित करनेवाले शब्दों के न जाने कितने सूक्ष्म अन्तरों में मूलभूत सत्य ही विलुप्त हो जाता है।

स्थिति इसलिए और भी जटिल हो गयी है कि काल और परम्परा ने 'समाजवाद' शब्द में अर्थ की सारी वर्णच्छटा भर दी है। प्रोफेसर कोल ने प्रारम्भिक समाजवादी विचार का पाण्डित्यपूर्ण पर्यालोकन इन शब्दों में किया है "अधिकांश 'वामपंथी' एकाधिकार का दोष प्रकट करने में एकमत थे, किन्तु एकाधिकार क्या है, इस विषय में उनमें मतभेद था। कुछ लोग सभी बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों को एकाधिकारपूर्ण मानते थे, क्योंकि उन सम्पत्तियों के कारण ही कुछ लोगों को दूसरों पर अनुचित अधिकार प्राप्त था, जब कि अधिकतर लोगों ने वैधताप्राप्त विशेषाधिकार को एकाधिकार माना और उसे सामन्तवादी अधिकारों और आर्थिक

दस्तकारी की पुरानी प्रथाओं के साथ रखा। कुछ लोगों ने बड़े पैमाने के कारखानों और लम्बाकर रेलवे नहरों और दूसरे 'उपयोगी उद्योगों' में धन लगाने की बड़ी-बड़ी परियोजनाओं का पक्ष लिया। दूसरे लोग उद्योग-विरोधी थे, उनका विश्वास था कि छोटे-छोटे समुदायों के अलावा और किसी रूप में लोग सुखी नहीं रह सकते और न परिवार की खेती या दस्तकारी के छोटे कारोबार के अलावा और कहीं सन्तोषप्रद काम ही कर सकते हैं। कुछ लोग सम्पत्ति को बाँटने के पक्ष में थे, तो दूसरे लोग उसे सामुदायिक या और किसी प्रकार के सामूहिक स्वामित्व में रखने के हिमायती थे। कुछ लोग चाहते थे कि सभी व्यक्तियों की आय एक हो, दूसरे लोग 'प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार' वितरण चाहते थे और इससे भी आगे कुछ लोगों का आग्रह था कि पारिश्रमिक समाज को दी गयी सेवा के अनुपात में होना चाहिए। आर्थिक उत्पादन के लिए आर्थिक असमानता की किसी-न-किसी प्रकार की व्यवस्था को वे कार्य करने के लिए उत्साह प्रदान करने की दृष्टि से आवश्यक मानते थे।"*

ये अन्तर क्या आकस्मिक थे, ये विभिन्न लेखकों और विचारकों के एकांगी दृष्टिकोणों के कारण हुए या इनमें कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध या हेतु-मूलक समरसता भी है।

समाजवाद के विद्यार्थियों का यह प्रयास रहा है कि अनेक भिन्न भिन्न और व्यापक रूपों में प्रचलित समाजवादी विचारों को किसी ढाँचे में बाँधा जाय। इनमें सबसे प्रसिद्ध प्रयास फ्रेडरिक एंगेल्स का था जिन्होंने समाजवाद को उटोपीय और वैज्ञानिक दो वर्गों में बाँटा। काफी समय से समाजवादी विचार को इन्हीं दो वर्गों की दृष्टि से देखा जाता रहा है। यह दृष्टि केवल विचार ही नहीं आन्दोलन के क्षेत्र में भी है। यह विभाजन रेखा १८४८ में खींची गयी। उसके पहले जो कुछ भी था वह उटोपीय समाजवाद था और उसके बाद इसी अर्थ में जो कुछ हो रहा है, वह

* जी डी एच कोल 'सोशलिस्ट थॉट' खण्ड १, पृ १–२।

वैज्ञानिक समाजवाद है। ऐसी स्थिति में समाजवादी विचार का कोई भी नया मूल्यांकन नये दृष्टिकोण से होना चाहिए।

समाजवाद की कल्पना कभी-कभी विचारों की ऐसी त्रिवेणी के रूप में की जाती है, जो इग्लैंड के आर्थिक विचार, जर्मनी के दार्शनिक अनुभवों और फ्रांस के समाजशास्त्रीय सूत्रों को मिलाकर बनी है। ऐसे कथन में विशेष विषय को उदाहरण बनाकर व्यापक नियम का मन को भानेवाला निष्कर्ष निकालने जैसा ही सत्य है और वह मार्क्सवाद के सम्बन्ध में ही सार्थक है। औद्योगिक क्रान्ति की लहर पहले इग्लैंड में आयी। विकास की प्रक्रिया में उसकी शक्ति का इतना व्यय हुआ कि उसे दार्शनिक चिन्तन का अवसर ही नहीं मिला। बाद के वर्षों में जब इसी तरह का और शायद इससे भी बड़ा परिवर्तन सयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ, तो यन्त्र और शिल्पकला का स्थान प्रधान हो गया और विचार का स्थान गौण रह गया। जमनी में १९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जीवन निष्प्रवाह हो गया था। सामाजिक प्रश्नों की चिन्ता करनेवाले विचारकों में भी शून्यता आ गयी थी। प्रत्यय (विचार) और भौतिक सत्य में एक-दूसरे के गुणों का आदान प्रदान शायद ही कभी होता था। समाजवादी विचार के सृजन की उत्तम भूमि फ्रांस था। उस नर्सरी में प्रत्येक भावी परिणति बीजरूप में विद्यमान थी। अकेले फ्रांस में विचार और आर्थिक व्याख्या दोनों एक साथ ऐसे प्रकट हुए कि समाजवाद के सम्बन्ध में भारी खण्डन-मण्डन की लहर आ गयी, विद्वान् सड़कों पर रास्ता रोकने लगे, मजदूर गम्भीर विचार करने और लिखने लगे, धर्मवादी मूर्त्तिपूजा के विरोधी बन गये और इजीनियर समाज-निर्माण का स्वप्न देखने लगे। इससे विचारों और सामाजिक शक्तियों में अन्योन्य प्रतिक्रिया का आकर्षक क्रम प्रारम्भ हुआ। सत्य और सिद्धान्त एक-दूसरे के साथ आनन्दपूर्वक कदम से-कदम मिलाकर चलने लगे। समाजवाद की अधिकांश समस्याओं के हल फ्रांस में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं।

समाजवाद उन बड़ी घटनाओं की असाधारण कृति था, जो दो

बड़ी क्रान्तियों के फलस्वरूप हुई। फ्रांसीसी क्रान्ति ने अनेक पुरानी परम्पराओं और विचारों को उखाड़ फेंका और राजनीतिक एवं सामाजिक प्रयोगों तथा विचार की महत्त्वपूर्ण धाराओं के लिए भूमि तैयार कर दी। इसके साथ ही औद्योगिक क्रान्ति यन्त्रों तथा शिल्पकलाओं में सुधार और उद्योग तथा कृषि में व्यापक दूरगामी तथा आविष्कारों की सृष्टि कर रही थी। जीवन एक प्रवाह बन गया और विचार उथल की अवस्था में था। पौराणिक समुद्रमंथन की कथा की तरह इस मंथन से भी अमृत और विष दोनों निकले और समाजवाद का आविर्भाव हुआ।

समाजवाद के अन्तर्मन्थन के दो प्रथम स्वर निकले थे वो थे : प्रथम था उस समय व्याप्त असमानता निर्ममता और अहस्तक्षेप सिद्धान्त (Laissez-faire) की अत्याचारी व्यवस्था का दो प्रतिक्रियाएँ विरोध और दूसरा था सार्वजनिक मामलों और चिन्तन में सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों के मुकाबले राजनीतिक प्रश्नों को प्रमुखता देने का विरोध। समाजवाद अपनी जड़ों पर 'सामाजिक प्रश्न' की भावना लेकर पैदा हुआ। यही इसका उसका गौरव हो गया और उसकी सीमा भी बन गया।

समाजवादियों के शुरू के दशकों में कतिपय एक-जैसी विशेषताएँ थीं। उनकी सामाजिक रुचि एक-जैसी थी। स्वभावतः मुख्य विषय 'सामाजिक प्रश्न' था। इसकी भिन्न भिन्न ढंग से अभिव्यक्ति हुई। और था—जीविका के लिए व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धापूर्ण संघर्ष के बजाय सहकार पर, छोटे और बड़े का भेद रखनेवाले अधिकार के बजाय समतापूर्ण जीवन पर। राजनीति में आमतौर पर विश्वास नहीं था और राजनीतिज्ञों के बजाय उत्पादकों के माध्यम से शासन चलाने के विचार को मान्यता दी जाती थी। व्यक्तियों के सामाजिक और आर्थिक पक्ष में एक नयी रुचि थी। इस आधार पर लोगों को संगठित करके राजनीति से राज्य और नगरों से बचा जा सकता था। सभी क्रान्तियाँ, तदनन्तर मानवों की नयी व्यवस्था का आधारस्तम्भ होने की आशा की जाती

थी। यह ढग काफी हद तक स्वेच्छाप्रेरित और आशावादी था। यदि लोगों के समक्ष प्रदर्शित किया जा सके कि अच्छाई क्या है, तो वे उसे ग्रहण कर लेंगे, जैसा कि विलियम गाडविन (१७५६-१८३६) ने अपनी पुस्तक 'इन्क्वायरी इनटू पोलिटिकल जस्टिस' में बहुत अच्छे ढग से तर्क प्रस्तुत किया है, अच्छाई को देखना उसे चाहना है। ये समाजवादी व्यक्तियों को पूर्ण रूप से विवेकशील मानते थे, जैसे वे ज्ञान के ही पुत्र हों।

उपर्युक्त दृष्टिकोण रखनेवालों में अधिकाश ऐसे छोटे छोटे स्वतन्त्र स्थानिक समाजों के पक्ष में थे, जो अपनी सारी व्यवस्था अपने आप करें। इससे दबाव घटकर कम-से-कम रह जायगा और लोकतन्त्र की अपने उस श्रेष्ठ रूप में प्रतिष्ठा होगी, जिसकी आधारशिला निर्बाध और पूर्ण विचार-विमर्श द्वारा स्थापित सहमति है।

गाडविन जैसे व्यक्तियों का कथन में निहित तर्क में पूर्ण विश्वास था। क्रान्ति को केवल व्यक्तियों का मस्तिष्क प्रभावित करने की जरूरत है, अकेले ज्ञान से ही सामाजिक परम्पराओं में परिवर्तन हो सकता है। इसी कारण तथा मूल्य ३ गिनी होने से विलियम पिट ने गाडविन की पुस्तक के बारे में कहा था कि 'वह कभी भी क्रान्तिकारी परिवतन नहीं कर सकती।' बाद में गाडविन ने तर्क की इस सीधी-सादी धारणा में विशुद्ध बुद्धि की दृष्टि से परिवर्तन किया और युक्तिसगत आचरण में आवेगों के योगदान को भी शामिल किया। यह छूट इसलिए जरूरी हो गयी कि गाडविन ने अनुभव किया कि विवेक रूपी स्वाभाविक प्रकाश समाज की विषम और निष्प्राण परम्पराओं के कारण मन्द पड़ जाता है।

इस युग के थोड़े से भी सुधारक यह नहीं सोचते थे कि दृष्टान्त उपदेश से अच्छा होता है। आदमियों में भले ही विचार-शक्ति न हो, उनके चारित्रिक रूप और विचार एव कथन मे भले ही साम्य न हो, किन्तु आदर्श का निश्चय ही प्रभाव पड़ता है। साम्यवाद का उपदेश देने की दृष्टि से ही नहीं, अपितु अपने उतोपिया को मूर्त रूप देने का प्रयास करने

की दृष्टि से भी प्रयत्न कैबेट (१७८८-१८५६) प्रायः उपर्युक्त आदर्श थे। ओवेन, फोरियर और कैबेट ने स्वयं या अपने अनुयायियों के द्वारा उस समय अमेरिका के विरल आबाद क्षेत्रों में अनेक बस्तियाँ बसाकर संसार के समक्ष अपने विचारों की उपयुक्तता के प्रदर्शन का प्रयास किया।

संसार से अलग अपना निराला समाज दो प्रकार के ही व्यक्ति स्थापित करते हैं। चारों ओर तूफानी उथल-पुथल मचा देनेवाली बाढ़ों में वे चट्टान पर मकान बनाना या अनुकम्पा के द्वीपों की रचना करना चाहते हैं। पहली तरह के लोग निराशावादी हैं। वे समझते हैं कि संसार दुष्ट है, इससे वे जितनी ही दूर बच जायँ उतनी उतनी ही रक्षा होगी। अमानावादी या रैपवादी बस्तियाँ इसी कोटि की थीं। इन धार्मिक समुदायों को ऐसे व्यक्तियों ने स्थापित किया था जो इस संसार से दूर रहना चाहते थे। उनकी समस्या का समाधान इस संसार से नहीं था। दूसरी कोटि में ऐसे लोग हैं जो प्रबुद्ध आशावादी हैं, जो आदर्शभूत सिद्धान्तों के अनुरूप समाज स्थापित करना चाहते हैं और यूटोपिया के लोक में रहते हैं। पहली कोटि के लोग जहाँ मानव की निर्बलता के सम्बन्ध से डरते थे, वहाँ दूसरी कोटि के आदमियों में ज्ञान रहने की पिपासा थी। वे अपने को पहाड़ी पर स्थित प्रकाशस्तम्भ की तरह समझते थे—दूसरे लोगों को केवल इस प्रकाश को देखने और उधर सिर करने की जरूरत थी। वे अनुमान करते थे कि इतिहास की शक्ति स्वयं ही सुधारकों की पुस्तकों में वर्णित आदर्शों के अनुरूप अपनी नव-रचना करने में सहायता देगी।

इनके अलावा व्यक्तियों की एक तीसरी कोटि भी है। इनके लिए काम उसी सीमा तक सार्थक है जिस सीमा तक वे उसे जीवन में साकार करें और जिस सीमा तक वे उसके द्वारा दृष्टि और जीवन, आदर्श और यथार्थ अस्तित्व को एक जीवनप्रद परिणाम का रूप दे सकें। उन के लिए जीना अन्तर की आवाज के अनुसार आचरण करना ही सभी सच्चे समाजवादी साधकों और अपने मन की सार्थकता

में डूबे हुए विद्रोहियों की उत्कण्ठा रही है। उनके लिए सत्यमात्र तर्क से अनुभव की जानेवाली चीज नहीं है, ऐसा एकपक्षीय दृष्टिकोण सत्य को एकदम शक्तिहीन बना देता है और वह मनुष्य के खिलवाड की वस्तुमात्र रह जाता है। महत्त्वपूर्ण सत्य केवल जीवन में प्रकाशित हो सकता है, उसे मूल्यसम्मत जीवन द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है। निराशावादी संसार से दूर भागना चाहते हैं और आशावादी संसार के लिए दृष्टान्त बनना चाहते हैं, सामाजिक साधक केवल अपने प्रति ईमानदार रहना और लाखों व्यक्तियों के बीच अपने सत्य को जीवन में उतारना चाहते हैं। समाजवादी आम तौर पर आशावादियों और सामाजिक साधकों (जो कभी नहीं स्वीकार करेंगे कि हम ऐसे हैं) की पंक्ति से आते हैं।

फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रान्तियों के फलस्वरूप जो सामाजिक, राजनीतिक और शिल्पिक परिवर्तन हुए, उन्हींसे समाजवाद के आस्था-सूत्रों का जन्म हुआ। इन आस्थासूत्रों में मौलिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न दो प्रवृत्तियाँ मिलेंगी। एक प्रवृत्ति नये परिवर्तनों और प्रारम्भिक सफलताओं को सुदृढ करना चाहती है, दूसरी प्रवृत्ति नयी शक्तियों को दौडाकर पूरा विकास-मार्ग तय कराना चाहती है।

विज्ञान का समाज में नयी शक्ति के रूप में उदय हो रहा था। उत्पादन के नये साधन न केवल आर्थिक सम्बन्धों में, अपितु सामाजिक जीवन में भी क्रान्ति कर रहे थे। सेण्ट साइमन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस प्रभाव को समझा और नये स्वर का स्वागत किया। सेण्ट साइमन और उनके अनुयायियों का बड़े पैमाने के संगठन और नियोजन में पूरा विश्वास था। उनका लक्ष्य राष्ट्रीय राज्यों को ऐसे बड़े पैमाने के उत्पादक-संस्थानों में बदलना था, जिन पर प्राविधिक और व्यावसायिक योग्यता रखनेवाले व्यक्तियों का नियन्त्रण हो। वे समझते थे कि समाज के साथ विज्ञान के गठबन्धन से बहुप्रतीक्षित उतोपिया मूर्त रूप लेगी।

इसके विपरीत दृष्टिकोण चार्ल्स फोरियर और कुछ दिन बाद लैमेनेस और प्रूधों का था। उनके विचारों में कृषि को प्रधानता थी। सेण्ट

साइमन उद्योगों के श्रेष्ठ लोगों को महत्त्व देना चाहते थे और इन लोगों ने टेक्नोक्रेसी के स्वामित्व का पक्ष लिया। भारी पैमाने के उत्पादनों में उनका अभिप्राय था और उन्होंने विज्ञान का उसी सीमा तक स्वागत किया जिस सीमा तक वह उत्पादन के लिए सहायक हो न कि उत्पादन के लिए। सेण्ट साइमन के मत को माननेवाले भावी औद्योगिक समाज को सभी बुराइयों और अन्यायों का निराकरण करनेवाला मानते थे, जब कि दूसरे वर्ग के लोगों का विश्वास था कि उत्तम और सौन्दर्य सामाजिक व्यवस्था विकसित कृषि-व्यवस्था से ही स्थापित हो सकती है। यह ऐतिहासिक उलझन है। भिन्न-भिन्न देशों में इस प्रकार की स्थितियों में बार-बार ऐसे विकल्प होते हैं।

सेण्ट साइमन (१७६०-१८५२) का मानव प्रगति की निश्चितता में पक्का विश्वास था। उनकी मान्यता थी कि प्रगति वैज्ञानिकों और प्राविधिकों द्वारा की गयी उन्नति से ही सम्भव होती उद्योग-युग है, किन्तु निश्चय सामाजिक परम्पराएँ उसका मार्ग रोक देती हैं। इस प्रकार इतिहास एक-के बाद एक रचना और आलोचना उत्थान और पतन के युग का रूप देता है। सामाजिक ढाँचा अपने को इस प्रगति के अनुकूल नहीं बना पाता तब तात्कालिक व्यवस्था का विरोध और विनाश पूर्णरूप से आवश्यक हो जाता है। अन्ततः वह समय आ गया जब क्रान्तिकारी बेकन के स्वप्न और कल्पनाएँ साकार हो सकती थीं। 'न्यू अटलाण्टिस' अर्थात् बेकन की कल्पना का आदर्श समाज पुराने यूरोप में भी सम्भव था। बेकन के उटोपिया की तरह सेण्ट साइमन शक्ति को वैज्ञानिकों शिल्पियों और उद्योग चलानेवालों के हाथ में रखना चाहते थे। वे 'शासन करनेवाली सत्ता' के स्थान पर 'प्रशासन करनेवाली' सत्ता चाहते थे। राजनीति, राजनीतिज्ञों और लोकतन्त्र का उनके लिए कोई उपयोग नहीं था। एकमात्र राजनीति जिसकी उन्होंने शिक्षा दी वह उनकी व्याख्या के अनुसार 'उत्पादन-विज्ञान' था।

सेन्ट साइमन का पक्का विश्वास था कि इंजीनियरिंग हमारे इस निर्धन संसार को भावी समृद्धि के प्रदेशों के साथ जोड़ सकती है। उन्होंने और उनसे भी अधिक उनके शिष्य बेजार्ड (१७९१-१८३२), एनफैण्टिन (१७९६-१९६४) और लेरो (१७९७-१८७१) ने रेल्वे लाइनों और बाद में निर्मित स्वेज तथा पनामा की तरह नहरों के जाल बिछा देने की योजनाएँ बनायीं और ब्रिटेन तथा फ्रांस से आग्रह किया कि वे एक-साथ मिलकर सार्वजनिक निर्माण और विकास की ऐसी योजनाएँ पूरी करें, जो राजनीतिक सीमाओं को पार कर जायँ और अन्ततः उन सीमाओं को मिटा भी दें। उनके अनुसार केवल नये नेता ही यूरोपीय संसद का निर्माण और व्यापक शान्ति की स्थापना कर सकते हैं। वे युद्ध के स्थान पर उद्योग और विश्वास के स्थान पर ज्ञान की प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

सेण्ट साइमनवादी समाज को बहुजन के हित की दृष्टि से संगठित करना चाहते थे। किन्तु ऐसा संगठन विज्ञान के पूर्ण उपयोग और उद्योग पर अधिक बल देने पर निर्भर है, जिसमें उद्योगों को दक्ष व्यवस्था की देखरेख में विशाल स्तर के संस्थानों या निगमों के रूप में चलाया जा सके। उन्होंने सार्वजनिक निर्माण की विशाल योजनाएँ बनायीं, व्यापक रूप से (बाद में 'पूर्ण' रूप से) काम काज की व्यवस्था चाही और कहा कि तभी 'इतिहास का वह तीसरा और स्थायी मुक्तिदायक चरण' आ सकता है, जो अन्तिम चरण (पहले चरण ने दास को भूमि के साथ बेचे गये दास के रूप में बदला और दूसरे चरण ने भूमि के साथ बेचे गये दास को मजदूरी पानेवाला बनाया।) होगा, जिसमें 'सर्वहारा की समाप्ति हो जायगी और मजदूरी करनेवाले साथी' (१८२९ में बेजार्ड) बन जायेंगे।

जैसा कि 'ल ग्लोब' ने सेण्ट साइमन के अनुयायियों का पक्ष प्रस्तुत किया, वे शिल्पतन्त्र की सीधी प्रणाली के समर्थक मालूम होते थे। राजनीतिक लोकतन्त्र के प्रति उनके हृदय में गहरी घृणा थी और वे चाहते थे कि शक्ति उन्हीं लोगों के हाथों में रहे, जो उत्पादन की प्रक्रिया का

समर्थन करनेवाले आन्दोलन ही इस युग की एकमात्र प्रतिक्रिया नहीं थे। उतनी ही जोरदार एक दूसरी प्रतिक्रिया थी। उसने सामन्तवाद के अन्त और विशेषाधिकारों की समाप्ति का स्वागत किया, किन्तु अपने विचार का केन्द्र-बिन्दु उत्पादन को नहीं, बल्कि उत्पादक को बनाया। इसके प्रथम प्रदर्शक फ्रान्स्वाज मैरिये चार्ल्स फोरियर (१७७२-१८३७) थे। बड़े उद्योगों के विस्तार से उन्हें घृणा थी। उनके विचार से सुख खेती और सादे जीवन में है। लोगों के दुःख का स्रोत उन्होंने बाजार में देखा। खरीद और बिक्री के उलझनभरे क्रम में व्यक्ति लुटा जा रहा था। आवश्यकता इस बात की थी कि इस निरर्थक प्रतिस्पर्द्धा को रोका जाय और इसके बजाय ऐसी व्यवस्था हो कि उपभोक्ता स्वयं उत्पादन और उत्पादक स्वयं उपभोग करे। वे फ्रांसीसी क्रान्ति की भावना से विपरीत केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के विरोधी थे।

धरती का संस्कार

शुरू के अन्य सभी समाजवादियों की तरह चार्ल्स फोरियर के लिए भी राजनीति और राजनीतिज्ञों का कोई उपयोग नहीं था। सारी बीमारियों के लिए वे जो दवाएँ मानते थे, उन्हें स्वेच्छाप्रेरित प्रयासों से प्राप्त किया जा सकता था। उदाहरण के लिए सहयोग का इसमें सर्वाधिक प्रभाव था। जीवन तभी सुन्दर बनाया जा सकता है, जब काम दुखदायी न हो, जब जीवन में बाध्यता और परेशानी नहीं, बल्कि आकर्षण और संतोष हो। ऐसा सामाजिक संगठन बनाना जरूरी है, जिसमें आवेगों का दमन न होता हो या उन्हें बुरा तथा समाजविरोधी न माना जाता हो, बल्कि इस ढंग से उनके अभिव्यक्तीकरण की स्वतन्त्रता हो कि उससे व्यक्तिगत सुख और सामाजिक हित को प्रश्रय मिले। यह जरूरी है कि व्यक्ति का स्वभाव नहीं, बल्कि उस वातावरण को बदला जाय, जिसमें वह रहता है और इस परिवर्तन का तरीका यह है कि समाज को पृथकत्व और प्रतिस्पर्द्धा के बजाय साहचर्य एवं सहयोग के सिद्धान्त के अनुसार संगठित किया जाय। चार्ल्स फोरियर की समाज-योजना का केन्द्र-

किन्तु यह था कि लोगों में मनोभावगत आकर्षण का भाव रहने की भावना होती है।

सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सन्तोषप्रद जीवन सहयोग पर आधृत छोटे-छोटे समाज में ही सम्भव है। यह समाज न तो इतना छोटा होना चाहिए कि व्यवसाय को सीमाबद्ध कर दे और न ही इतना बड़ा कि व्यक्ति के सहयोग से कार्य करने की शक्ति को ही दबा दे। फोरियर ने इसके लिए लगभग सौ व्यक्तियों के समाज को जिनके पास पाँच हजार एकड़ भूमि हो आदर्श माना। इन समाजों के लिए, जिन्हें 'फालन्स्टेरी' नाम दिया गया था ऐसे भवनों की व्यवस्था थी जिनमें समुदाय की सुविधाओं के सारे साधन हों। कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधा और स्वभाव के अनुसार समुदाय के साथ या एकान्त में रह सकता था। फोरियर का विचार था कि स्वस्थ जीवन के लिए व्यक्ति का भूमि से सम्बन्ध जरूरी है। उनका यूटोपिया सेन्ट साइमन की तरह उद्योग और इंजीनियरिंग पर नहीं बल्कि कृषि पर आधृत था जिसमें खेती को उच्च कृषि या बागबानी के रूप में संस्कृति मानकर उस यूटोपिया का अनुगमन किया गया। इसके बाद समूह की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बुनाई जैसे उत्पादक कार्यों, अध्यापन जैसे सेवा कार्यों का प्रश्न था। फोरियर के दृष्टिकोण में इस बात का विशेष ध्यान था कि कोई व्यक्ति एक ही व्यवसाय तक सीमित न रहे, बल्कि उसमें विविध कार्य करने की क्षमता हो। लोग एक पेशे से दूसरे पेशे में जाते रहें और जो वस्तुएँ तैयार की जायें, वे वाणिज्य या लाभ के लिए नहीं; समूह के उपयोग के लिए हों, वे सुन्दर ढंग से बनायी जायें और उनमें शिल्पकला का ध्यान रखा जाय। लोग निर्माण में उत्साह और उपभोग में सन्तोष अनुभव करें। घटिया किस्म की वस्तुओं में सामान की बर्बादी ही नहीं होती बल्कि जीवन की उपेक्षा होती है। सन्तोषप्रद काम, आवश्यकताओं की विविधता सीधी सादी जरूरतों की अच्छी तरह पूर्ति और भारी मितव्ययिता व सहयोगपूर्ण स्वस्थ जीवन के इस परिणाम होंगे। 'फालन्स्टेरी' या समुदाय को मूर्त रूप

देने के लिए राज्य या किसी सार्वजनिक अभिकरण (एजेन्सी) की ओर देखने की जरूरत नहीं थी, स्वेच्छाप्रेरित कार्रवाई ही इसके लिए काफी थी।

अच्छे जीवन की रचना व्यक्ति के आवेगों को दबाकर नहीं, बल्कि उनके उपयोग का साधन तैयार करके, उपभोक्ता और नागरिक को कामगार से अलग करके नहीं, बल्कि व्यक्ति को उत्पादन और उपभोग की सामान्य प्रक्रिया में लगा हुआ मानकर ही की जा सकती है। फोरियर अपने खेतिहर समाजों में कामों में विविधता, तैयार की गयी वस्तुओं में सुन्दरता और टिकाऊपन, यन्त्रों पर सभी का स्वामित्व और काम को जीविका या आराम के साधन के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के सार्थक पक्ष के रूप में चाहते थे। उद्योग के विरुद्ध उन्होंने कृषि, बड़े कारखानों के विरुद्ध सहयोग से सचालित दस्तकारी, विशेषज्ञों के बोलबाले के विरुद्ध 'बहुधन्धी' व्यक्तियों के लोकतन्त्र की बात सोची। क्षमता और उत्पादन के आधार पर श्रम को महत्त्व देने के बजाय उन्होंने श्रम को सुन्दरता और उत्साह का स्रोत माना, तथा वस्तुओं के टिकाऊपन में गौरव समझा। मानव उस बिगड़ी मशीन की तरह नहीं है, जिसे इञ्जीनियर ठीक करता है, बल्कि उसमें तरह-तरह की आकाक्षाएँ होती हैं, वह सुसगठित समाज में सम्पत्ति और सुख दोनों का साधन हो सकता है। मानव में चालबाजी की भावना और परिवर्तन के लिए इच्छा उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति मिलाप की आकाक्षा से सन्तुलित हो जाती है।

औद्योगीकरण का समर्थन करनेवालों ने इसका यह कहकर विरोध किया कि यह स्वप्न उद्योग की प्रगति रोककर नहीं, बल्कि उसे विकास का पूरा मौका देकर ही चरितार्थ किया जा सकता है। जैसा कि हरबर्ट स्पेन्सर (१८२०-१९०३) ने कहा था "जिस प्रकार 'व्यक्ति राज्य के लिए है' विश्वास का 'राज्य व्यक्ति के लिए है' विश्वास में बदलना समाजवाद के लड़ाकू और औद्योगिक वर्गों में विपरीतता का सकेत करता है, उसी प्रकार 'जीवन काम के लिए है' विश्वास का 'काम जीवन के लिए है'

विकास में विशेषीकरण औद्योगिक और उससे प्रकट होनेवाले वर्गों में विरोधिता का उदय है ?"

नव समाज-निर्माता

औद्योगिक क्रान्ति का सबसे पहले आगमन और सबसे अधिक प्रगति ब्रिटेन में हुई। रार्बट ओवेन (१७७१-१८५८) स्वयं उद्योगपतियों में से थे। हाँ इस बात में वे अपने औरों से भिन्न थे कि न्यू लेनार्क स्थित उनकी कॉटन मिल काम का साधन नहीं बल्कि उनके सिद्धान्त और प्रयोगशाला की भूमि थी। ओवेन को उनकी बुद्धि और अनुभव ने सिखाया कि समुचित अवसर और ठीक वेतन मिलने पर सभी व्यक्तियों में उत्तम बनने की क्षमता है। व्यक्ति का चरित्र उसकी इच्छा के अनुसार उतना नहीं बनता जितना वातावरण के अनुसार। उन्होंने कारखानों के मालिक के प्रति मौन सम्मति, गन्दी बस्तियों और व्यक्तियों तथा उनके जीवन को कुण्ठित करनेवाली अवस्था के विरुद्ध विद्रोह किया। अपनी मिल में उन्होंने दिखाया कि अच्छे व्यवहार और मानवतावादी सम्बन्धों से व्यवसाय में कोई गड़बड़ी नहीं आती। अपने अनुभव के द्वारा उन्होंने 'चरित्र निर्माण' को नये प्रकाश में देखा। "सर्वोत्तम से लेकर निम्नतम और सबसे अज्ञान से लेकर सबसे बुद्धिमान तक कोई भी चरित्र किसी भी समाज, यहाँ तक कि विश्व संसार को भी दिया जा सकता है। इसी लिए समुचित साधनों के प्रयोग की आवश्यकता है और वे ऐसे साधन हैं, जो बहुत हद तक उन लोगों के हाथों में हैं, जिनके हाथों में राष्ट्रों की सरकारें हैं।

इसकी प्राप्ति के लिए प्रथम पूर्वावश्यकता यह है कि अनियमित प्रतिस्पर्धा का परित्याग किया जाय। स्वार्थपूर्ण भय इसका सर्वोत्तम रूप है। ओवेन के समाधान अनुभूति के आधार पर निर्मित किये गये थे, उन्हें भावात्मक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं किया गया था।

रुई की कमी के कारण अपने कर्मचारियों को बेकारी से बचाने के लिए ओवेन ने कुछ लोगों को कुछ दिनों के लिए काम आदि के उत्पादन

न लिए खती मे लगाया। १८१५ के बाद आम तौर स बेकारी फैलने पर ओवेन ने इसी विचार को विकसित रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सिफारिश की कि बेकारा को काम के लिए 'एकता और सहयोग के गाँवों में' भेजा जाय—जहाँ लोग सहयोग से काम करें और शान्तिपूर्वक रह। ओवेन ने बहुत पहले ऐसे समाजा में नयी सामाजिक और नैतिक व्यवस्था का बीज देखा। अपनी 'न्यू हार्मनी' (नव सामंजस्य) बस्ती में प्रयोग करने के लिए वे १८२४ में इग्लैण्ड से जाकर अमेरिका में बसे।

फोरियर की तरह ओवेन सघन खेती के पक्षपाती थे, किन्तु इसके साथ ही वे उद्योग का सन्तुलित विकास भी चाहते थे। सेण्ट साइमन को यदि उद्योग का नशा था और फोरियर सघन खेती और घरेलू दस्तकारी से सन्तुष्ट थे, तो ओवेन सहयोग पर आधृत ऐसी बस्तियों का निर्माण करना चाहते थे, जिनमें कृषि और औद्योगिक दोनों कार्य अद्यतन (अप टु-डेट) ढंग से किये जायँ। उन्होंने १८३७ में लिखा "भूमि की जोताई-बोआई को ऐसी सुन्दर रासायनिक और यान्त्रिक प्रक्रिया का जामा पहनाया जा सकता है, जिसका सचालन बड़े विज्ञानविद् और उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति करें।"

अमेरिका में उन्होंने जो प्रयास किया था, वह विफल हो गया और वे १८३० में इंग्लैण्ड वापस आ गये। यद्यपि वे उतोपीय समाज का निर्माण करने में विफल रहे तथापि वे दृढ विश्वास लेकर लौटे कि नया समाज पुराने समाज की भित्ति पर ही बन सकता है। औद्योगिक कर्मचारी अपने को ट्रेड यूनियनों के रूप में सगठित करने लगे थे। वे आगे बढकर सहकारिता के प्रयास से अपनी ही उत्पादन और वितरण व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास क्यों न करते? ओवेन सबसे पहले मकान बनाने का काम करनेवाले लोगों से मिले, जो यान्त्रिक आविष्कार से ज्यादा लोभी ठेकेदारों से त्रस्त थे। उन्होंने उन लोगों को समझाया कि आप लोग मिलकर ठेकेदारों के स्थान पर 'राष्ट्रीय भवन-निर्माता शिल्पी-संघ'

की स्थापना करें। सहकारिता के आधार पर उत्पादन और व्यापार की व्यापक परियोजना भी साथ-साथ चल रही थी।

विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए शिल्पी और दस्तकारी में काम करने-वाले विभिन्न उत्पादक बाजार और मध्यस्थों को बीच में लाये बिना अपनी वस्तुओं का सीधा विनिमय क्यों नहीं कर लेते? ओवेन ने इसके लिए राष्ट्रीय विनिमय बाजार (नेशनल इक्विटेबल लेबर एक्सचेंज) की स्थापना की, जहाँ उत्पादकों की सहकारी समितियाँ वस्तुओं का विनिमय उनके तैयार करने में लगे हुए समय को आधार बनाकर कर सकती थीं। विभिन्न महत्त्वपूर्ण नगरों में ऐसे केन्द्र बन गये और सहकारी आन्दोलन को प्रश्रय देने के लिए विक्रय में किये जानेवाले लाभ में कटौती करने तथा 'भावी समाज' कायम करने के लिए कई स्थानों पर उपभोक्ता सहकारी भण्डार खुल गये। इस प्रकार ओवेन एक नये ढंग के समाज के निर्माता बन गये। उनके यूटोपिया को 'न्यू हार्मनी' की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं थी। इसे अलग नगरों और अलग गाँवों में आरम्भ किया गया। स्वर्णयुग के मूल तत्त्व को ऐतिहासिक संसार के बीच में ही खोजा और विकसित किया जा सकता है।

सन् १८१४ तक ओवेन के नेतृत्व में ट्रेड-यूनियनें एक साथ हो गयीं और 'ग्रैण्ड नेशनल कन्सालिडेटेड यूनियन' के नाम से उन्होंने एक संयुक्त और शक्तिशाली संगठन बनाया। क्या यह विशाल संगठन एक झोंके में सहकारी समाज (कोआपरेटिव कामनवेल्थ) नहीं स्थापित कर सकता था? सहकारी समाज (कोआपरेटिव कामनवेल्थ) क्या मधुमक्खी की तरह समाज निर्माण का एक मार्ग है या उसे संगठित मजदूर वर्ग की सम्पूर्ण शक्ति के बल पर स्थापित किया जा सकता है? शक्ति का सामना प्रयोग किया गया और वह शक्ति सरकार तथा मालिकों की संयुक्त शक्ति के सामने टूट गयी। आक्रमण की धार जल्दी ही विफल हो गयी, किन्तु ट्रेड यूनियनों और सहकारी समितियों के द्वारा समाज निर्माण का प्रयोग पश्चिमी यूरोप के समग्र सामाजिक जीवन के रूप में पुष्पित हुआ।

विलियम टामसन (१७८३-१८३३) ने ट्रेड-यूनियनों की कल्पना सहकारिता के कार्यकलापों के लिए बनाये गये संगठनों के रूप में की, जब कि टामस हाजस्किन (१७८३-१८६९) ने उन्हें वर्ग संघर्ष के संगठनों के रूप में देखा। समय की गति और उद्योग के विकास तथा जटिलता ने इस प्रकार स्वर को बदल दिया। उद्योग की प्रगति स्वभावतः सामाजिक प्रवृत्तियों और दृष्टिकोण में परिवर्तन करती है। जब औद्योगीकरण शुरू हो रहा था, उसी समय इंगलैंड में चार्ल्स हॉल (१७४०-१८२०) ने 'एफेक्ट्स आफ सिविलाइजेशन' अर्थात् 'सभ्यता का प्रभाव' नामक एक किताब लिखी, जिसमें उन्होंने कृषि पर सीधे सादे जीवन निर्वाह को श्रेष्ठ सिद्ध किया। उत्पादन प्रणाली के विकास को उन्होंने नापसन्द किया और यह विचार प्रकट किया कि 'सभ्यता' के फलस्वरूप सम्पत्ति और शक्ति थोड़े से श्रीमन्तों के हाथ में जमा होगी और लाखों सम्पत्तिहीनों का और भी शोषण होगा। बुराई की जड़ भूमि के निजी स्वामित्व में है। इसका उपचार यही है कि भूमि को सार्वजनिक सम्पत्ति बना दिया जाय और औद्योगिक उत्पादन थोड़ी-सी सीमा में उतना ही हो, जिससे खेती करनेवालों की अल्पव्ययी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। हाजस्किन पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह के बाद के चरण का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने उद्योग की दृष्टि से अधिक विचार किया। वे उद्योग का विस्तार चाहते थे, लेकिन इस पक्ष में थे कि श्रम का सारा उत्पादन सम्पत्ति अर्थात् उत्पादन के साधनों के मालिकों को नहीं, बल्कि मजदूरों को मिले और जो कुछ अतिरिक्त रूप में बचे, वे उससे अपनी जीविका के निर्वाह की आवश्यकताएँ पूरी करें। यह परिवर्तन ट्रेड-यूनियनों के संघर्ष करने से ही हो सकता था, राजनीतिक कारवाई इसके लिए बेकार थी।

समाजवाद में लड़ाकू परम्परा के जनक 'ग्रेशस' बाबेफ (१७६०-९७) थे। उनका आगमन उन लोगों के हितार्थ हुआ, जो १७८९ की क्रान्ति हो जाने के बाद अपने को निभ्रम समझते थे। सामन्तवादी जमींदारियों के टूट जाने से खेती करनेवालों को भूमि मिल गयी, किन्तु

शहर के गरीबों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ; बेकारी और रुग्णता उनके लिए अब भी बनी रही। ब्लांकी ने क्रान्ति की षड्यन्त्र परम्परा आगे बढ़ाने और साम्यवाद की स्थापना न हो जाने तक परिवर्तन-चक्र को पूरा करने की बात सोची। 'स्वतन्त्रता' की पुकार में उन्होंने अपनी पुस्तक 'क्रान्तिकारियों के पत्रों' के माध्यम से समानता की हाँक भी जोड़ी : 'समाज का अन्त भूखमरी है और भूखमरी उपभोग में ही है।" ऊँची जमात की हाँक सामाजिक आन्दोलन में परिवर्तित हुई जो निश्चित रूप से असमानता की व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न था। आन्दोलन का लक्ष्य भूमि और उद्योग का सामूहिक स्वामित्व कर देना, अर्थनीति को सार्वजनिक रूप दे देना, शिक्षा को निःशुल्क और सब लोगों के लिए सुलभ कर देना, साथ समान रखना और धार्मिक तथा राजनीतिक, सभी प्रश्नों को लोकतान्त्रिक बनाना था। इन परिवर्तनों का तात्पर्य था कि वर्तमान समाज की व्यवस्था उलट दिया जाय और यही इस षड्यन्त्र का लक्ष्य था। षड्यन्त्र विफल हो गया। इसके कर्णधार बाबेफ और दार्थे को फाँसी पर चढ़ा दिया गया किन्तु इससे 'सामाजिक प्रश्नों' पर जोर देने की एक नयी विधि का प्रादुर्भाव हुआ।

षड्यन्त्र भावना और क्रान्तिकारी उत्साह को एक नीति का रूप लुई आगस्त ब्लांकी (१८०५-८१) ने दिया। उनके जीवन के ७६ वर्षों में पूरे ३४ वर्ष जेल में बीते। उनके लिए विद्रोह साधारण राजनीतिक जन्म जैसा बन गया था। वे 'थोड़े से लोगों में षड्यन्त्र' के सर्वोत्तम व्याख्याकार थे। आम जनता में उनका विश्वास नहीं था और वे समझते थे कि बहुत दिनों तक प्रतिक्रियावादी शक्तियों के बन्धन में रहने से लोग स्वतन्त्रता को न समझ सकेंगे, उनके लिए वे बहुत कम करेंगे। थोड़े-से क्रान्तिकारी लोग ही शक्ति पर अधिकार कर और उसके बाद शिक्षा तथा सम्पत्ति द्वारा बहुमत को शुद्ध कर सकते हैं। उनकी भिन्न धारणा यदि समाज जनसाधारण की थी उनका भिन्न अंश था जुड़े हुए क्रान्ति-

कारियों की पार्टी। थोड़े-से जागरूक और सुसंगठित लोग केवल सशस्त्र विद्रोह और कुछ समय तक राजनीतिक नियन्त्रण रखकर कम्युनिज्म की स्थापना कर सकते हैं। इस विश्वास का मुख्य आधार यह था कि फोरियर और ओवेन के बाद सामुदायिक निर्माण और रचनात्मक कार्य समाज को नहीं बदल सके, क्योंकि राजनीतिक शक्ति उनके हाथों में नहीं थी और उनकी विरोधी थी। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक राजनीतिक शक्ति के प्रति अविश्वास और घृणा कुछ समाजवादियों के मन से हटने लगी। ब्लांकी ने यदि सोचा कि राजनीतिक शक्ति छीनी जा सकती है, तो दूसरे लोगों ने सोचा कि उसे शान्तिपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जा सकता है।

ब्रिटेन में १८३८ से १८४८ के बीच जो चार्टिस्ट आन्दोलन हुआ, वह १८३२-३४ के सहकारिता तथा ट्रेड-यूनियन आन्दोलन की विफलता के विरुद्ध होनेवाली प्रतिक्रिया था। लोगों का ध्यान संसद की ओर मुड़ा और उन्होंने सोचा कि व्यापक मताधिकार और राजनीतिक सुधारों के द्वारा आर्थिक त्रुटियाँ दूर की जा सकती हैं। ६ सूत्रीय जनवादी घोषणा-पत्र ने पुरुषों के मताधिकार, गुप्त मतदानप्रणाली, संसद की सदस्यता के लिए सम्पत्ति को योग्यता का आधार न रखने, संसद सदस्यों के लिए वेतन, समान निर्वाचन क्षेत्रों तथा हर वर्ष संसद की बैठक करने की माँग की। सभी माँगें वैधानिक थीं, किन्तु आन्दोलन के पीछे काम करनेवाली भावनाएँ आर्थिक थीं और आन्दोलन को शक्ति मजदूरों की आर्थिक कठिनाई से प्राप्त हुई थी, जैसा कि एक नेता ने घोषणा की थी। चार्टिस्ट आन्दोलन कोई साधारण राजनीतिक आन्दोलन नहीं था, बल्कि छुरी और काँटे का प्रश्न था।

चार्टिस्ट आन्दोलन के नेताओं में विश्वासों के सम्बन्ध में एक-दूसरे से बहुत अन्तर था। लोवेट (१८००–७७) और हेथरिंगटन (१७९२–१८४९) वस्तुत ओवेनवादी थे और सामाजिक व्यवस्था को शान्तिपूर्वक सहकारी व्यवस्था में बदलना चाहते थे। इसके विपरीत जे० ब्रेण्टियर ओ'

सुधार सघ (नेशनल रिफार्म लीग) का सगठन किया। उसके 'साध्यो' में ओवेन और ओ'कोनोर की अनुयायी बस्तियों के लिए राज्य द्वारा भूमि की खरीद, खानों, मत्स्य-उद्योग और खनिज पदार्थों के क्रमिक राष्ट्रीकरण आदि थे तथा सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था पर जोर दिया गया था। उन्होंने श्रम-केन्द्रों का समर्थन किया और जनोपयोगी उद्योगों के राष्ट्रीकरण की माँग की। यद्यपि यह कुछ बहुत बडा कार्यक्रम था और सघ के विरोधी तत्वों तथा सुधारवादी पक्षों को साथ रखने के लिए बनाया गया था, तथापि सत्य यह है कि इसने विकासोन्मुख समाजवाद के कार्यक्रमों की रूपरेखा खींची, जिसके लिए राज्य का नियत्रण जरूरी हो जाता है। व्यक्ति के प्रयासों के फलस्वरूप ध्यानबिन्दु के रूप मे एक नये आदर्श 'राजनीतिक शक्ति हमारा साधन, सामाजिक समृद्धि हमारा लक्ष्य' का जन्म हुआ।

विकासवादी और राज्यवादी

नयी प्रवृत्ति, समाजवाद के नये रूप को सबसे अच्छे रूप मे लुई ब्लाक (१८११--८२) ने प्रस्तुत किया। वे विकासवादी समाजवाद की आवाज उठानेवाले शुरू के व्यक्ति थे, फिर भी उनकी इस आवाज में विशुद्धता थी। अपने विचार का केन्द्र-बिन्दु उन्होंने राज्य को बनाया, आर्थिक विकास और कल्याणकारी सेवाओं की योजना बनाना राज्य का काम था। राज्य को प्रगति और कल्याण के साधन के रूप में बदल देने के लिए उन्होंने वयस्क मताधिकार की ओर देखा। उन्होंने अपने सुधारों की अन्तिम स्वीकृति के लिए समाज की सर्वोपरि एकस्वायतता की ओर ध्यान खींचा, जिसके प्रति सभी की निष्ठा होती है। पूरे समाज में विश्वास होने के कारण उन्होंने सभी वर्गों के अच्छे आदमियों का ध्यान इधर आकृष्ट किया। उन्हें विचार की प्रगति में विश्वास था और वे आशा करते थे कि ज्ञान के साथ सुधार निश्चित है। उनका सिद्धान्त था 'निर्बलता से बल प्राप्त होता है, अज्ञान से ज्ञान। व्यक्ति जितना ही अधिक कर सकता है, उतना ही वह अधिक करना चाहता है।'

उन्होंने बुराइयों की जड़ पूँजीवादी शासन तथा प्रतिस्पर्धा के 'भीषणतापूर्ण एवं निर्मम सिद्धान्त' को माना जिसने 'हरएक आदमी को अपने को बर्बाद करने के लिए स्वतंत्र कर दिया है, ताकि वह फिर दूसरों को बर्बाद कर सके। इसका उन्मूलन करके ही सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सकती है। लोकतांत्रिक राज्य का कर्तव्य है कि वह इस जिम्मेदारी को पूरा करे। उनका विश्वास था कि राज्य द्वारा स्थापित और मजदूरों द्वारा संचालित राष्ट्रीय कारखाने शीघ्र परिवर्तन ला देंगे।

सन् १८४८ की क्रान्ति से लोकतन्त्र के जिन विचारों की विजय हुई, उसकी सफलता के लिए उनका प्रसार आर्थिक क्षेत्र में भी जरूरी था। नागरिकता तभी सार्थक है, जब सामाजिक अधिकारों (मेनुएल राइट्स) के साथ ही मूलभूत आर्थिक अधिकार अर्थात् 'काम का अधिकार' भी हो। राज्य से वे केवल व्यवस्था चाहते थे, जो राष्ट्रीय कारखाने स्थापित करने और उन्हें चलाने के लिए कर्मचारियों के संघों को दे देने के लिए शुरुआत कर्ज के रूप में दी। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि एक निश्चित निम्नतम वेतन के साथ काम का अधिकार, काम की अच्छी शर्तें और औद्योगिक स्वायत्तता होने से अच्छे कर्मचारी राष्ट्रीय कारखानों में आयेंगे और इस प्रकार धीरे-धीरे पूँजीपतियों की प्रतिस्पर्धा-शक्ति को समाप्त कर देंगे। इस आदर्श और सहमति द्वारा क्रान्ति होगी। जैसा वांछित श्रम करें इसके लिए उन्होंने कारखानों पर मजदूरों का स्वामित्व माना। ब्लांक का हमेशा आग्रह था कि राष्ट्रीय कारखाने आधुनिकतम विधि काम में लायें।

बाद में ब्लांक ने अपने विचारों का और विस्तार किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कृषि-व्यवस्था का इन कारखानों के जरिये पुनर्गठन किया जाय। पहले यह कार्य एक समय में हो और फिर उसकी सफलता के साथ-साथ इसका और भी विस्तार हो जिससे देहाती क्षेत्र अपने सामूहिक कृषि फार्म और देहाती उद्योग के केन्द्र बन जायें। शहरी क्षेत्रों में उन्होंने राष्ट्रीय कारखानों को ऐसे सामुदायिक सम्पत्ति के रूप

में विस्तृत करने की योजना सोची, जहाँ मजदूर एक साथ रह सकें, सामुदायिक सुविधाओं का लाभ उठायें और सामान्य ढंग से जीवन बिताते हुए सस्थानों में सामुदायिक कार्य कर। उनका स्वप्न था कि 'औद्योगिक कार्य को कृषि के साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध' कर दिया जाय।

ब्लाक चाहते थे कि राज्य कारखानों के लिए आवश्यक कानून बनाये और उनको जरूरी सुविधाएँ दे। और सब बातें उन्होंने मजदूरों के संयुक्त प्रयास से किये जाने के लिए छोड दीं। उन्हें विशेषकर लक्जमबर्ग आयोग (जो स्पष्टत विभिन्न साधारण प्रश्नों का हल करने के लिए गठित हुआ था) और सामान्य तौर पर क्रान्तिकारी सरकार (१८४८) से जो निराशापूर्ण अनुभव हुआ, उसके बाद उन्होंने अधिक श्रम के सिद्धान्त की पुष्टि और श्रमिकों द्वारा सचालित व्यवस्था को सुलभ करने के लिए सहकारितामूलक प्रयासों का सहारा लिया। इंग्लैण्ड में अपने निर्वासनकाल मे वे विकसित हो रहे ट्रेड-यूनियन आन्दोलन और उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों की सहकारी समितियों के बढते हुए आन्दोलनों को आशाभरी दृष्टि से देखते थे। इस आन्दोलन में उन्हे अपने 'सबके लिए काम' के अभियान के साहसी सैनिकों के दर्शन होते थे।

राजनीतिक और आर्थिक विकास जर्मनी में पीछे थे। फ्रास में विचार की जो रूपरेखा खिंची, उसे ब्रिटेन ने १८४८ तक व्यवहार रूप में उतारा, जर्मनी में इसकी पुनरावृत्ति १८५०-६५ में हुई। इन वर्षों (१८४८-५०) की उथल-पुथल और उफानों से समाजवाद जन आकाक्षा के नये लक्ष्य के रूप में सामने आया। यह समाजवाद ही था जो भूकम्प के बाद बचा रह गया, आग और तूफान गुजर चुके थे।*

जर्मनी का पदार्पण

जर्मनी में समाजवाद की वाणी 'सच्चे समाजवादियों' की शिक्षा के रूप में फूटी। 'सच्चे समाजवादियों' के इस समूह की त्रिमूर्ति ब्रूनो ब्रौअर (१८०९-८२), मोसेस हेस (१८१२-७५) और कार्ल ग्रन

* डब्ल्यू० एच० डासन जर्मन डेमोक्रेसी एण्ड फर्डीनेण्ड लासेल, पृष्ठ २३।

(१८११-८७) थे। उनके समाजवादी विचारों का सामाजिक और आर्थिक यथार्थताओं से कोई सम्बन्ध नहीं था—वे कहानी में उगती हुई किसी बीज के पहले पेड़ की तरह अपरिपक्व थे।

उन्होंने स्वभावतः अपने समाजवाद को शुद्ध रखने में गौरव समझा। उनका महत्त्व यही है कि उन्होंने समझौता करना नहीं स्वीकार किया। जिन चार तत्त्वों पर उन्होंने समझौता नहीं किया वे निम्नलिखित हैं—

१ उन्होंने आंशिक सुधारों और इधर उधर के छोटे-छोटे हेरफेरों का विरोध किया; क्योंकि उनके स्वीकार करने का अर्थ वस्तुतः पहले से चली आ रही औचित्यहीन व्यवस्था को स्वीकार करना था। ऐसी व्यवस्था का उन्मूलन होना चाहिए, इसमें थोड़ा-थोड़ा करके या जल्दी में सुधार नहीं किया जा सकता।

२. 'स्वार्थ' द्वारा प्रोत्साहित कार्यों को वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि कोई भी सच्चा सुधार व्यक्तियों के आत्म-स्वार्थ या समूह-स्वार्थ को आकृष्ट करके नहीं आ सकता। कोई भी उत्तम कार्य 'त्याग' की क्रिया से ही होता है उसका मूल केवल बुद्धि होती है।

३ मानव में सुधार का एकमात्र स्पष्ट साधन व्यक्तियों का ज्ञान एवं विवेकपूर्ण सद्भावना है। श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए बुरे तरीके उन्हें नापसन्द थे और उनका उन तरीकों में विश्वास नहीं था क्योंकि वे साधन स्वयमेव साध्य का सत्यानाश कर देनेवाले हैं। उन्हें नैतिक मूल्यों का एकान्तिक सिद्धान्त स्वीकार था क्योंकि उन्हें आशंका थी कि शक्ति के बल पर प्राप्त किया गया समाजवाद दमनकारी और अहंवादी अधिनायकवाद का रूप ले लेगा।

४ उनकी चौथी मान्यता राजनीति में पड़ने के विरुद्ध थी। उनके मतानुसार समाजवादियों का प्रथम काम जनता को शिक्षित करना है, समाजवादी यदि राजनीति में पड़ें भी तो तभी जब जनता की शिक्षा करने के लिए समय उपयुक्त होगा। समाजवादी विचार का जब भी किसी देश में जन्म होता है, पैदा होते ही उसकी पहली आवाज सुरक्षा

लेकिन समाज में प्रधानता रखनेवाले वर्ग अर्थात् [illegible] हाल था ? एशिया में सामन्तवाद का बोलबाला होने के कारण [illegible] एक शक्ति का रूप नहीं ले सके। किन्तु फ्रांस में, जहाँ क्रान्ति ने सामन्तवादी सम्बन्धों को तहस-नहस कर दिया था, [illegible] अपनी 'स्वयं की इच्छा' का विकास हुआ। [illegible] फ्रान्सीसी समाजवादी पेरिस और उसके आसपास दार्शनिक सिद्धान्तों का निर्माण करते रहे। १८६४ में [illegible] ([illegible] की) 'सेना का शानदार निरीक्षण' [illegible] ही सीमित रहा। इन नगरों के बाहर देहात थे, जहाँ [illegible] परम्परागत जीवन बिताते और वही पुराने [illegible]। उन्हींके समाज के प्रूधों (Proudhon) [illegible] उनकी दबी हुई भावनाओं तथा आशाओं को प्रकट किया।

मार्क्स ने सिसमोंडी और प्रूधों को 'पेटी बुर्जुआ' समाजवादी कहा है। यह सत्य हो सकता है कि उनकी [illegible] – किन्तु इस बात को गलत नहीं कहा जा सकता कि उनका [illegible] का दर्शन था।

सिसमोण्डे द सिसमोण्डी ([illegible]) [illegible] थे, उनके पास विश्वकोश जैसा ज्ञान था। उन्होंने [illegible] पक्ष पर सन्देह प्रकट किया कि यथासम्भव अधिक-से-अधिक उत्पादन और जनता की यथासम्भव अधिक-से-अधिक खुशहाली एक ही [illegible] है। उत्पादन के तरीके और वितरण के ढंग का खुशहाली से उतना ही सम्बन्ध है, जितना कि उत्पादन का सारे परिमाण से। वे सभी प्रकार के एकाधिकार के विरुद्ध थे, जिसमें भूमि के स्वामित्व का एकाधिकार भी है। इसी तरह उन्होंने बन्धनमुक्त पूँजीवाद का भी विरोध किया और उसे व्यापक बेकारी तथा दयनीय स्थिति का कारण माना। निश्चित वेतन और सामाजिक सुरक्षा के लिए उन्होंने श्रमजीवियों के पक्ष में राज्य के हस्तक्षेप पर जोर दिया।

मच्छ' हैं। प्रूधों द्वारा केन्द्रीकरण के विरोध का मतलब औद्योगीकरण का विरोध और पारिवारिक कृषि की श्रेष्ठता स्थापित करना था।

लेमनेस ने कहा था : "जो स्वतन्त्रता कहता है वह साहचर्य कहता है।" प्रूधों ने इसमें जोडा "अपने साहचर्य को बढाओ और स्वतन्त्र हो जाओ।"

प्रूधों की मृत्यु के पॉच वर्ष के भीतर ही सर्वहारा की गोलियॉ ओर बुर्जुआ वर्ग की तोपें पेरिस कम्यून का खूनी इतिहास लिख रही थीं। प्रूधों का पारस्परिक सहयोगवाद, जिसका अर्थ 'अधिकार के नये सिद्धान्त पारस्परिकता पर आधृत विकेन्द्रीकृत आर्थिक समाज था', फ्रास और सारे पश्चिमी यूरोप के लिए बहुत देर से आया।

दो धाराएँ

मध्यकाल के ससार की अपनी सुरक्षात्मकता थी और उसके साथ ही अन्याय भी। व्यक्ति का समाज में एक स्थान, जिसका कुछ दर्जा हो, निश्चित था, फिर भी वह कई नियन्त्रणों से बँधा हुआ और वशपरम्परा से चले आ रहे विशेषाधिकारो से त्रस्त था। पुरानी व्यवस्था को तोडकर नयी व्यवस्था स्थापित करने की जोरदार माँग थी। पूँजीवाद को आवश्यक परिवर्तन सुलभ होते जा रहे थे। यह प्रक्रिया पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने, गाँवों के विघटन, दस्तकारी का व्यवसाय करनेवालों के उखड जाने और पुरातन से प्राप्त सुरक्षाओं के विखण्डन की सूचक थी। इस स्थल पर समाजवादी विचार दो शाखाओं में फूटा। एक ने इन क्रमों का स्वागत किया और उनमें व्यक्ति की मुक्ति तथा आर्थिक शक्तियों के लिए ऐसे प्रोत्साहन का दर्शन किया जो अन्तत समृद्धि लायेंगे। इन धारणाओं का आधार था १ इतिहास का प्रकृतिगत रूप और २ अलग-अलग व्यक्ति में अपने को कायम रखने की पर्याप्त शक्ति। दूसरा मत यह था कि व्यक्ति की सार्थकता सामाजिक सम्बन्धों में ही है। पूँजीवादी क्रम पुराने सामाजिक बन्धनों का लाभ उठा रहा था। उनके छिन्न-भिन्न

सबसे बड़ा खतरा केन्द्र में रक्ताधिक्य और किनारे में रक्ताल्पता है।

पियरे जोसेफ प्रूधों (१८०९-६५) व्यक्तिगत स्वतत्रता के सिद्धान्त के पक्के समर्थक थे। समाजवाद का मापदण्ड वे न्याय को मानते थे। स्वतन्त्रता और न्याय का समाधान करने के लिए उन्होंने 'सीमित स्वतत्रता' के बजाय 'पारस्परिक स्वतत्रता' की बात सोची, क्योंकि उनके शब्दों में 'स्वतन्त्रता व्यवस्था की पुत्री नहीं, बल्कि माँ' है। उन्होंने अनुभव किया कि शोषण केवल पूँजी और स्वामित्व कुछ व्यक्तियों के हाथ में जमा होने में ही नहीं, बल्कि उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया में निहित श्रम-विभाजन में है। प्रूधों का विचार था कि भारी पैमाने पर उत्पादन में—विकसित औद्योगीकरण में—स्वतन्त्रता के लिए खतरा है। इसी प्रकार बन्धनमुक्त और एकसूत्रतावाले सघों को छोडकर शेष सभी सघों से उनकी किनाराकशी थी, क्योंकि इन सब में एक छोर पर सारी शक्ति ले लेने की ऐसी प्रबल प्रवृत्ति होती है कि व्यक्ति इन सघों में खो जाता है। यही कारण है कि उन्होंने सीमित दायित्व की कम्पनी—प्रच्छन्न रूप में समाज—को ही अस्वीकार नहीं किया, बल्कि ट्रेड-यूनियनों, निगमों जैसे दूसरे सघों को भी नापसन्द किया। जीवन की ही तरह श्रमिक की स्वाभाविक इकाई, उनकी दृष्टि में, परिवार है।

प्रूधों के विचार से व्यापक मताधिकार समाज को शक्ति प्रदान करने के लिए था। लोकतन्त्र वहाँ सार्थक है, जहाँ उसका निर्माण स्थानिकता या सघवाद जैसे 'सगठनात्मक सिद्धान्तों' के आधार पर होता है।

एक दूसरे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी प्रूधों के विचार इतने ही जोरदार थे। उन्होंने कहा "इस समय हम जो चाहते हैं वह यह श्रम-सगठन (अर्थात् लुई ब्लाक की कल्पना के राजकीय कारखाने) नहीं है। श्रमिकों का संगठन वैयक्तिक स्वतन्त्रता का उपयुक्त साधन है। जो कठिन श्रम करता है, वह अधिक पाता है। इस मामले में राज्य को श्रमजीवी से इससे अधिक कुछ नहीं कहना है। हम जो चाहते हैं, मैं सभी श्रमजीवियों के

जो मूलभूत सुधार वे चाहते थे, वे यह थे कि उत्पादन के साधनों में सम्पत्ति का स्वामित्व उन साधनों का वास्तविक उपयोग करनेवालों में व्यापक रूप से बाँट दिया जाय। यह आदर्श उन्हें छोटे किसान से मिला जो अपनी भूमि का मालिक होता है, उसमें कर्जमुक्त होकर खेती करता है और इस प्रकार स्वतंत्र और सुरक्षित है। नगरों के लिए भी उन्होंने ऐसी ही स्थिति चाही। वे चाहते थे कि नगर के लोग धन्धा की पारिवारिक छोटी-छोटी में व्यवस्था करें। यदि यह संतुलन बिगड़ा तो व्यवस्था से आर्थिक उत्पादन का संकट उपस्थित हो जायगा। सिस्मोण्डी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पूँजीवाद में निहित उत्पादन से कम उपभोग की बात कही। उनकी दृष्टि से समस्या का हल यह था कि राज्य छोटे समाजों के हित में आर्थिक नियमन करे। आदर्शों की कल्पना पूरा तभी पा सकता है, जब अर्थ-व्यवस्था का आधार कृषि पर स्वामित्व का अधिकार पाये हुए खेतिहर हों। उनकी दृष्टि की उपयोगिता उनके देश स्विट्जरलैण्ड के सामाजिक और आर्थिक विकास से समझी जा सकती है।

रॉडबर्टस (१८०१ १८९४) व्यापक मताधिकार में विश्वास रखते थे; क्योंकि व्यापक मताधिकार होने पर ही उत्पादन करनेवाले अपनी निर्बाध प्रगति के लिए उपयुक्त स्थिति तैयार कर सकते हैं। वे सम्पत्ति के बँटवारे और राज्य द्वारा काम लिये जाने के पक्ष में थे। इसके बाद प्रगति के लिए उनकी दृष्टि सहकारी समितियों, ट्रेड-यूनियनों जैसे 'वर्गों' पर थी। उनके मत से सम्पत्ति का राज्य के अन्तर्गत केन्द्रित होना उतना ही बुरा होगा जितना थोड़े-से लोगों के हाथों में केन्द्रित होना। सर्वहारा की निजी सम्पत्ति का उन्मूलन करके नहीं बल्कि उनके लिए सम्पत्ति की व्यवस्था करके ही सुधार किया जा सकता है। कोई भी दूसरी व्यवस्था यहाँ तक कि राज्य समाजवाद भी स्वतंत्रता और व्यक्तित्व में बाधा डालेगा बल्कि फिर से 'मालिकों की मण्डियाँ' खोलेगा—दूसरों के ऊपर एक शासक जाति होगी। [illegible] समाज के लिए

सबसे बड़ा खतरा केन्द्र में रक्ताधिक्य और किनारे में रक्ताल्पता है।

पियरे जोसेफ प्रूधों (१८०९-६५) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के पक्के समर्थक थे। समाजवाद का मापदण्ड वे न्याय को मानते थे। स्वतन्त्रता और न्याय का समाधान करने के लिए उन्होंने 'सीमित स्वतंत्रता' के बजाय 'पारस्परिक स्वतन्त्रता' की बात सोची, क्योंकि उनके शब्दों में 'स्वतन्त्रता व्यवस्था की पुत्री नहीं, बल्कि माँ' है। उन्होंने अनुभव किया कि शोषण केवल पूँजी और स्वामित्व कुछ व्यक्तियों के हाथ में जमा होने में ही नहीं, बल्कि उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया में निहित श्रम-विभाजन में है। प्रूधों का विचार था कि भारी पैमाने पर उत्पादन में—विकसित औद्योगीकरण में—स्वतन्त्रता के लिए खतरा है। इसी प्रकार बन्धनमुक्त और एकसूत्रतावाले संघों को छोड़कर शेष सभी संघों से उनकी किनाराकशी थी, क्योंकि इन सब में एक छोर पर सारी शक्ति ले लेने की ऐसी प्रबल प्रवृत्ति होती है कि व्यक्ति इन संघों में खो जाता है। यही कारण है कि उन्होंने सीमित दायित्व की कम्पनी—प्रच्छन्न रूप में समाज—को ही अस्वीकार नहीं किया, बल्कि ट्रेड-यूनियनों, निगमों जैसे दूसरे संघों को भी नापसन्द किया। जीवन की ही तरह श्रमिक की स्वाभाविक इकाई, उनकी दृष्टि में, परिवार है।

प्रूधों के विचार से व्यापक मताधिकार समाज को शक्ति प्रदान करने के लिए था। लोकतन्त्र वहाँ सार्थक है, जहाँ उसका निर्माण स्थानिकता या संघवाद जैसे 'संगठनात्मक सिद्धान्तों' के आधार पर होता है।

एक दूसरे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी प्रूधों के विचार इतने ही जोरदार थे। उन्होंने कहा "इस समय हम जो चाहते हैं वह यह श्रम-संगठन (अर्थात् लुई ब्लांक की कल्पना के राजकीय कारखाने) नहीं है। श्रमिकों का संगठन वैयक्तिक स्वतन्त्रता का उपयुक्त साधन है। जो कठिन श्रम करता है, वह अधिक पाता है। इस मामले में राज्य को श्रमजीवी से इससे अधिक कुछ नहीं कहना है। हम जो चाहते हैं, मैं सभी श्रमजीवियों के

काम पर किस चीज के लिए आह्वान करता हूँ वह पारस्परिकता की भावना विनिमय में न्याय और श्रम की व्यवस्था है।" काम पर ध्यान नहीं जमता था। व्यक्तिगत उत्पादक, किसान या दस्तकारी करने वाले जो ऐसे स्वेच्छाप्रेरित सहयोग का सहारा लेते हैं, जिन्हें उपयोगी और आवश्यक समझा जाता है, अनुभवपूर्ण ढंग से उत्तम उत्पादन और अपना हित-साधन कर सकते हैं।

उनके मत से व्यक्तियों में आत्म-अभिव्यक्ति की उत्तरदायित्वाधीन भावना होती है और साथ ही उसमें सामाजिक संयम का गुण भी होता है। व्यक्ति में सच्ची प्रवृत्ति और रचनात्मक शक्ति तभी बनी रह पाती है, जब उनके जीवन की कल्पना छोटे पैमाने के आर्थिक कारबार और छोटे समूह के रूप में की जाय। उनके विचार में मुख्यतः अपनी खेती करनेवाले खेतिहर परिवार या छोटे पैमाने पर उत्पादन करनेवाले व्यवसायी थे। बड़े पैमाने के उद्योगों को उन्होंने आर्थिक असमानता और सामाजिक असन्तुलन का मूल तथा परिणाम दोनों माना।

प्रूधों की कल्पना के राज्य में राज्य संविधान बनानेवाले संगठन के रूप में ही रह सकता है, जिसका काम अधिकारों का आधार तैयार करना है। राजनीतिज्ञों का नहीं अपितु उत्पादकों का राज्य उनका आदर्श था। उनके लिए राजनीति का अर्थ हमेशा केन्द्रीकरण था। व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता छोटे संगठनों में ही अभिव्यक्त होती है जिसकी आवश्यकताएँ उसकी समझ और अनुभव के बाहर की चीज नहीं होतीं। व्यक्तियों की रुचि और भावनाएँ छोटे दायरे में ही अच्छा काम करती हैं। उन्होंने सर्वहारा को नहीं बल्कि खेतिहर, दस्तकारी का काम करनेवाले व्यवसायी और दूकानदार को व्यक्ति की सामाजिक मुक्ति करनेवाला माना। ईश्वरवाद के प्रति उनका विरोध सदा था लेकिन वह केन्द्रीकरण की सभी प्रवृत्तियों के विरोध का ही एक अंग था। उनके शब्दों में सभी बड़े संगठन छोटे व्यक्तियों को मिलाकर बने हुए बड़े समूह

मच्छ' हैं। प्रूधों द्वारा केन्द्रीकरण के विरोध का मतलब औद्योगीकरण का विरोध और पारिवारिक कृषि की श्रेष्ठता स्थापित करना था।

लेमनेस ने कहा था : "जो स्वतन्त्रता कहता है वह साहचर्य कहता है।" प्रूधों ने इसमें जोडा "अपने साहचर्य को बढाओ और स्वतन्त्र हो जाओ।"

प्रूधों की मृत्यु के पाँच वर्ष के भीतर ही सर्वहारा की गोलियाँ ओर बुर्जुआ वर्ग की तोपें पेरिस कम्यून का खूनी इतिहास लिख रही थीं। प्रूधों का पारस्परिक सहयोगवाद, जिसका अर्थ 'अधिकार के नये सिद्धान्त पारस्परिकता पर आधृत विकेन्द्रीकृत आर्थिक समाज था', फ्रास और सारे पश्चिमी यूरोप के लिए बहुत देर से आया।

दो धाराएँ

मध्यकाल के ससार की अपनी सुरक्षात्मकता थी और उसके साथ ही अन्याय भी। व्यक्ति का समाज में एक स्थान, जिसका कुछ दर्जा हो, निश्चित था, फिर भी वह कई नियन्त्रणों से बँधा हुआ और वशपरम्परा से चले आ रहे विशेषाधिकारों से त्रस्त था। पुरानी व्यवस्था को तोडकर नयी व्यवस्था स्थापित करने की जोरदार मॉग थी। पूँजीवाद को आवश्यक परिवर्तन सुलभ होते जा रहे थे। यह प्रक्रिया पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने, गाँवों के विघटन, दस्तकारी का व्यवसाय करनेवालों के उखड जाने और पुरातन से प्राप्त सुरक्षाओं के विसण्डन की सूचक थी। इस स्थल पर समाजवादी विचार दो शाखाओं में फूटा। एक ने इन क्रमों का स्वागत किया और उनमें व्यक्ति की मुक्ति तथा आर्थिक शक्तियों के लिए ऐसे प्रोत्साहन का दर्शन किया जो अन्तत समृद्धि लायेंगे। इन धारणाओं का आधार था १ इतिहास का प्रकृतिगत रूप और २ अलग-अलग व्यक्ति में अपने को कायम रखने की पर्याप्त शक्ति। दूसरा मत यह था कि व्यक्ति की सार्थकता सामाजिक सम्बन्धों में ही है। पूँजीवादी क्रम पुराने सामाजिक बन्धनों का लाभ उठा रहा था। उनके छिन्न-भिन्न

होने से उत्पादन बढ़ सकता है, लेकिन सामाजिक हित नहीं हो सकता। पुराने बन्धनों के स्थान पर व्यापार के नये रूपों न्यायपूर्ण और उचित सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता थी। सामन्तवाद के स्थान पर पूँजीवाद नहीं, बल्कि सहयोगात्मक जीवन का कोई रूप चाहिए था। पूँजीवाद ने जो उथल-पुथल किया था वह समाजवाद की ओर ले जानेवाला नहीं, बल्कि व्यक्ति को अकेला कर देने और राज्य को सर्वशक्तिमान् बना देनेवाला था। पूँजीवाद को पीछे ढकेलकर और स्वतन्त्र व्यक्ति को सहयोगमूलक समाज में संगठित करके ही समाजवाद की ओर बढ़ा जा सकता था। विपरीतता बराबर स्पष्ट और ठोस नहीं थी, किन्तु दोनों विचारों का अलग-अलग दिशा में चलना स्पष्ट था। दो धाराओं में आज भी समाजवाद का यह विभाजन बना हुआ है और इसे समझ न पाने से और भी भ्रान्ति होती है। परिवर्तन के प्रारम्भिक चरण में, परम्परा से चले आ रहे सामन्तवादी जीवन में परिवर्तन के प्रथम वेग में, अन्तर स्वभावतः अधिक तीव्र रूप ग्रहण करता है। यहाँ पर आज के प्रक्रिया की उलझन की अनुरूपता है।

ओवेन फोरियर और फूरीं का आदर्श निर्माण आदर्श था जिसमें मानव के व्यक्तित्व के विकास की पूरी सम्भावना हो। ये व्यक्ति स्वतन्त्रताओं की धारा प्रवाहित करनेवाले थे। स्वभावतः स्वनिर्भरता तथा सहयोग ये युग के समाजवादियों की खास विशेषताएँ थीं। इनके अलावा दूसरे समाजवादी पथ-प्रदर्शक भी थे जो पक्के नियामक थे, जिनके उद्योगिता 'फन्ड स्थापन' की नींव थे। बाबेफ और पंफान्तें बैबेर की इन राजनीतिक व्यवहार की दृष्टि से इतनी भिन्न थीं, फिर भी सारे तात्पर्य में तरीके आत्मसमर्पक रूप से समान थे। सर्वव्यापक शिक्षा परिमाण जीवन के सभी पक्षों और सारी गतिविधि को नियोजित करना था। बाबेफ ने सारे जनताधारी के लिए काम किया तो बैबेर में उसके लिए उत्कण्ठा थी। उनकी कल्पना के राज्य में समाचारपत्र या जनमत के दूसरे साधन का कोई स्थान नहीं था, क्योंकि सामूहिक रूप से विचारत्व

की शिक्षा को जनमत तैयार करने के लोकतान्त्रिक तरीकों से बेहतर विकल्प समझा गया था।

सेण्ट साइमन को किसी उतोपिया की सूक्ष्मता से कोई मतलब नहीं था, किन्तु उनकी शिक्षाओं में वेग था और विज्ञान की, १९ वीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान की, निष्ठुरता थी। उनकी कल्पना ऐसी थी, जिसकी समूह के साथ चरिताथता हो सकती थी। इस प्रकार व्यक्ति या तो कैबेट की कल्पना जैसे समाज में वन्दी हो जाता या 'कठोर मार्ग से' सामाजिक न्याय की ओर ले जाये जाने के लिए एक समूह में शामिल होता। शुरू के समाजवादियों के दोनों समूह अर्थात् फोरियरवादी और सेण्ट साइमनवादी राजनीति और राजनीतिज्ञों से यदि घृणा नहीं करते थे, तो कम-से-कम उनके प्रति उदासीन अवश्य थे। फोरियर के अनुयायी स्थानीय समुदायों, स्वायत्तता और उदार सघवाद पर जोर देकर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र चाहते थे, जिसमें राजनीति के 'दलालों' और उसी प्रकार के दूसरे लोगों से मुक्ति मिल सके। सेण्ट साइमनवादी, कैबेट के अनुयायी आदि लोकतन्त्र के गडबडझाले से कोई सहानुभूति नहीं रखते थे, वे प्रशिक्षितों, शिल्पियों और श्रमजीवियों का शासन चाहते थे। भिन्न-भिन्न कारणों से समाजवादी पथ-दर्शक राजनीति के विरुद्ध थे।

दूसरा महत्त्वपूण अन्तर सामाजिक परिवर्तन के प्रति नीति के सम्बन्ध में था। कुछ लोग ऐसा समझते थे कि यह परिवर्तन अदृश्य रूप से आ रहा है जिस प्रकार डाल में फूल आते हैं। वे मानते थे कि बस्ती, सहकारी समिति, ट्रेड-यूनियन जैसे सामुदायिक निर्माण के प्रयास से यह परिवर्तन वैसे ही वढ रहा है, जिस प्रकार धुआँ धीरे धीरे दीपक का रूप वदल देता है। ओवेन ने कहा था कि सामाजिक क्रान्ति 'समाज में उसी प्रकार आयेगी, जिस प्रकार रात में चोर आता है।' अन्य लोगों ने परिवर्तन के मार्ग को अवरुद्ध करनेवाली वाधाओं में परिवर्तन का वीज देखा। इस अन्तर ने पहले के अन्तरों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक काट दिया। उदाहरणार्थ कैबेट ने कहा था "यदि क्रान्ति मेरी मुट्ठी में हो, तो मैं

'सभी व्यक्ति भाई-भाई' है। वे जो नया वातावरण अर्थात् सुधरी हुई समाज-व्यवस्था चाहते थे, उसका उद्देश्य व्यक्ति में छिपी हुई, किन्तु अक्षय सामाजिकता को सामने लाना तथा प्रोत्साहित करना था। उद्योग की प्रगति के साथ साथ कम-से-कम पेरिस और लन्दन जैसे स्थानों में सर्वहारा की संख्या और शक्ति बढ़ी और कुछ समाजवादी सभी व्यक्तियों के बजाय श्रमजीवियों से अपील करने लगे। उन्होंने मानव एकता से ऊपर वर्गीय एकता पर जोर दिया। वर्ग-संघर्ष के पैगम्बर कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) थे, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध घोषणापत्र (१८४८) रूपी संगीत की समाप्ति प्रतिध्वनियुक्त शब्द 'विश्व के मजदूरो, एक हो' में की। मजदूरों का उनके मानव के रूप में नहीं, मजदूर रूप में आह्वान किया था।

इस परिवर्तन के दो भाव होते हैं, जिन पर और भी विचार करने की जरूरत है। एक है व्यावहारिक और दूसरा सैद्धान्तिक, फिर भी काफी महत्त्वपूर्ण।

श्रमजीवियों में जैसे ही उनकी वर्ग-शक्ति की, आर्थिक दृष्टि से समाज में महत्त्वपूर्ण स्थिति की चेतना फूँकी गयी, वे आम हड़ताल की दृष्टि से विचार करने लगे। १८३४ में ही एक ट्रेड-यूनियन गजट ने लिखा था "कोई सशस्त्र विद्रोह न होगा, यह केवल शान्तिपूर्ण प्रतिरोध होगा। लोग आराम से पड़े रहेंगे। न कोई ऐसा कानून है और न हो सकता है, जो लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करने के लिए बाध्य करे। वे सड़कों पर और मैदानों में हाथ पर-हाथ धरे घूम सकते हैं, वे अपने साथ तलवार न रखेंगे, बन्दूक लेकर न चलेंगे, दंगा कानून के अन्तर्गत तितर-बितर किये जाने के लिए वे झुण्ड के-झुण्ड बनाकर जमा न होंगे। जब उनके पास पर्याप्त पैसा हो जायगा, तो वे एक सप्ताह या एक मास के लिए काम पर न जायेंगे। तब फल क्या होगा? धनिकों के विरुद्ध निर्धनों के काम न करने के इस षड्यन्त्र के फलस्वरूप हुण्डियाँ अस्वीकार हो जायँगी, अखबारों में दिवाले की खबरें छपेंगी, पूँजी बर्बाद हो जायगी,

राजस्व-व्यवस्था विफल हो जायगी, सरकार की व्यवस्था गड़बड़ा जायगी और समाज को जोड़नेवाली शृंखला की हर कड़ी टूट जायगी।"

व्यावहारिक प्रभाव शान्तिपूर्ण असहयोग से लेकर ऐसे हिंसात्मक विरोध तक था जो औद्योगिक समाज की अवस्थाओं में वृद्धि से उससे स्तर अधिक विनाशकारी रूप ले सकता है। समाजवाद संस्कार या स्वायत्तता की बात सोचनेवाले फोरियर या मूरों के सामने इन सम्भावनाओं पर विचार करने का कोई अवसर नहीं आया। कृषि-प्रधान और उद्योग-प्रधान समाजों के बीच की बात सोचनेवाले ओवेन की दृष्टि में शिक्षा तथा सामुदायिक निर्माण की ओर उसी तरह विभिन्न प्रकार के श्रम-संघर्षों की सम्भावना थी। उद्योग के विकास और ऐक्य सापेक्षवादी दृष्टिकोण के विकास से वर्ग-संघर्ष (जैसी कि मार्क्स की भी दृष्टि थी) केवल महत्त्वपूर्ण ही नहीं, बल्कि हिंसा का स्रोत हो गया।

सैद्धान्तिक प्रभाव और भी दूरगामी है। व्यक्ति को प्रधानता देना बन्द हुआ था। प्रोफेसर कोल के शब्दों में : "महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक श्रेणी व्यक्ति नहीं बल्कि वर्ग बन गया।" एक वर्ग के अनुभव के संघ के आगे व्यक्तियों के मत के साथ की कोई गणना नहीं थी। एक श्रेणी या कोटि के रूप में वर्ग ने ओझल स्थिति में पड़े हुए कल्पित व्यक्तियों को उखाड़ा और सम्भव अपनाया। व्यक्ति की निरपेक्ष-शक्ति या अतिरेक शक्ति, व्यक्तिगत श्रेष्ठता और जोर पर आश्रय को दर्शन था या इतिहास के आधार पर श्रेष्ठता और जोर अर्थात् इतिहास की गति और प्रक्रिया के दर्शन के सामने फीका पड़ गया। अनुभव और घटनाओं की एक शृंखला ने प्रभावों को स्पष्ट नहीं किया था। कठोर यूटोपिया (जैसे मैनेर या क्याम्पैनेला) में भी व्यापार-रत लोकतन्त्र है, किन्तु वर्ग में बदले हुए संसार में वैयक्तिकता का एक स्तर भी नहीं निकल सकता।

समाजवाद के समर्थकों ने व्यक्ति को सामाजिक शक्तियों के अधीन घास या कम की तरह समझा। अपने आशावादी बुद्धिवाद के कारण वे विश्वास करते थे कि वह दिन दूर नहीं है जब सारी मानव

जाति हमारा विचार स्वीकार करेगी और उसके द्वारा अपने को नया रूप देगी।

बाद में समाजवाद की मुख्य शक्ति के रूप में सर्वहारा का उदय होने से वर्गगत एकता ने अन्य समूहगत भक्तियों को दबा दिया। राष्ट्रवाद का समाजवाद के प्राय साथ साथ ही जन्म और विकास हुआ और उसने अभिव्यक्ति की उतनी ही उर्वरता दिखायी। बिस्मार्क (१८१५-१८९८) का राष्ट्रवाद मैजिनी (१८०५-१८७२) के राष्ट्रवाद से उतना ही भिन्न है जितना सेण्ट साइमन या बाबेफ का समाजवाद फोरियर या प्रूधों के समाजवाद से भिन्न है।

विभिन्न समूहगत भक्तियों को समझने के प्रति उदासीनता और उनमें लाभप्रद सामजस्य स्थापित करने की उपेक्षा का दोहरा फल हुआ। ऐसी लापरवाही प्रतिशोध की आदी हो जाती है।

वर्गगत एकता को छोडकर अन्य समुदायगत भावनाओं की चिन्ता न करके समाजवाद ने अपने विरुद्ध उतावले राष्ट्रवाद को उभाडा। अन्य आवेगों की ही तरह इन दोनों आवेगों में तभी सामजस्य हो सकता है, जब दोनों अनन्यता की जिद छोड दें (अर्थात् यह भावना त्याग दे कि केवल हम ही सम्पूर्ण हैं)। समाजवाद और राष्ट्रवाद के बीच सही सम्बन्ध की समस्या बहुत हद तक अनिर्णीत ही पडी हुई है। यदि एशिया को उस विपत्ति से बचाना है, जिसने यूरोप को तहस-नहस कर दिया, तो इस स्थिति को ठीक करना पड़ेगा।

उतावला राष्ट्रवाद अपने उद्देश्य के लिए समाजवाद को अपने पजे में जकड और वशीभूत कर सकता है। जहाँ तक समाजवाद का अर्थ केन्द्रीकरण की क्रमोन्नति, सरकार के अधिकारों में वृद्धि, कार्य सम्पादन की प्रेरणा और दूसरे समूहों की स्वायत्तता में कटौती है, उसका उतावले राष्ट्रवाद का शिकार बन जाना निश्चित है। सूक्ष्मदर्शी हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा था "राजकुमार बिस्मार्क राज्य-समाजवाद की प्रवृत्ति प्रदर्शित कर

सकते हैं। इसी तरह उत्पादक समाजवाद राष्ट्रवाद का अपने हित के लिए उपयोग कर सकता है जैसा कि रूस में हो रहा है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि समाजवादी विचारों के विस्तार ने उत्पादन की समस्याओं को विस्मृत कर दिया। बार्नार्ड शॉ (१८५६-१९५०) ने बुद्धिमान स्त्री को अपनी 'गाइड' की शुरू की पंक्तियों में जो उपदेश दिया उससे किसीको अचम्भा नहीं हुआ। उनकी पुस्तक के शब्द है

> "श्रीमतीजी आपको समाजवाद सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का नाम बतलाना आसान है, लेकिन मेरी आपको यही सलाह है कि आप और आपके मित्र जब तक इस बात पर विचार न कर लें कि किसी प्रतिष्ठित सभ्य देश में सम्पत्ति का कैसे बँटवारा हो और अपनी समझ के अनुसार सर्वोत्तम निर्णय न कर लें, तब तक उन पुस्तकों की एक पंक्ति भी न पढ़ें; क्योंकि समाजवाद इस प्रश्न पर कुछ व्यक्तियों के दृष्टिकोण के अलावा और कुछ नहीं है।"*

उद्योग की प्रगति से ऐसा समझा गया कि उत्पादन की समस्याएँ हल हो गयी। जो भी कठिनाइयाँ हैं, उनका वितरण-क्षेत्र से सम्बन्ध है और वहीं उन्हें दूर किया जा सकता है। यहाँ शा फिर उन्हीं शब्दों में कहते हैं

> "याद रखिये, मैं नहीं कहता कि ये सुविधाएँ इस समय मिल ही जाती हैं। हममें से अधिकतर सस्ती और खराब चीजों का उपयोग कर रहे हैं और सस्ता एवं खराब जीवन व्यतीत कर रहे हैं, किन्तु यह मशीनों और बड़े कारखानों की गलती नहीं है और न उनके निर्माण में ही लगायी गयी अतिरिक्त पूँजी का दुरुपयोग है। यह उत्पादन

---

* बर्नार्ड शॉ : दि इन्टेलीजेन्ट वूमेन्स गाइड टु सोशलिज्म एण्ड कैपिटलिज्म, १९२८

के असमान वितरण तथा श्रम कम करके प्राप्त किये गये आराम का फल है।"†।

औद्योगिक सभ्यता का अधकचरापन और त्रुटियाँ उद्योगों की ओर प्रगति तथा वितरण का समीकरण (रेशनलाइजेशन) करके ही दूर की जा सकती है। १९ वीं शताब्दी तक यूरोप में मशीन का विरोध और मशीन-निर्माण का आतंक उतोपिया में ही सीमित रह गया। इस तरह के उतोपिया का उदाहरण सैमुअल बटलर का 'एरह्वोन' है, जिसमें मशीन रखने पर भी दण्ड दिया जाता है। 'आइकेरिया' से लेकर 'एरह्वोन' तक पूरा परिवर्तन युग फैला हुआ था, जिसके घनिष्ठतम पैगम्बर सेण्ट साइमन थे।

कई हिस्सों का मथन

हमने समाजवादी विचार के उस प्रारम्भिक इतिहास की समीक्षा की है, जिसमें समाजवाद एक प्रणाली नहीं बना था, जब सामाजिक और आर्थिक विकास के रूप में विभिन्न सम्भावनाएँ साथ-साथ सुलभ होने से विचार विभिन्न मार्गों, विभिन्न दृष्टिकोणों के रूप में फैल रहा था। विकास के पहले क्रम में समाजवादी विचार बहुत कम बढ़े। अपनी इस समीक्षा में यह मत हमने बर्गसा के इन पाण्डित्यपूर्ण शब्दों के प्रकाश में स्थिर किया है "मैं समझता हूँ कि दर्शन में खण्डन करने में जो समय लगाया गया है, वह बेकार गया है। अनेक विचारकों द्वारा एक-दूसरे की की गयी आलोचना में आज क्या बचा है? कुछ भी नहीं या बहुत ही थोड़ा। जिसका महत्त्व है और जो टिकता है, वही वास्तविक सत्य का छोटा सा अंश है, जिसमें हरएक का योगदान है। सत्य कथन स्वयं भ्रांतिपूर्ण विचार को दूर करने की शक्ति रखता है और बिना किसीका खण्डन किये हुए सर्वोत्तम खण्डन करनेवाला बन जाता है।"

विभिन्न समाजवादी विचार और सिद्धान्त भिन्न-भिन्न परिस्थितियों

---

† वही पृष्ठ १३९४०।

कम्युनिज्म के रूप में प्रस्तुत फोरियर का 'उद्योग में स्वायत्तता' का स्वप्न इसका एक उदाहरण है।

एशियाई समाजवादियों को शुरू के समाजवादियों के कुछ विचारों को उनके नवीन और बिलकुल असली रूप में ग्रहण करने का अवसर प्राप्त है। यह केवल अवसर ही नहीं, ऐतिहासिक जिम्मेदारी है। एशिया का समाजवाद पश्चिम के समाजवाद की हूबहू नकल नहीं हो सकता। इसे पुराने रचनात्मक विचारों को फिरसे ग्रहण करना है, लुप्त अनुभवों को आधार नहीं बनाना है। समाजवाद को कई हिस्सों का मकान जैसा समझने की जरूरत है। हो सकता है कि लोग अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव के अनुसार भिन्न भिन्न हिस्से चुनें, हो सकता है कि एक राष्ट्र भी किसी एक हिस्से के बजाय दूसरा हिस्सा पसन्द करे। सारे मानव-समाज को स्थान देने के लिए मकान को बडा होना चाहिए।

शुरू के समाजवादियों को मार्क्सरूपी क्राइस्ट के आने की केवल तैयारी करनेवाला जॉन बैपटिस्ट समझना बुद्धि का दिवालियापन होगा। उनका इस दृष्टि से अपना महत्त्व है कि उनके प्रकाश में मार्क्स कटे-छँटे समाजवाद के विस्तृत रूप में प्रतिबिम्बित हुए। समाजवाद में विचारों में एकरूपता की आशा करना, विचारों को जकडा हुआ समझना मूर्खता है। बढने के क्रम में इसमें बाहुल्यता थी और जब यह फूटा, तो इसके बहुरूप हो गये। समाजवाद मानव की नयी दृष्टि है, निरन्तर और दुर्निवार 'सामाजिक प्रश्न' का उत्तर है। निश्चय ही उत्तरों की एक विशाल श्रेणी हो सकती है। बलपूर्वक समता स्थापित करनेवाली मूर्खता ही तरह-तरह की पसन्दों और बदलती हुई रुचियों में निश्चिन्तता और एकरूपता ला सकती है।

अपने जीवन के सन्ध्याकाल में जान स्टुअर्ट मिल (१८०६-७३) ने अपनी आत्मकथा में लिखा था "हमने भविष्य की सामाजिक समस्या यह समझी कि संसार के कच्चे माल के सामान्य स्वामित्व और सम्मिलित श्रम के लाभों में सबके समान रूप से योगदान के साथ, व्यक्ति

की सबसे बड़ी धर्मगत स्वतंत्रता के साथ, कैसे एकता स्थापित की जाय। आज भी यही 'भविष्य का सामाजिक प्रश्न है'।" इस दुरूहता और जटिलता के कारण ही समाजवाद ने बहुत-से सामाजिक सुधारवादी ऐसे-वादों या उपदेशों को भी अपने में समेटा। जिनका समाजवाद स्वतंत्रतावादी है, जिनके लिए अब भी खोज की जरूरत बनी हुई है, जिनका समाजवाद समूहवादी है, उनकी यात्रा पूरी हो चुकी है। स्वतंत्रतावादी समूहवादी समाजवाद के तत्त्व की, विभिन्न समुदायों के साथ व्यक्ति और व्यक्ति के साथ विभिन्न समुदायों के सामंजस्य के रहस्य की बराबर खोज की जरूरत समझता है; क्योंकि यह नित्य की क्रिया का क्रम और जीवन का चिरन्तन आरम्भ है। ● ● ●

उतोपियावाद का उफान : २ :

एक सुयोग्य समाजशास्त्री डेविड रेजमैन ने हाल में ही कहा है "सारे संसार में इस बात को गलत सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि राजनीति के दो स्तर हैं—एक उदासीन उतोपियावादी या कल्पना-वादी और दूसरा वर्तमान राजनीतिक शोरगुल में सक्रिय रूप से भाग लेनेवाला या व्यवहारवादी। ऐसा सिद्ध करने का प्रयास करनेवाले बुरी तरह विफल होते हैं। केवल उतोपीय राजनीति नहीं, बल्कि सारे जीवन में ही विचार और व्यवहार ये दोनों प्रवृत्तियाँ है।"*

समाजवादी विचार के दो स्तर रहे हैं वैज्ञानिक समाजवाद की प्रधानता ने अस्वाभाविक रूप से उतोपीय प्रवृत्ति को आधृत कर लिया है। समाजवाद को खूब अच्छी तरह से समझने के लिए और कल्याण के तमाम तरीके ढूँढने की दृष्टि से आवश्यक है कि दोनों प्रवृत्तियों में सन्तुलन लाया जाय, उतोपियावाद के उफान का स्वागत किया जाय।

समाजवाद में उतोपीय विचार को कभी दबाया नहीं जा सका। उतोपियावादी अधिक सफल 'मतों' के साथ-साथ अपने विचारों की सत्यता का ज्ञान कराते रहे। निश्चय ही उनके द्वारा सामाजिक स्थितियों की आलोचना उनके व्यावहारिक सुझावों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी। मानव जीवन और सामाजिक प्रक्रिया के सम्बन्ध मे उनकी सूक्ष्म दृष्टि की ओर आम तौर पर ध्यान नहीं दिया गया। जॉन रस्किन (१८१९ १९००) के सम्बन्ध में एक आधुनिक लेखक ने लिखा है "जिस समय रस्किन के विचार सामने आये, उस समय उनमें से अधिकांश की कटु आलोचना हुई और उन पर क्षोभ

---

* डेविड रेजमैन फेसेज इन दि क्राउड।

प्रकट किया गया। बाद में उनमें से अधिकांश को स्वीकार कर लिया गया। उन विचारों में कला-कौशल मजदूरों को विश्वविद्यालय शिक्षा और बेकारों के लिए सरकारी काम जैसी बातों पर जोर दिया गया है।"† प्रारंभिक बातों पर जोर दिया जाता है मूलभूत बातें रह जाती हैं। चारों ओर की सामाजिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में एंजिल्स की दिव्य कल्पना की—जैसे इस समय की राजनीतिक राज-व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट कारीगर या दस्तकार के स्तर पर साधारण मजदूर को बहादुर बनाने पर जोर—बिल्कुल उपेक्षा की जाती है। उटोपियावाद के इस प्रकार प्रभावहीन किये जाने के बावजूद उटोपीय विचार उभर आया हुआ है। हमारे इस युग में भी पश्चिम तक में उटोपीय विचार की लहर प्रवाहित हो रही है।

यद्यपि एंगेल्स ने उटोपियावाद को उपहास और तिरस्कार के रूप में प्रयुक्त होनेवाला शब्द बना दिया है किन्तु एंगेल्स और मार्क्स दोनों में भविष्यवक्ता का बीज था। उटोपियाई तत्व उनमें बहुत गहराई तक था। उनकी दृष्टि व्यक्ति के भाग्य का बहुत आशाजनक चित्र देखती थी। मार्क्स ने लिखा : "कम्युनिस्ट समाज की उन्नत अवस्था में, जब श्रम-विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति को दास बनाना समाप्त हो जायगा और उसीके साथ ही बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम करनेवालों का अन्तर मिट जायगा जब श्रम जीवन का साधन ही नहीं बल्कि उसकी बड़ी आवश्यकता बन जायगा जब व्यक्ति की सभी क्षमताएँ, उत्पादन करनेवाली शक्तियाँ बढ़ जायेंगी, केवल तभी पूँजीवाद की सीमित परिधि से मुक्ति मिलेगी और समाज अपने झण्डे पर अपना सिद्धान्त 'हरएक से उसकी क्षमता के अनुसार, हरएक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' लिखेगा। सामाजिक क्रान्ति अर्थात् इतिहास में साम्यवाद के अन्तिम चरण का चरम परिणाम मानवता की मुक्ति और उसका व्यक्ति में पूर्ण रूप से विकास होगा। ईसाइयों की तरह निर्णायक दिन में विश्वास करनेवाले

† [illegible]

इन नये लोगो के मुकाबले साधारण उतोपियावादी का यही कहना है कि हमें तत्काल उस चीज के लिए स्थान बनाना चाहिए जिसके लिए हम प्रयास कर रहे हैं, ताकि हमारा वह लक्ष्य पूरा हो सके। वह क्रान्ति के बाद की छलॉग मे—विवशता के क्षेत्र से स्वतन्त्रता के क्षेत्र मे—विश्वास नहीं करता, बल्कि क्रान्ति की सततता में आस्था रखता है। वह सोचता है कि यदि भारी अव्यवस्था को रोकना है, तो यह जरूरी है कि जीवन और विचार की 'दो धाराओं' को एक मे मिलाया जाय। उसके विचार से क्रान्ति के पश्चात् के उतोपिया का जन्म क्रान्ति के पूर्व के उतोपियावाद से ही हो सकता है।

उतोपीय विचार पिछले एक सौ वर्ष और उससे अधिक समय तक जारी रहा, किन्तु औद्योगीकरण तथा समाज पर उसके प्रभाव से धीरे-धीरे उसकी अनुरूपता समाप्त हो गयी। जिन बुराइयों को वह (उतोपिया) बचाना चाहता था, वही बुराइयाँ घुस आयीं। समाज का सुव्यवस्थित विकास और सुदृढ आधार, जिन्हें वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता था, विकसित समाज में वस्तुत खो गये। जहाँ सामाजिक और आर्थिक जीवन सैकडों वर्षों से चले आ रहे कृषि और दस्तकारी के आधार पर आगे बढ रहा हो, वहाँ उतोपियावाद तुरत अनुरूपता प्राप्त कर लेता है। एशिया के अधिकतर देशों में उतोपीय विचार फल-फूल रहे है और यदि उन्हें ठीक दृष्टि से देखा जाय, तो वे उपयोगी हो सकते हैं।

'कैपिटल' के प्रथम खण्ड की भूमिका में कार्ल मार्क्स ने लिखा है "औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश कम विकसित देश को केवल भविष्य का चित्र दिखाता है।" पश्चिमी देशों के साथ बहुत हद तक यही बात हुई। फ्रास, जर्मनी, अमेरिका, इटली ने अपना रूप वस्तुत औद्योगिक दृष्टि से विकसित ब्रिटेन का चित्र देखकर बनाया। केवल समय की सीमा कम हो गयी। एशियाई देश यदि चाहें, तो उनका अनुसरण कर सकते हैं और बराबरी करने के लिए पश्चिम की नकल कर सकते हैं।

आधी शताब्दी पूर्व डु ब्वायस। (Du Bois) ने कहा था और

'मूलाधार' है। उन्होंने लिखा "समाजवाद का लक्ष्य कारखाने को नमूने का आधार बनाकर नयी सामाजिक व्यवस्था की पूरी सहकारिता स्थापना करना है। समाज के अधिकार कारखाने के व्यावहारिक अधिकार होंगे। पूँजी और विज्ञान द्वारा निर्मित उद्योग-व्यवस्था से समाजवाद न केवल लाभान्वित होगा, बल्कि उस सहयोग की भावना से और भी फायदा उठायेगा, जो फैक्टरी-जीवन की विशेषता है, जो काम करनेवालों की दक्षता और शक्ति का उत्तम रूप है।" आधुनिक भावना की सर्वप्रथम विशुद्ध प्रतिमूर्ति सेण्ट साइमन थे। उनका ऐसे समय में और ऐसे देश में आविर्भाव होना, जहाँ उद्योग का विकास शुरू ही हो रहा था, उनमें सिद्ध जैसी शक्ति होने का द्योतक है।

रावर्ट ओवेन (१७७१-१८५८) जो सेण्ट साइमन की तरह उद्योग के गुणगायक नहीं, बल्कि ब्रिटेन के औद्योगिक उत्थान के युग में स्वयं काफी सफल उद्योगपति थे, उतोपीय समाजवाद के सच्चे स्रोत थे। ओवेन की न्यू लेनार्क मिल में दो हजार कर्मचारी थे, जिनमें से पाँच सौ ५ वर्ष से लेकर १० वर्ष तक के निराश्रित बच्चे थे। ये कर्मचारी १२ घण्टे काम करते थे। ओवेन ने एक आदर्श कारखाना और आदर्श समुदाय तैयार करने का प्रयास किया। उन्होंने कंगाल बच्चों को भरती करना बन्द कर दिया, नौकरी के लिए कम-से-कम उम्र १० वर्ष निश्चित कर दी और काम के घण्टे १२ से घटाकर पौने ११ कर दिये। "उन्होंने अपने कर्मचारियों को अधिक वेतन दिया, काम न करने के समय का भी पैसा दिया, बीमारी और वृद्धावस्था के बीमे की व्यवस्था की। अच्छे मकान दिये, लागत मूल्य पर खाद्यान्न दिया और शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाएँ प्रदान कीं। ओवेन को विश्व-प्रसिद्धि और अच्छा मुनाफा, दोनों मिले।"

उत्पादक कम्पनियों के अधीक्षकों के समक्ष पेश करने के लिए तैयार किये गये एक भाषण में उन्होंने लिखा "आपकी तरह मैं भी आर्थिक लाभ के लिए निर्माता हूँ।" उन्होंने कहा "हरएक उत्पादक सर्वोत्तम

मशीनें लगाने और उनकी हिफाजत करने की आवश्यकता समझता है। जब निर्जीव मशीनों का लगाव रखने का इतना काम हो सकता है, तब आप यदि उनसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण और अधिक आश्चर्यजनक रूप में निर्मित अपनी मशीनों की चिन्ता करें तो क्या काम नहीं हो सकता !"

कारखानों में स्थिति के सुधार से निस्सन्देह अधिक काम हुआ लेकिन उनसे बेहतर बहु समाजों की स्थापना नहीं हुई। अच्छा वातावरण और शिक्षा ही मनुष्य को स्वस्थ चरित्र प्रदान कर सकती है। ओवेन ने स्वयं ही अनुभव किया कि शिक्षा के एक पक्ष के रूप में चारों ओर घूमते हुए वातावरण की भी जरूरत है। इस रूप में शिक्षा उनके 'रचनात्मक कार्य' का महत्वपूर्ण अंग बन गयी।*

जिस समय ओवेन क्रान्तिकारी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन का संचालन कर रहे थे उन्होंने अपने दो मुख्य सहायकों मौरिसन और जे ई स्मिथ को आन्दोलन के मुखपत्र 'पायनियर' और 'क्राइसिस' में ऐसे लेख लिखने के काम में लगाया जो वर्ग विरोध को बढ़ाता है। ओवेन ने चेतावनी दी "ये सभी व्यक्ति, जो पीड़ित हैं, अभिमान-पूर्ण व्यवस्था के शिकार हुए हैं और सभी करुणा के पात्र हैं इसलिए आप यदि महान् और शानदार क्रान्ति सम्भव हो तो किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाये बिना हिंसा रक्तपात और किसी प्रकार की बुराई किये बिना केवल ऐसे व्यापक नैतिक ढंग से करें जो व्यक्तियों को प्रभावित करे। शीघ्र आपको समझ आयेगी कि प्रतिरोध करना मूल्यपूर्ण होगा।"

ऐसे दुर्निवार विलक्षण व्यक्ति का स्वप्न उन्होंने अपने सहयोग व्यवस्था पर आधृत गाँवों में रखा जिसकी 'स्थापना संयुक्त श्रम व्यय और सम्पत्ति तथा समान सुविधा' के सिद्धान्त के अनुसार हुई थी। इन गाँवों के लिए ऐसी कृषि की व्यवस्था थी, जिसके साथ दस्तकारी का काम भी जुड़ा हुआ हो ऐसी कृषि जिसका आधार 'हल' के बजाय 'फावड़ा' हो। इन गाँवों के लिए ऐसी व्यवस्था थी जिसमें समस्त मितव्ययता और

* जी डी एच कोल : रावर्ट ओवेन।

हितगत भिन्नता न हो। 'एक पिन की नोक बनानेवाला, कील का सिर बनानेवाला, धागे के टुकड़े करनेवाला या व्यर्थ की बातें करनेवाला, बेमतलब और बिना कुछ समझे खेत की ओर या इधर देखता रहे, ऐसा इस समाज में न होगा, बल्कि इससे ऐसा श्रमजीवी वर्ग तैयार होगा जो सक्रिय और ज्ञानवान् होगा।' इन गाँवों में किसी प्रकार के चुनाव या प्रतिनिधि सस्थाओं की व्यवस्था नहीं थी, जो गुटबन्दी और कटुता की जड होती हैं, बल्कि हर व्यक्ति पर सीधी जिम्मेदारी थी। उन्हें ही विभिन्न कामों को आपस में बाँटकर करना था।

सहकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में ओवेन की धारणा के तीन स्तर थे। राकडेल के अग्रगामियों ने १८४४ में 'अपने सदस्यों के बीच वस्तुओं के विक्रय के लिए ही नहीं, बल्कि समाज के निश्चय के अनुसार चीजों के निर्माण के लिए, बेकारों को काम देने के लिए भी' अपना सगठन बनाया। उन्होंने यह भी व्यवस्था की कि 'जितनी भी जल्दी सम्भव होगा समाज उत्पादन, वितरण, शिक्षा और प्रशासन का अधिकार सँभाल लेगा या दूसरे शब्दों में आत्म-निभर और सयुक्त हित मे विश्वास करनेवाली बस्तियों की स्थापना करेगा अथवा अन्य समाजों को ऐसी बस्तियाँ स्थापित करने मे सहायता देगा।'

ओवेन की बस्तियों, आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहकार और नयी चेतना फूँकनेवाले सगठनों के आधार पर स्थापित कृषि-व्यवस्था के द्वारा लोग नये जीवन का गोपनीय तत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। व्यवसाय-गत नव-चेतना की नीति 'ग्रैण्ड नेशनल गिल्ड ऑफ बिल्डर्स' (भवन निर्माण करनेवालों का प्रधान राष्ट्रीय शिल्पी सघ) नामक संस्था के स्थापना-सम्बन्धी प्रस्तावों में घोषित की गयी थी। इस सघ में वास्तुकला विशेषज्ञ, सर्वेक्षण करनेवाले, राज, बढई, जोडाई का काम करनेवाले, ईंट बैठानेवाले, प्लास्टर करनेवाले, पटिया का काम करनेवाले, पाइप लगानेवाले, खिडकियों में शीशे लगानेवाले, घर सजाने का काम करनेवाले, सफेदी करनेवाले, टाइल का काम करनेवाले तथा ईंट तैयार करनेवाले सदस्य थे।

संघ के प्रस्ताव जो १८११ में तैयार हुए, इस प्रकार थे

१ भवन निर्माण के काम में लगे हुए सभी व्यक्तियों की स्थिति में सुधार, उनके लिए नियमित काम की व्यवस्था करना।

संघ के उद्देश्य

२ उनकी सेवाओं के लिए उचित पारिश्रमिक की व्यवस्था।

३ काम के लिए उचित समय निश्चित करना।

४ कारीगरों और मजदूरों, दोनों को शिक्षित करना।

५. अच्छी सामग्री तैयार और व्यवस्था दिखलाना तथा बूढ़ों और अक्षम लोगों के सहायतापूर्वक और आराम से देख-रेख होने की व्यवस्था करना।

६ सारे कार्यों का सामंजस्यपूर्वक नियमन करना और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धन एकत्र करना।

७ उचित मूल्य में जनता के लिए अच्छे मकान की व्यवस्था करना।

८ संघ के सभी सदस्यों के धर्म के लिए आरामदायक स्थान प्राप्त करना सुव्यवस्थित और बड़े बड़े भवन निर्माण के काम में आनेवाली चीजों के भाण्डार के लिए स्थान, दफ्तर, सभाओं और बैठकों के लिए हाल प्राप्त करना सदस्यों तथा बच्चों को नैतिक तथा उपयोगी विद्याओं की शिक्षा देने के लिए स्कूलों और प्रयोगशालाओं की व्यवस्था करना और

९. जिन क्षेत्रों में भवन निर्माण कार्यालय स्थापित हों उनमें भवन निर्माता बैंकों (बिल्डर्स बैंक) की स्थापना करना।

प्रत्येक सदस्य के हाथ १५ पौण्ड का एक या अधिक शेयर बेचकर कम-से-कम १५ हजार पौण्ड की पूंजी इन उद्देश्यों को संघ के उद्देश्यों कार्यान्वित करने के लिए जमा की जायगी।

की कार्यान्वित

१ निर्माणकर्त्ता का हर वर्ग ऐसे व्यक्तियों करने के साधन का होगा जिन्होंने पाँच वर्ष काम की शिक्षा पायी हो और १८ वर्ष से अधिक उम्र के हैं।

२. प्रत्येक भाग (संघ) की देखभाल के लिए एक सभापति, उप-

सभापति, कोषाध्यक्ष, मन्त्री और सहायक होंगे, जिनका चुनाव संघ द्वारा ही होगा। प्रत्येक लॉज १० व्यक्तियों पर एक फोरमैन, एक जनरल सुपरिण्टेण्डेण्ट या जहाँ जरूरी होगा काम की देखभाल करने वाले क्लर्क रखेगा। बैठकें साप्ताहिक हुआ करेंगी।

३ स्थानिक लॉज या संघ स्थानीय कार्यों की देखरेख के लिए अपनी केन्द्रीय समितियाँ चुनेंगे। प्रत्येक स्थानीय समिति में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, मन्त्री तथा सहायक होंगे, जिनका चुनाव स्थानीय संघ ही करेगा। केन्द्रीय स्थानिक समिति अपने क्षेत्र में भवन निर्माण के कार्यों की देखरेख करेगी और उसकी बैठक नित्य हुआ करेगी।

४ केन्द्रीय समिति अपना एक जिला बनायेगी। सभी केन्द्रीय समितियों के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक जिला समिति बनेगी।

जिला-समितियों की बैठक हर तीसरे मास हुआ करेगी, वह स्थानिक केन्द्रीय समिति की रिपोर्ट पर विचार करेगी, कार्रवाइयों का नियमन करेगी और जिलों के हिसाब-किताब का निरीक्षण करेगी।

५ प्रत्येक जिला समिति लन्दन स्थित प्रधान राष्ट्रीय समिति के लिए अपना एक प्रतिनिधि चुनेगी।

प्रधान राष्ट्रीय समिति की बैठक वार्षिक हुआ करेगी और वह संघ के सामान्य हितों पर विचार तथा तत्सम्बन्धी निर्णय करेगी।

६ प्रधान राष्ट्रीय समिति का अध्यक्ष तीन वर्ष के लिए चुना जायगा (किन्तु कारण होने पर वह हटाया जा सकेगा)। उसे अपने सहायकों की नियुक्ति का अधिकार होगा। उन सभी सहायकों को मिलाकर एक स्थायी परिषद् होगी, जिसका काम, जिला तथा केन्द्रीय समितियों की रिपोर्ट पर विचार करना, भवन निर्माताओं के अपने गजट में हर सप्ताह सारी बातों को सामने रखना तथा राज्य में भवन निर्माण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकट करना होगा।

७ सभी चुनावों में मतदान गुप्त प्रणाली से होगा।

ठोस उतोपियावाद की तरह ओवेनवाद का तत्त्व भी सामु-

धार्मिक निमाण है। यह सबसे अच्छा कृषि में, कृषि बस्तियों में और सामुदायिक गाँवों में 'प्रस्फुटित' हो सकता है। किन्तु सहकारिता और दस्तकारी में भी विकास की गुंजाइश थी बशर्ते कि स्वायत्तता विकेन्द्रीकरण और सहयोग का मजबूती से पालन किया जाय।

जर्मनी में एफ. डब्लू. रैफिजन (१८१८-८८) और एच. शुल्ज डेलिच (१८०८-८३) या इटली में लुगी लुजाटी (१८४१ १९१७) द्वारा विकसित ढंग की बैंक सहकारी समितियाँ और उपभोक्ता सहकारी समितियाँ भी सामुदायिक निर्माण नहीं कर सकीं क्योंकि उन के सदस्य बहुत भावुक थे। ऐसे सीमित और आर्थिक सहयोग में साथ साथ रहने की कोई बात नहीं थी इसके बिना किसी समाज का गठन नहीं होगा।

पी. जे. बी. बुशेज (१७९६ १८६५) ने अपने पत्रों 'ल यूरोपीयन' और 'ल अटेलियर्स' के माध्यम से उत्पादकों की सहकारी समितियों के लिए प्रचार किया। कुछ बातों को छोड़ दिया जाय, तो उपर्युक्त सहकारी समितियों की तरह सामुदायिक निर्माण की दिशा में यह एक बड़ी प्रगति थी। फिर भी आदर्श नमूना ऐसा पूर्ण सहकार ही है, जिसमें उत्पादन और उपभोग दोनों पक्षों को मिलाया जा सके। यूटोपियावादियों का सपना था कि ऐसे वातावरण में ही व्यक्ति की विभिन्न अभिरुचियाँ (सर्वांगीणता) एक दूसरे के निकट आ सकती हैं और उनमें सामंजस्य हो सकता है।

ब्रिटेन में आर्थिक परिवर्तनों की लहर जारी थी और १८९ तक वर्गों की स्थिति में भारी परिवर्तन हो चुका था। कृषि में पूँजीवाद की विजय हो रही थी। १७५ से १८२ के बीच भूमि के घेरों की संख्या सबसे अधिक हो गयी और सारे बासठ लाख एकड़ भूमि घेरे में आ गयी। नगरों में बड़े कारखाने बन जाने से गृह-उद्योगों का ह्रास हुआ तो छोटे किसानों के लिए अपनी थोड़ी भूमि के बल पर गाड़ी खींचना असम्भव हो गया। छोटे किसान जो सामन्तवाद और भारी टैक्सों से पहले ही दबे थे बड़ों से प्रतिस्पर्धा भी नहीं कर सकते थे। १८१ के आसपास किये गये

आकलन के अनुसार अच्छे कारखाने काफी बढ गये थे। हर सूती मिल में काम करनेवाले मजदूरों की अनुपातिक संख्या १७५, रेशम मिल में ९३, और ऊनी मिल में ४५ थी। लोहे और इस्पात के कुछ बड़े कारखानों में डेढ हजार से दो हजार तक कर्मचारी थे। १८२० से १८६० के बीच सूती धागा उद्योग का उत्पादन प्राय ९ गुना अर्थात् १० करोड ६५ लाख पौण्ड से बढकर ९१ करोड पौण्ड हो गया था, किन्तु काम करनेवालों की संख्या केवल दूनी अर्थात् एक लाख १० हजार से बढकर २ लाख ४८ हजार ही हुई, जब कि श्रमगत व्यय प्रति पौण्ड ६ ४ पेंस से घटकर २ १ पस अर्थात् दो तिहाई कम हो गया। उद्योग के पूँजीवादीकरण का यह विस्तार था, हाथ से निर्माण को मशीनों से निर्माण में बदल देने की यह स्थिति थी।

होलिओक ने लिखा है "१८२० से १८३० तक विचारक वर्ग सहकार और लघु समाजों (कम्युनिटीज) को 'उद्योग का धर्म' समझते थे। लघु समाजों (उद्योग के धर्म को जिनका रूप लेना था) की घोषणा १८२५ से १८३० तक ऐसी ही साधारण-सी बात थी, जैसी आज के युग में ज्वायट स्टाक कम्पनियों की स्थापना की घोषणा।"† चौथे दशक के मध्य तक अर्थ-व्यवस्था में ज्वायट स्टाक कम्पनियों का बोलबाला हो गया। १८४४ से १८४६ तक तीन वर्षों के भीतर जब ब्रिटेन की वार्षिक आय २० करोड पौण्ड आँकी जाती थी, संसद ने २१ करोड पौण्ड की लागत से ८ हजार मील लम्बी सड़कों के निर्माण की स्वीकृति दी। इग्लैण्ड मे ओवेन की सूक्ष्म दृष्टि और दूरदर्शिता विलम्ब से आयी। यह कोई अनहोनी बात नहीं थी कि अपने जीवन के अन्तिम १५ वर्षों में ओवेन का अपने देश और उसके प्रगति क्रम से कोई सम्बन्ध नहीं था। स्वय ओवेन ने भूमि, कृषि और उतोपियावाद के महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को अच्छी तरह नहीं समझा। उनके मन की यह एक अवस्था थी, जो होलिओक के शब्दों में उनके विचारों और उतोपिया को 'उद्योग के धर्म' के रूप में

† जी० जे० होलिओक हिस्ट्री ऑफ कोआपरेशन, पृष्ठ, ७१

प्रूधों के विचार से मानव का सबसे बडा मानवीय गुण उसमें विभिन्नताओं और विपरीतताओं का होना है। उनको नियम और प्रणाली के रूप में समान करना मानव के महत्त्वपूर्ण और शरीर धर्म पर आधृत तत्व को नष्ट करना होगा। इसकी रक्षा करना और ऐसी स्थिति तैयार करना जिसमें इसे शक्ति प्राप्त हो, यही प्रूधों की कामना थी। उन्होंने अपने दर्शन और जीवन में 'तत्त्वों की विपरीतता और विपरीतता का समय' स्वीकार किया और व्यक्ति मे 'असामाजिक सामाजिकता' की व्याख्या की। वे प्राय कहते थे "एक चीज जिसे मैं अत्याचारियों से भी ज्यादा नापसन्द करता हूँ, वह शहीद हैं।" इसी तरह राजनीति, राजनीतिज्ञों और एकरूपता के लोकतन्त्र के प्रति विरोध, फिर भी ससद के लिए चुना जाना, उनकी विशेषता थी।

अपने समय में जो सबसे बडी विशेषता उन्होंने देखी वह 'विघटन' था। उन्होंने अनुभव किया कि यह 'समाज की कठोरतम स्थिति' है। सामाजिक जीवन अपने उत्तम और विविधतापूर्ण गुणों, सहयोग भावनाओं और परम्पराओ से रहित होता जा रहा था। नयी प्रणाली का कारण और कार्य, केन्द्रीकरण का विस्तार व्यक्ति को बिलकुल अकेला बनाये दे रहा था। अत समाधान सामाजिक पुनर्निर्माण को नये ढाँचे में बदल देना, समाज के सारे अगों में नवजीवन भर देना था। उन्होंने समाज का आधार बदल देने के दो तरीके सोचे पहला यह कि कर्म-समूहों के सघ 'खेतिहर औद्योगिक सघ' को आर्थिक आधार बनाया जाय और दूसरा था सत्ता का विकेन्द्रीकरण, अधिकार का विभाजन और सामुदायिक तथा क्षेत्रीय स्वायत्तता पर आधृत राजनीतिक ढाँचा। दोनों में सघवाद, विकेन्द्रीकरण और 'प्रभुता पुंज' मुख्य अग थे।

अलकारहीन राज्य और अलकारहीन व्यक्ति का सान्निध्य राज्य और व्यक्ति दोनों को दयनीय बनाता है। लाभदायक साहचर्य उस व्यक्ति का है, जिसका अपने विभिन्न समूहों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। यही कारण है कि व्यापक मताधिकार जैसे प्रभावशाली राजनीतिक विचारों

के प्रति प्रूधों की अरुचि थी। उन्होंने अनुभव किया कि इन व्यक्तियों से 'आणवीकरण (Atomisation) किया जा रहा है जिसके द्वारा विधायक, यह समझकर कि वह लोगों को एक स्तर में बँधते नहीं देख सकता व्यक्तियों को एक-एक करके अपने मत प्रकट करने के लिए निमन्त्रित करता है। इसमें 'संगठनात्मक सिद्धान्त' का अभाव है। यदि राष्ट्र को वर्गों का समूह नहीं बनाना है, तो आवश्यकता इस बात की है कि स्वाभाविक समूह बनाये और विकसित किये जायें। बिना इसके कोई वैयक्तिक स्वतन्त्रता और आपसों में सम्पर्क नहीं हो सकता। गुटाबों में सामाजिक समूहों के नष्ट होने का मतलब स्वयं राष्ट्र का नैतिक विनाश, नगरों कम्यूनों और जिलों में राजनीतिक जीवन का उन्मूलन तथा सारी म्युनिसिपल और क्षेत्रीय स्वायत्तता की समाप्ति होगा।"

उन्होंने केन्द्रीकरण को समुदाय के विघटन और समाज के निर्जीवीकरण के कारणों में से माना क्योंकि इसमें जैविक नहीं, यान्त्रिक सिद्धान्त निहित है। अपने जीवन के अन्त में उन्होंने लिखा कि यथार्थ 'एकता आकार के उलटे अनुपात में है। इसलिए प्रत्येक समूह को लोगों के दूर-दूर रहने पर और स्वतन्त्र होने से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह उन्हें सघन रूप में एक-जैसा कर देने से नहीं प्राप्त हो सकती।' उन्होंने यह नियम राजनीति पर भी लागू किया और अनुभव किया कि फ्रान्स में १ ... इकाइयाँ राज्य में विलीन कर दी गयी हैं जो आवश्यकता या संघ की स्थिति में ही फल-फूल सकती हैं। उन्होंने पेरिस के लगातार बढ़नेवाले प्रभाव का विरोध किया क्योंकि प्रशासनिक वित्तीय और सैनिक सारा जीवन सिमटकर पेरिस में केन्द्रित होता जा रहा था। उनका ख्याल था कि यदि राजधानी हावी हो गयी, तो मानव स्वतन्त्र नहीं रह सकता।

प्रूधों ने फ्रांसीसी क्रान्ति में निहित एकरूपता और केन्द्रीकरण करनेवाली प्रवृत्तियों का विरोध किया। निश्चय ही बेंजामिन द कान्स्टेण्ट (१ ६७–१८१) के निम्नलिखित मत से उनकी सहमति होती। "यह उल्लेखनीय है कि यहाँ पर भी एकरूपता की इतनी गुंजाइश नहीं है

जितनी व्यक्तियों के अधिकार और स्वतन्त्रता के लिए की गयी क्रान्ति में। नियमबद्ध भावना पहले एकरूपता के ध्यान में मग्न हुई। अधिकार के मोह ने तुरन्त सोचा कि इस एकरूपता से मुझे किस सीमा तक लाभ है। यद्यपि राष्ट्रभक्ति केवल हितों और तरीकों तथा स्थानीय परम्पराओं के प्रति लगाव के रूप में विद्यमान है, तथापि हमारे स्वघोषित राष्ट्रभक्तों ने इन सबके विरुद्ध युद्ध घोषित किया। उन्होंने राष्ट्रभक्ति के इस प्राकृतिक स्रोत को सुखा दिया। स्थानीय आदतों से उत्पन्न हितों और स्मृतियों में प्रतिरोध के जीवाणु होते हैं, जिन्हें सत्ता बहुत अन्यमनस्क होकर ही बर्दाश्त करती है और जल्दी खत्म कर देना चाहती है। व्यक्ति जल्दी इसके फन्दे में आ जाते हैं और उन पर यह ऐसे ही फैल जाती है जैसे बालू पर।"

आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त 'सम्पत्ति चोरी है' के द्वारा ससार को चेतावनी दी। वही सम्पत्ति न्यायसगत है, जिस पर सबका सामूहिक या निर्वैयक्तिक रूप से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष एव व्यक्तिगत अधिकार हो। मजदूरों को उतना ही एक साथ होने की जरूरत है, जितना 'वस्तुओं की मॉगों, वस्तुओं के सस्तेपन, उपभोग की आवश्यकता और उत्पादकों की सुरक्षा की दृष्टि से जरूरी हो।' यदि ऐसी सहकारी समितियाँ अपनी वित्तीय व्यवस्था कर सकें अर्थात् उन्हें अनुग्रहणपूर्ण ऋण मिल सके, तो वे उत्पादन का महत्त्वपूर्ण दृष्टिपथ बन सकती हैं। इस उद्देश्य के लिए प्रूधों ने ऐसे जनवादी बैंक की योजना बनायी, जो वस्तुओं को आधार मानकर विनिमय नोट जारी करे और कोई ब्याज न ले। उन्होंने ऐसे गोदामों की स्थापना पर भी जोर दिया, जो जमा की गयी वस्तुओं के आधार पर जमानत जारी कर सकें। मजदूर पूँजीपति की दासता से तभी मुक्त हो सकता है, जब वह स्वामित्व और धन लगाने का काम स्वय कर सके। इस दृष्टि से ऋण, खासकर सस्ती दर पर ऋण की व्यवस्था महत्त्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक आवश्यकता हो जाती है।

लुई ब्लाक और लासेल ने जिस प्रकार के राष्ट्रीय कारखानों के लिए बहुत जोर दिया था, उनका प्रूधों की दृष्टि में कोई उपयोग नहीं था।

उनका मत था कि ऐसे कारखानों में राज्य श्रमजीवियों पर हावी हो जायगा। प्रूधों ने १८४८ में राज्य द्वारा राष्ट्रीय कारखानों का विघटन किये जाते हुए और उनके एक लाख बीस हजार कर्मचारियों को यह आदेश दिये जाते हुए देखा था कि या तो तुम लोग सेना में भरती हो या पेरिस से निकल जाओ। बाद में प्रूधों के विचारों को ही जोसफपोन कार्न (१८४१-१९११) ने अपनी कृति का आधार बनाया। उन्होंने कहा : "केवल बन्धनमुक्त सहकार्य ही ऐसे लघु समाजों का निर्माण कर सकता है, जिनमें आर्थिक स्वतन्त्रता हो।" सहकारिता के आधार पर स्वामित्व और संचालनवाले कारखानों को एकत्र सम्बद्ध करना जरूरी है। समाजवाद के लिए हल की जाने की समस्या राजनीतिक नहीं, बल्कि आर्थिक है। उनका खयाल था कि ऐसे जिनका उस समय निर्माण हो रहा था केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति रोकेंगी और आर्थिक विकेन्द्रीकरण में सहायक होंगी।

स्वामित्व व्यवस्था के सिद्धान्त और संघवाद के सिद्धान्त को मिला कर उन्होंने स्वतन्त्रता और न्याय के आदर्श को वास्तविक बनाने की कोशिश की। केवल इसी मार्ग से एकता का परित्याग किये बिना प्रगति हो सकती है। उनकी दृष्टि से आन्तरिक सम्बन्ध या व्यवस्था ही रचनात्मक समाज का हृदय है। उन्होंने कभी भी श्रमजीवियों को ऐसा उन्न मजदूरियाँ नहीं माना जिनके कुछ हजार लोग दूसरे कुछ हजार लोगों की तरह थे। उनकी मुक्ति का साधन उन्हींमें होना चाहिए। बाहरी लोगों का उनका नेता होना उनपर जुल्म ही होगा भले ही वे बाहरी लोग कितने ही योग्य और अनासक्त क्यों न हों। समष्टि के आधार पर शोषण के जो साधन बने हैं, अन्य आधारों पर उनके चलते भी कहीं अधिक कम हैं।"*

राजनीतिक जीवन और आर्थिक संगठन में छोटे-छोटे और स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक निकाय प्रूधों के मत से स्वतन्त्रता और न्याय के पोषक हैं।

* वही, पृ० १।

राजनीति और पार्टियों का उनके लिए कोई उपयोग नहीं था, दोनों व्यक्तियों को उनकी नजदीकी चीजों से दूर करनेवाली थीं। जो चीज (अधिकारवादी राज्य) हानिकर है, उसे हानिरहित बनाने से किसी उद्देश्य की सिद्धि न होगी। इसलिए उन्हें मूल हेतु (Raison d'etat) के दैत्य से गहरा सन्देह था। 'प्रत्येक राज्य स्वभाव से कब्जा बढानेवाला है' और बराबर समाज के क्षेत्र का अतिक्रमण करता जाता है। केवल संघीय राज्य ही ऐसा हो सकता है, जिसके अधिकारों पर जनता का नियन्त्रण रहे। ऐसे राज्य में, जो प्रदेशों का गणतन्त्र हो, आज की पार्टियाँ और राजनीति निरर्थक बन जायगी।

ट्रेड-यूनियन जैसे दूसरे संगठनों में भी केन्द्रीकरण की बुराई छिपी हुई है। ट्रेड-यूनियनों का जन्म वहीं होता है, जहाँ उत्पादन भारी पैमाने पर होता है और श्रमजीवी तथा उत्पादन के साधन समाज से अलग हो जाते हैं। इस प्रकार ट्रेड यूनियनों का जन्म अनेक सामाजिक बुराइयों के समूह से हुआ।

ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासित छोटे राज्य या कम्यून, जो स्वतन्त्र तथा आर्थिक दृष्टि से समान हो, हरएक अपने व्यवसाय, अपने खेत और अपने परिवार के स्वामी हों—यही प्रूधों का आदर्श था। सब मिलाकर जरूरत यह थी कि स्वायत शासित सामाजिक व्यवस्थाएँ एक-दूसरे के साथ सघ सिद्धान्त (Principe Federatif) से जुडी हों।

केन्द्रीकरण तथा चर्च, राज्य, राजनीतिक दलों आदि शोषण के सभी सगठित रूपों के विरोध को साथ लेकर पूँजीवाद तथा विशेषाधिकार के प्रति उनका गहरा विरोध और भी सम्पन्न हुआ। जैसा कि ब्रोगेन ने कहा है, वे सम्भवत 'खेतिहरों के लिए समाजवाद' के उपदेष्टा बन गये। निस्सन्देह उन्होंने उन छोटे लोगों, अभागे लोगों की भावनाएँ व्यक्त कीं, जिनकी पूँजीवाद की चक्की के नीचे दबने से हो रही छटपटाहट का, जैसा कि मार्क्स ने प्रूधों की आलोचना करते हुए कहा है, कोई स्थायी ऐतिहासिक प्रभाव नहीं था, और जो समाज की गति रोकने में असमर्थ

सघर्ष न करके समाज के पीठ पीछे और गुप्त रूप से उसके सकीर्ण ढाँचे में अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करना पसन्द करता है। यह आन्दोलन निश्चित रूप से सकट में पड़ेगा।'

क्रान्तिकारी के रूप में पेरिस कम्यून को मार्क्स का पूरा समर्थन मिला। कम्यून की उल्लेखनीय बात या 'इसका सच्चा रहस्य' यह था कि यह 'वस्तुत श्रमजीवी वर्ग की सरकार थी' और यह वास्तव में श्रमजीवियों द्वारा सचालित सरकार थी, उत्पादकों की स्वायत्त सरकार थी। व्यापक मताधिकार से उत्पन्न, प्रत्याह्वयन (रिकाल) और शासनादेश (मैण्डेण्ट) से नियंत्रित यह कम्यून ससद के रूप में नहीं था, बल्कि काम चलानेवाली सस्था था और कार्यपालिका के साथ ही विधानपालिका भी था। यदि सारे फ्रास में ऐसे कम्यून बन जाते, तो केन्द्रीय सरकार के लिए थोड़े से ही काम रह जाते। 'कम्यून विधान समाज को वे सभी शक्तियाँ देता, जो अब तक राज्य की परान्नभोजी रूपी उस ग्रन्थि में भरती रहीं, जो ग्रन्थि समाज की कीमत पर मोटी होती है और समाज की मुक्त गतिविधि को रोकती है। इस एक कार्य से ही वह फ्रास में नयी चेतना ला सकता था।'

इस प्रकार मार्क्स क्रान्ति के बाद ही नहीं, बल्कि कान्तिकारी कार्रवाई के भीतर भी सत्ता का विकेन्द्रीकरण और अधिकारवृद्धि में कटौती चाहते थे। फिर भी क्रान्ति के पूर्व उन्होंने ऐसे प्रयासों, साहचर्यमूलक चेष्टाओं की आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने स्वाभाविक प्रवाह की जरूरत नही मानी। वस्तुत उन्हें बराबर यह भय बना हुआ था कि कहीं रचनात्मक कार्य क्रान्तिकारी शक्ति को खीच न ले। इसी भय के कारण उन्होंने जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के गोथा कार्यक्रम में उपभोक्ता सहकारी समिति विषयक सिद्धान्त का विरोध किया। उन्होंने इस सिद्धान्त की खिल्ली यह कहकर उडायी कि यह 'असाधारण दैवी चिकित्सा' है, यह 'सकीर्ण विचारों का आन्दोलन' है। १८८६ में एगेल्स ने बेबेल (१८४० १९१३) को सलाह दी कि वे रचनात्मक कार्यों के लिए नहीं,

बल्कि पार्टी को ही वे श्रमजीवियों की सहकारी समितियों को पट्टे पर कृषि योग्य भूमि देने की माँग करें। १८९२ में जर्मन पार्टी कांग्रेस ने निर्णय किया कि 'पार्टी इसी स्थिति में सहकारी समितियों की स्थापना के लिए स्वीकृति दे सकती है, जब उनके द्वारा राजनीतिक या ट्रेड-यूनियन संघर्ष में अनुशासन के मामलों में दण्डित कामरेडों के लिए सम्मानपूर्ण सामाजिक जीवन बिताने की व्यवस्था हो या इन समितियों से आन्दोलन में सहायता मिल सके। शेष बातों के लिए 'पार्टी सहकारी समितियों की स्थापना के विरुद्ध थी।

दण्डित कामरेडों के लिए सहकारी समितियाँ 'सम्मानपूर्ण सामाजिक जीवन' का साधन बनें, इसका मतलब यह हुआ कि उनमें समाज को पुनर्गठित करने की शक्ति थी किन्तु इन समितियों का व्यापक हित के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता था—ऐसा था जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का जान-बूझकर किया हुआ निर्णय। मार्क्स की भविष्यवाणी सत्य हुई। उन्होंने फ्रांस-प्रशिया युद्ध शुरू होने पर जुलाई १८७० में एंगेल्स को लिखा था : 'फ्रांसीसियों को पिटाई की जरूरत है। यदि प्रशियन जीते, तो राज्य-शक्ति का केन्द्रीकरण जर्मन श्रमजीवी वर्ग के केन्द्रीकरण में सहायक होगा। इसके अलावा जर्मनी का आधिपत्य होने से पश्चिमी यूरोप के मजदूर-आन्दोलन का केन्द्र फ्रांस के बजाय जर्मनी की ओर केन्द्रित होगा। जर्मनी का श्रमजीवी वर्ग सिद्धान्त और संगठन दोनों दृष्टियों से फ्रांस के श्रमजीवी वर्ग से बढ़ा है; इसे समझने के लिए आपको दोनों देशों के मजदूर आन्दोलन की १८६६ से अब तक केवल तुलना करनी होगी। फ्रांसीसी श्रमजीवी वर्ग की तुलना में जर्मन श्रमजीवी वर्ग की श्रेष्ठता का अर्थ यही होगा कि हमारा सिद्धान्त प्रूधों के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।'

जर्मनी की विजय हुई, क्योंकि वहाँ औद्योगिक विकास में अधिक प्रगति की शक्ति थी। जैसा कि मार्क्स ने निष्कर्ष रूप में कहा था—'सर्वोत्तम संसार जिसकी सृष्टि रचना कर रहे हैं 'आगे बढ़ते हुए

औद्योगिक विकास द्वारा प्रारम्भ ही कुचल दिया गया।' और मार्क्स ने उस 'मार्च' का स्वागत किया।

उतोपियावाद मूलत, जैसा कि राबर्ट ए० निस्बेट ने हाल ही में कहा है, 'समाज के लिए खोज' है।

समाज के लिए खोज

हॉब्स (१५८८-१६७९) के बाद से विभिन्न समूहों के प्रति वफादारी से मुक्त होने की चेष्टा होती रही, चाहे यह समूह परिवार और कबीला हो अथवा व्यावसायिक सघ, चाहे गाँव हो अथवा चर्च, और इसकी जगह सारी निष्ठा राज्य के प्रति रखने का प्रयास हुआ। रूसो (१७१२-७८) के समय यह प्रयास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। 'आधुनिक दार्शनिकों में रूसो पहले दार्शनिक हैं, जिन्होंने समझा कि राज्य द्वन्द्व का—सस्थाओं के द्वन्द्व ही नहीं, बल्कि व्यक्ति के द्वन्द्व को भी—निपटाने का साधन है।'* रूसो के लिए स्वतन्त्रता का अर्थ समाज के भ्रष्टाचार और दमन से मुक्त होना है। परम्परागत सामाजिक बन्धनों को उन्होंने जीवन की जजीर के रूप में देखा। व्यक्ति को जजीर से छुडाने के लिए, भारी असमानता में जकड़े हुए व्यक्ति को उसकी स्वाभाविक स्थिति प्रदान करने के लिए रूसो ने कहा "प्रत्येक नागरिक तब दूसरे लोगों से बिल्कुल स्वतत्र हो जायगा और पूर्ण रूप से राज्य पर निर्भर बन जायगा और यह कार्य हमेशा उन्हीं साधनों से होता है, क्योंकि राज्य की शक्ति से ही उसके सदस्यों की स्वतत्रता प्राप्त की जा सकती है।" हॉब्स से रूसो तक सामाजिक अनुबध का अर्थ, सभी समूहों के विरुद्ध अनुबंध और केवल राज्य का एकाधिपत्य, था।

स्वतंत्रता का अर्थ राज्य की इच्छा को स्वीकार करना था। रूसो ने लिखा : "अच्छा है कि यह जाना जाय कि व्यक्तियो के साथ, वे जिस रूप में हैं, किस प्रकार व्यवहार किया जाय, यह अधिक बेहतर है कि उन्हें वह बनाया जाय, जो होने की उन्हें आवश्यकता है। सबसे बडी एकान्तिक

* राबर्ट ए० निस्बेट दि क्वेस्ट फॉर कम्युनिटी, पृष्ठ १४०।

शक्ति वह है, जो व्यक्ति के अन्तरतम में प्रवेश कर जाय और उसके कार्यकलापों की अपेक्षा उसकी इच्छा की उससे कम चिन्ता न करे। यदि आप व्यक्तियों पर शासन करने का अधिकार चाहते हैं, तो व्यक्तियों को बनाइये यदि आप चाहते हैं कि वे कानून के प्रति वफादार हों तो उनमें कानून के लिए प्रेम पैदा कीजिये। और तब उन्हें केवल यह जानने की आवश्यकता होगी कि उनका कर्तव्य क्या है। यदि आप सामान्य इच्छा (जनरल विल) की पूर्ति चाहते हैं, तो सभी विशेष इच्छाओं को इस व्यापक इच्छा के अनुरूप बनाइये। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि चूँकि नैतिक काम विशेष इच्छाओं को व्यापक इच्छा के अनुरूप करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है इसलिए नैतिक कार्य का राज्य स्थापित कीजिये।"

इस प्रकार सामान्य इच्छा का सिद्धान्त तत्काल सर्वसत्ता और उसी तरह अधिनायकवाद की व्याख्या बन गया जो १७८९ और उसके बाद सन् १७९१ की फ्रांसीसी क्रान्तियों का आधार बना। इसका उद्देश्य था (और क्रान्ति से वैसा ही हुआ भी) उन सभी संगठित समुदायों की समाप्ति जो राज्य के प्रति नहीं थीं; सामाजिक महत्त्व का सभी उत्तरदायित्व से राजनीतिक महत्त्व में रूपान्तर करना और मानव के उद्देश्यों एवं निष्ठाओं को मिलाकर उन्हें सर्वव्यापी राज्य के केवल एक ढाँचे का रूप देना।

राष्ट्रवाद और पूँजीवाद दोनों को शक्ति प्रदान करनेवाली एक ही प्रवृत्ति की ओर वह थी पृथक् और अकेला करनेवाली प्रक्रिया जिससे इतिहास के साथ साथ बनी हुई परम्परा और समुदाय समाप्त हो गये और उनके स्थान पर केवल एक स्तर पर टिके गये व्यक्ति रह गये। पुराने आधार पर कायम सम्बन्ध समाप्त हो गये, नये सम्बन्ध हमेशा राज्य के अधीन थे। लोकतन्त्र में निष्ठा के बावजूद नये समाज की विशेषता यह थी कि वह संगठनात्मक दृष्टि से कमजोर था। इस परिवर्तन के सम्बन्ध में एक जर्मन समाजशास्त्री टोनीस ने कहा कि यह वंश-परम्परा से स्थान विशेष में बसे हुए लोगों और गाँव के बीच सामुदायिक सम्बन्ध बराबर

कमजोर करने तथा व्यक्तित्वहीन, आंशिक और यन्त्रवत् सम्बन्धों को प्रश्रय देनेवाला है। (टोनीज ने इन दोनों सम्बन्धों को 'जेमाइन शैफ्ट' और 'जेसेल शैफ्ट' सम्बन्ध कहा है)। यही बात एक फ्रांसीसी समाजशास्त्री दर्कहीम (१८५८-१९२५) ने भी कही, जो समैक्य दर्शन (फिलॉसफी ऑफ सालिडरिज्म) के व्याख्याता थे। उन्होंने कहा "हमारे विकास की वास्तव में जो विशेषता है, वह यह कि इसने पहले से स्थापित सामाजिक सम्बन्धों को समाप्त कर दिया, एक-एक करके ये सभी समय की मन्द गति के साथ बह गये या प्रबल क्रांति ने उन्हें उखाड़ फेंका और वे इस प्रकार बह या उखड़ गये कि उनका स्थान लेने के लिए कोई चीज तैयार नहीं हो सकी।"

इन परिणतियों को स्वतन्त्रता, प्रगति और व्यक्ति के व्यक्तिकरण की प्रक्रिया माना गया। व्यक्ति को आत्म निर्भर, स्थिर और पृथक् प्राणी समझा गया, जिसे परम्परा के जाल और समुदाय से इसलिए छुड़ाने की आवश्यकता थी कि वह अपना हित पहचान सके और इस तरह सामाजिक न्याय को समझ सके। व्यक्ति की सच्ची सम्पत्ति उसकी नागरिकता अर्थात् राज्य के साथ उसका मूलभूत सम्बन्ध था। राजनीतिक व्यक्ति सामाजिक उद्विकास को सूत्रबद्ध करनेवाला बन गया। शिल्प का अद्भुत विकास स्वाभाविक जीवन (आर्गेनिक लाइफ) से संगठित जीवन में संक्रमण को आसान बना देता है।

उदारवाद और बहुत अंशों में समाजवाद में यही आकांक्षा और विचार था। उतोपियावाद ने उन्हींका विरोध किया था। ल्योन दुगुई (Leon Duguit) ने लिखा "व्यक्ति अधिक मनुष्योचित प्रवृत्तिवाला है, वह अधिक सामाजिक प्रवृत्तिवाला है। अनेक समूहों में रहकर ही वह सामाजिक प्रवृत्तियों का विकास कर सकता है।"

उतोपियावाद का सिद्धान्त धीरे धीरे कई व्यक्तियों के प्रयास से विकसित हुआ, जिनमें अधिक प्रमुख डाक्टर विलियम किंग (१७८६-१८६५) फिल्बिुशेज, प्रूधों, क्रोपाटकिन (१८४२-१९२१), लैण्डावर

और बूबेर (जन्म १८७८) हैं। इनमें से हरएक ने अपने पूर्ववर्ती के विचारों को और समृद्ध बनाया। उटोपियावाद का तत्त्व किसी काल्पनिक स्थान या सामाजिक रचना में नहीं बल्कि सामाजिक सम्बन्ध और उनके विकास में है। उटोपियावादियों का उटोपिया अनुमान से कहीं अधिक अनुभूतिवादी है, वस्तुतः यह व्यावहारिक, समृद्ध और सुसम्बद्ध विचार है।

उटोपियावादियों के अनुसार स्वतन्त्रता और पूर्ण जीवन के लिए मानव की पिपासा की तभी तृप्ति हो सकती है जब वह ऐसे समाज में रहे और उसका अंग बन जाय जिसका आधार सुदृढ़ हो। कोई समाज अपने आधार की दृष्टि से उसी सीमा तक सुदृढ़ कहा जा सकता है जिस सीमा तक वह सहयोगम और एक-दूसरे के लिए जीवन अर्पण व्यक्तियों के स्वायत्त संगठन समाज के मूलभूत तत्त्वों के किसी बाहरी शक्ति के दबाव स्वयं समाज द्वारा इस निर्धारण जैसे शुद्ध साहचर्य पर आधृत है। स्वभावतः समाज असमान व्यक्तियों को मिलाकर नहीं बल्कि सहयोग-मूलक इकाइयों और उनके बीच साहचर्य से बना है। ऐसे साहचर्यमूलक सम्बन्धों के ढांचे में ही व्यक्ति पोषित और आनन्दित रह सकता है।

"पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था और उसके अपरिमित राज्य में समाज का गठन बराबर खोखला होता जा रहा था इस प्रकार व्यक्तिकरण की आधुनिक प्रक्रिया आण्वीकरण की प्रक्रिया के रूप में समाप्त हुई।"* सामन्तवाद के अन्तर्गत गठित यौरोपीय 'मैनर'† अवस्थाएं तथा व्यक्ति के ऊपर व्यावसायिक संस्था की जकड़ को निश्चय ही तोड़ना था किन्तु सामन्तवाद के ढांचे को तोड़ फेंकने में बड़े-बड़े खतरे और बड़ी-बड़ी परेशानियाँ भी और उनसे पार अकेले पड़ जाना था। यदि ऐसा

---

* मार्टिन बूबेर : पाथ्स इन यूटोपिया। मैं इस मौलिक और विचारोत्तेजक विवेचन का आभारी हूँ।

† मध्यकाल में जमींदार अपनी जमीन का कुछ हिस्सा खेती करने वालों को खेती के लिए दे देते थे। बदले में लेने के पश्चात् इन लोगों को जमींदार की सेवा में काम करना पड़ता था। इस व्यवस्था को 'मैनर' कहते थे। —अनुवादक

अकेलापन बढने दिया जाय, तो वह जीवन को बहुत ही भयानक और सभी लोगों को अकेलेपन की दिशा में ले जायगा।

एक महान् फ्रासीसी रायर कोलार्ट (१७६३-१८४५) ने बहुत सूक्ष्मतापूर्वक सारी स्थिति का साराश इस प्रकार प्रस्तुत किया है "हमने पुराने समाज को नष्ट होते हुए देखा और उसीके साथ अनेक स्थानिक सस्थाओं और स्वतत्र न्याय-सघों की, जो उसके अग थे, बर्बादी भी देखी। ये व्यक्तिगत अधिकारों के शक्तिशाली प्रतीक और राजतत्र के ढाँचे में सच्चे गणतत्र थे। यह सत्य है कि इन सस्थाओं, इन न्याय-सघों को प्रभुसत्ता के परमाधिकार में कोई हिस्सा नहीं प्राप्त था, तथापि इन्होंने उसकी सीमा बाँधी। उनमें से कोई भी नहीं बचा और न उनके स्थान पर किसीका निर्माण हुआ। क्राति ने व्यक्तियों के अलावा किसीको खडा नहीं छोडा। सचमुच जहाँ व्यक्तियों के अलावा और कुछ नहीं है, वहाँ वे सभी मामले जो उनके नहीं हैं, सार्वजनिक मामले है, राज्य के मामले हैं यह बताता है कि हम किस प्रकार तिरस्कृत राष्ट्र बन गये हैं।"

इस स्थिति में सबसे बडी आवश्यकता यह थी कि समाज का फिर-से ढाँचा बनाया जाय, उसके अगों को बनानेवाले तत्त्वों का ऐसा पुनर्निर्माण किया जाय, जो 'एकाकी व्यक्ति रूपी अणुओं का योग नहीं, बल्कि ऐसी स्वाभाविक अनुरूपता हो जिसमें बराबर बढने का गुण हो और जो अनेक समूहों को मिलाकर एक-दूसरे का सुख दुख अनुभव करनेवाला लघु समाज' हो (लैण्डावर)। यह राजनीतिक कार्य नहीं, बल्कि सामाजिक विकास है। अब प्रश्न यह नहीं रह गया है कि एक राजनीतिक शासन के स्थान पर दूसरा शासन कायम किया जाय, बल्कि यह है कि समाज से अनुचित रूप से धन लेनेवाली राजनीतिक व्यवस्था के स्थान पर ऐसे शासन को प्रश्रय दिया जाय, जो स्वय समाज का भाव व्यक्त करनेवाला हो।

सामन्तवाद से मुक्ति के लिए किये जानेवाला आन्दोलन केवल

एक ओर महान् राज्य की सर्वशक्ति की ओर बढ़ रहा था और दूसरे वर्गों तथा सम्बन्धों को खोखला और बर्बाद कर रहा था। फलस्वरूप एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी, जिसमें राज्य के सामने छोटे-छोटे व्यक्तियों को आत्मसात करके एक बड़ा मरुस्थल' बन रहा था। आत्मसात किये जा रहे ये छोटे-छोटे और एकाकी व्यक्ति थे। राज्य का सारा दर्शन अणुक योगमय था। उसके सम्मुख के चित्र में ऐसे व्यक्ति हैं जो पृथक्, असुरक्षित और केवल लाभ तथा अधिकार की चिन्ता करनेवाले हैं। उसमें एकाधिकार राज्य का एकान्तिक व्यक्ति से मुकाबला होता है। ओटो गियर्क ने लिखा : "सार्वभौम राज्य और सार्वभौम व्यक्ति अपने अस्तित्व के स्वाभाविक और विधिसम्मत क्षेत्रों की व्यवस्था के लिए लड़ते रहे बीच के सभी संगठन पहले नीचे गिराये गये और बाद में खत्म कर दिये गये।" बाद में और कुछ नहीं, केवल राज्य बच जाता है जो हर जानदार चीज के लिए संकट उत्पन्न करता है।

राज्य का एकमात्र विकल्प लघु समाज है जिसका आधार क्षेत्र और पेशा बना हो। वे समाज के शक्ति-वर्धन की बुनियाद हैं क्योंकि वे मौलिक मानवीय आवश्यकताओं का जिनका सम्बन्ध एक साथ रहना, एक साथ काम करना और एक साथ अनुभव प्राप्त करना है, ध्यान रखते हैं। इन लघु समाजों का साधारण आकांक्षा से ही स्वाभाविक विकास हो सकता है और इसके लिए किसी बहुत बड़े प्रयत्न की जरूरत नहीं है। हमें इस मार्ग पर पुनः चरण बढ़ाना चाहिए।*

व्यक्ति में समाज के ऐसे सजीव गुण सामाजिक सम्बन्धों से बनते हैं निर्जीव मेलजोल अथवा लघु समाज के जीवाणु होते हैं। दो शक्तियाँ सदियों से इस को खत्म करती जा रही हैं, एक है केन्द्रीकरण का सिद्धान्त और दूसरा है सर्वोच्चता का सिद्धान्त। केन्द्रीकरण कस्बों की स्वेच्छाशक्ति, अधिकार और ओज को चूस लेता है बीच को कमजोर करके चोटी को शक्ति पहुँचाता है। केवल राज्य में ही नहीं सभी वर्गों में यह

* ई. ए. गुटकिण्ड : कम्युनिटी एण्ड एनवायरनमेन्ट।

सिद्धान्त घुसा हुआ है, उनका सारा ढाँचा, सारा आन्तरिक जीवन परिवर्तित कर रहा है और इस प्रकार उनको भी राजनीतिक रूप दे रहा है। सर्वोच्चता का सिद्धान्त एक सघ को ऊँचा उठाता है। यह सघ राष्ट्र या धर्म अथवा पार्टी, बल्कि यों कहना चाहिए कि राज्य ही होता है, जिसे सर्वोच्चता का सिद्धान्त इस कदर ऊँचा बना देता है कि अन्य सभी सघ उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगानेवाले खुशामदी अनुचर हो जाते है और इस प्रकार समाज 'निष्प्राण' और 'निस्सार' बन जाता है। ऐसी स्थिति में विकेन्द्रीकरण और अनेकवाद स्वतन्त्रता के पूर्वानियोग (पहले पूरी की जानेवाली शर्त) बन जाते है।

फिर से समाज के सुदृढ आधार का निर्माण समाज के सदस्य अपने रहन-सहन के ढग, अपनी भावनाओं और विश्वास के बल पर ही कर सकते हैं। अत उतोपियावाद विचारों का एक समूह नहीं, बल्कि जीवन का एक जाल है। बबेर के शब्दों में यह सामयिक और सब स्थानों के लिए है, इसके आरोपण और फलने-फूलने के लिए सभी समय और सभी स्थान उपयुक्त ह। अनातोले फ्रास ने बहुत सोच-विचारकर लिखा है "जिन्होंने जनता की खुशहाली की सबसे अधिक चिन्ता की, उन्होंने अपने पडोसियों की हालत बहुत दयनीय बना दी।" इसीलिए उतोपियावादी पडोसियों के साथ सहयोग से जीवन बिताने में विश्वास करते हैं—यही 'लोगों की खुशहाली' का अथ और इति है।

साहचर्य का स्वभाव और आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब व्यक्ति अपने को अपने स्थानीय और क्षेत्रीय कम्यून, अपने काम और व्यावसायिक कम्यून, और दूसरे स्वेच्छाप्रेरित सहयोगों में लीन कर दे। इन सभी में प्रतिनिधित्व की बात कम और स्वायत्तता की बात अधिक हो। जोसेफ पाल बोनकोवर द्वारा अपनी पुस्तक 'एकॉनामिक फेडरलिज्म' में प्रकट किये गये इन विचारों में काफी सत्य है कि 'एक ही पेशे के व्यक्तियों में उसी कम्यून के अन्य निवासियों की अपेक्षा अधिक समैक्य होता है।'

शक्ति प्रदान करनेवाले सघों में सहकारिता का रूप सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु

शरीर किसी या श्रम जैसे निश्चित या नीरस कार्य करने से केवल कष्टदायक काम होता है। एरफोन्स का हार्दिक आनन्द नहीं अनुभव होता। उपभोक्ताओं की सहभागिता में आश्चर्य का स्तर मात्र है। उत्पादकों की सहकारिता अधिक सुख और सुविधा देनेवाली होती है और उसमें अधिक रचनात्मक गुण होते हैं। किन्तु सच्ची "ग्राम्य" और सामूहिक सहयोग पूरे व्यवहार से ही प्राप्त होता है, जिसमें उत्पादन और उपभोग के सूत्र एक-दूसरे के साथ जुड़े हों। गोपालसिंह के शब्दों में "ऐसे सहकार के लिए 'क्षेत्र' चाहिए, अर्थात् इसका एक विकसित रूप ग्राम-कम्यून है जहाँ कम्यून जीवन उत्पादन और उपभोग के समन्वय पर आधृत है जहाँ उत्पादन का मतलब केवल कृषिगत उत्पादन ही नहीं समझा जाता बल्कि उसे कृषि उद्योग और दस्तकारी के सहयोग का फल माना जाता है" (ग्रेर)।

समाजवाद सामूहिक दिखावे के रूप में नहीं, बल्कि ठोस एवं व्यापक रूप में ही स्थापित किया जा सकता है और वह भी जैसा कि लैण्डाउर ने कहा है 'धरती पर स्वामित्व की स्थिति में।' 'समाजवाद का अर्थ धरती के लिए संघर्ष है। व्यक्ति अपने आसपास के व्यक्तियों के घनिष्ठ साहचर्य और धरती के साथ घनिष्ठता से ही अपने को परिपूर्ण करता है।

धरती और व्यक्तियों से यह दोहरा सम्बन्ध स्थापित करने का मतलब पूँजीवाद द्वारा समाज के आधार को कमजोर बनाये जाने से बचाना और राज्य के मोटापे को बढ़ाने से रोकना है। यह व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष समाजवाद है, जिसमें सभी व्यक्ति शामिल हो सकते हैं। किन्तु जिस प्रकार किसी व्यक्ति को पराश्रयी न रहना चाहिए, उसी प्रकार किसी समूह को भी पराश्रयी न रहना चाहिए। पुनर्निर्माण का मूल सिद्धान्त संघवाद है। संघवाद का सिद्धान्त उसी विचार से स्वाभाविक रूप में निकला है, जो सहकारिता प्रणाली का आधार है। जिस प्रकार सहकारितामूलक समाज वास्तविक आवश्यकताओं की मिल-जुलकर पूर्ति के लिए व्यक्तियों को

एकताबद्ध करता है, उसी प्रकार विभिन्न कोशाणु (सेल्स) एक-दूसरे के साथ एकताबद्ध होते हैं।*

सहकारिता और ग्राम-कम्यून भी प्राणहीन सूखे शरीर जैसे हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, क्रोपॉटकिन ने संकेत किया है कि आधुनिक सहकारी आन्दोलन, जो मूलत और प्रधानत 'पारस्परिक सहायता' के रूप मे था, प्राय 'पूँजी मे हिस्से की व्यक्तिवादिता' के रूप में विकृत हुआ है और उसने 'सहकारितागत स्वार्थवाद' को प्रश्रय दिया है। एक दूसरे से पृथक्करण और समाज से पृथक्करण रोकने की जरूरत है। कोई समूह, कोई कम्यून तभी स्वतन्त्र, स्वस्थ और परिपक्व बना रह सकता है, जब वह अपने जन्मदाता किंग और बुशेज द्वारा बतायी गयी सतर्कताओं को ध्यान में रखे। सहकारी समिति को 'मजदूर-मालिकों' का ही संघ रहना चाहिए और दोनों कार्यों को कभी पृथक् न होने देना चाहिए। जब एक सहकारी समिति बडी हो जाय, तो उसके हिस्से कर दिये जायँ, किन्तु उसकी आंगिक एकता बनी रहनी चाहिए अर्थात् उसे अपने सामान्य सदस्य की 'परिधि' में ही रहना चाहिए। ऐसे ही संगठनों मे अपनी ओर व्यक्तियों को ही आकृष्ट करने की नहीं, बल्कि दूसरे लोगों में भी अपना संघ बनाने की प्रेरणा फूँकनेवाली 'दूरगामी प्रभावशक्ति' होगी। संगठन जब बड़े हो जाते हैं या पुराने पड जाते हैं, तब उनमें बोदापन आ जाता है। "संगठन जब पूर्णत या अंशत 'महन्तवाद' के रूप में कडा हो जाता है, तब यह बोदापन ही काम करता है, और मानव जीवन की कोई भी गति रुक जाती है।"†

बोदापन को केवल स्फूर्तिदायक प्रवृत्ति ही दूर कर सकती है। उतोपीय समाजवाद में ऐसी भावना का संकल्प होता है। जैसा कि लैण्डावर ने कहा है "समाजवाद सभी कालों में सम्भव और असम्भव है,

---

* म्लादेनात्स हिस्ट्री ऑफ दि कोआपरेटिव थ्योरी।

† होरेस कालेन दि लिबरल स्पिरिट, पृष्ठ ४८।

जहाँ इनका अभ्यास और इसके लिए प्रयास करनेवाले उत्सुक लोग हैं वहाँ यह सम्भव है, जहाँ लोग इसके लिए संकल्प नहीं करते या थोड़ी ही सफलता हो कर बैठे हैं किन्तु इस दिशा में कुछ करने में असमर्थ हैं, वहाँ यह असम्भव है। इस प्रकार उटोपियावाद अपनी चरितार्थता के लिए किसी एक वर्ग या किसी एक राष्ट्र की ओर नहीं देखता—वह सभी व्यक्तियों की ओर और क्रमशः उनकी ओर देखता है, जिन्हें नयी दृष्टि का नशा है। निश्चय ही यह 'कुछ लोगों का समाजवाद' है, जहाँ मनुष्यावतार अपने आत्मसमूलक कार्यों से कल्प और वास्तविक के बीच का भेद दूर करते हैं। जीवन और भावना में परिवर्तन करनेवाले सभी बड़े आन्दोलनों को हमेशा मनुष्यावतारों (Mujaddid, Chalutzim) की आवश्यकता हुई है। उटोपियावादियों के अन्तर में अनुभव होनेवाले सत्य को 'व्यक्तियों के हृदय में व्याप्त शक्तिशाली तनावों को' शान्त करना है, 'जलती और धूल की तरह उड़ती हुई जनता' के हृदय में नया अंकुर उत्पन्न करना है।

उटोपियावाद में निश्चय ही धर्मवाद की एक रेखा है। 'समाज में (सच्चा) परिवर्तन प्रेम श्रम और शान्ति से ही हो सकता है। लैण्डावर ने अपनी पुस्तक 'दि रिवोल्यूशन' में लिखा है कि इन शक्तिशाली आन्दोलनों की आग, आह्लाद और भ्रातृभावना में संयम और प्रेम से निरन्तर भावात्मक संयोग की कल्पना और बोध का आविर्भाव होता है। इस आध्यात्मिक शक्ति के बिना हम बच नहीं सकते, इसके बिना हम बर्बाद हो जायेंगे। लैण्डावर का जीवन-विचार एक महत्त्वपूर्ण वाक्य में यह था कि 'समाजवाद मानव के सामान्य जीवन को स्वतन्त्र सामान्य भावना में, अर्थात् धर्म में व्याप्त करने का प्रयास है। उनके इस धर्म में कोई पोथा-पत्री नहीं है। गुरुदेव टैगोर (१८६१-१९४१) के शब्दों में यह 'मानव-धर्म' है।

प्रेम और उत्साह पहले मानव के हृदय की कठोरता को पिघलाते हैं। 'पीछे है समाजवादियों और उनके द्वारा जनता के बीच शुरू किये गये आन्दोलन की जिम्मेदारी। उनका काम बड़े हृदयों को पिघलाना

है, ताकि उनमें जो तत्त्व दबा हुआ है वह ऊपर आ जाय, ताकि जो गुण वस्तुत हैं किन्तु मृत प्रतीत होते हैं वे उमड आयें और विकसित हो सकें।' तब मानव ही अपने चारों ओर के कठोर और नीरस जीवन में जीवन स्रोत और सामुदायिक भावना के चिह्न ढूँढता है। ऐसा करने पर यह उसका कर्तव्य बन जाता है कि वह जहाँ भी हो, वहाँ सामुदायिक भावना के स्रोतों का पता लगाये और उन्हें प्रश्रय दे और अपने जीवन, अपने कार्य द्वारा पीडित समाज को स्वस्थ जीवन-तत्त्व प्रदान करे। मूल और अराजनीतिक अर्थ में उतोपियावाद सरक्षणवादी है।

आधुनिक समाज का भयानक खतरा यह है कि व्यक्ति एक सामाजिक शून्यता में बिना किसी आधार के बढा जा रहा है। भयानक सरलीकरण की स्थिति से तभी बचा जा सकता है, जब व्यक्ति जागरूक होने के साथ ही महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों को स्वीकार करे और अपने चारों ओर सघों का व्यापक और मकडी के जैसा जाल बना ले। सगठन लादे जाते हैं, सघों का निर्माण किया जाता है, सगठन में व्यक्ति उद्देश्य (Object) और सघ में विधेय (Subject) होता है। बर्दयाएव के शब्दों में कहा जाय, तो 'व्यक्ति के लिए समाज उद्देश्य है, जो व्यक्ति को बाह्यत सीमाबद्ध करता है। उसे समाज को विधेय के रूप में बदलना पडेगा जो स्वय अपना समुदायगत और समाजगत रूप स्थिर करे।'*

प्रूधों ने १८६० में ही अनुभव किया था "यूरोप को अब विचार और व्यवस्था की बीमारी है। वह क्रूर शक्ति और सिद्धान्तों के प्रति घृणा के युग में प्रवेश कर रहा है।" अगले वर्ष उन्होंने इस दुखद तथ्य की ओर सकेत किया कि लोग स्वतन्त्रता के उन अवशेषों से भी ऊब गये हैं, जो उनके पास बच रहे हैं और उनसे भी मुक्ति चाहते हैं। 'इस स्वतन्त्रता से भय' का क्या कारण था ? प्रूधों ने अनुभव किया कि स्वशासनाधिकार से पीछे कदम हटने के पीछे अधिकार की बढती हुई

---

* निकोल्म बर्दयाएव दि रीम ऑफ स्पिरिट एण्ड दि रीम ऑफ सीजर, पृष्ठ ५८।

८० प्रतिशत नागरिक सहकारी समितियों के सदस्य थे और नगर में तथा उसके बाहर २५० केन्द्र उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे थे।

रोचडेल के २८ अगुआदारों ने, जो सभी कारीगर और अधिकतर बुनकर थे, ऐसा पौधा लगाया जिसने बढकर अपना विस्तार एक वन के रूप में कर लिया। इग्लैण्ड में सहकारी समितियों के ७५ लाख सदस्य थे और ये समितियाँ १० खरब पौण्ड से अधिक का लेनदेन करती थीं। १८७३ में सहकारिता ने उत्पादन के क्षेत्र में अपना पैर बढाया और पचास वर्षों में उसका वार्षिक उत्पादन तीन करोड ४६ लाख पौण्ड का हुआ।

फ्रास में दो प्रसिद्ध प्रयोग हुए। गाइज में जाँ बैपटिस्ट गोद्रिन (१८१७-८८) द्वारा स्थापित मजदूरों का उत्पादक सघ 'ला फामिलिस्तेरे' दो विश्वयुद्धों के बावजूद ढलाई के कारखाने के रूप में फलफूल रहा है। शारेन्ते में एक क्षेत्रीय सहकारी सघ का विकास हुआ है। १८७३ में शारेन्ते (Charente) क्षेत्र ने १८ करोड गैलन शराब तैयार की। ७ वर्ष बाद, पत्तियों की बीमारी के कारण अगूर की खेती की भारी क्षति होने से यह उत्पादन घटकर २० लाख गैलन तक आ गया। डेयरी फार्मिंग, कागनाक (एक प्रकार की फ्रेंच शराब) शराब की चुआई और बिक्री, आटा मिलों, क्रीम बनाने के कारखानों और सहकारिता के आधार पर ऋण देने की व्यवस्था करके इस सकट पर विजय पा ली गयी।*

स्वीडेन ने सहकारिता के कई नये मार्ग और नये तरीके निकाले। उसने एकाधिकार के विरुद्ध सघर्ष किया और उसे समाप्त करने में सफलता प्राप्त की। यह एकाधिकार आटे की पिसाई, रबड के खोलों और इले-

---

* युद्धोत्तर फ्रांस में कई लघुसमाज संगठित किये गये हैं, जहाँ उत्पादक और उपभोक्ता सहकारी समितियों का पूर्ण विकास हुआ है। मध्य बीसवीं शताब्दी के उतोपियावाद के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए क्लेयर एच० विशपलिखित 'आल थिंग्ज कामन' में देखिये।

साहित्य मे दिलचस्पी, इतिहास और सामुदायिक जीवन की प्रशिक्षा का समन्वय होता था। अनुमान लगाया गया था कि प्रौढ जनसख्या का तृतीयाश इन्ही स्कूलों मे शिक्षित हुआ और उसके बाद उसने जनसाधारण में पायी जानेवाली सहयोग भावना को सहकारिता की दिशा मे मोडा। डेनमार्क उतोपियावाद का चमकता हुआ ऐसा श्रेष्ठ रत्न है, जो 'विज्ञान-वादी' पश्चिम मे अभी भी बचा हुआ है।

जिस प्रकार सफलता के क्षेत्र मे, उसी प्रकार विचार के क्षेत्र में भी उतोपियावाद अपना प्रभाव डाल रहा है।

इटालियन समाजवाद ने उतोपियावाद को देर से समझा और वह भी १९२४ के बाद अपने पुनरुत्थान के भयपूर्ण 'ग्रीष्म' काल में। इसकी कल्पना की झलक जियाकोमो मैतिओती (१९८५–१९२४), पियरो गोवेती (१९०१–२६) ओर कार्लो रोज़ेती (मृत्यु १९३७) के जीवन मे मिली। गोवेती की आकाक्षा 'लघु समाजों की उदार चेतना' लानी थी। रोजेती की शिक्षा थी उदार समाजवाद। गोवेती की उत्साहभरी ओजपूर्ण तरुणाइ पुरातनवादी विचारा और असाधारण विवेक से दीप्तिमान थी, जो उतोपियावादिया की विशेषता होती है। कारखानों और कम्यूनों में उन्होने समाजवाद का वास्तविक प्रकाश देखा। रोजेती ने अपने निष्कासित देशवासियों को सलाह दी कि आप अपनी पार्टियों की सदस्यता को ताक पर रखिये और अपना ध्यान 'न्याय तथा स्वतन्त्रता' पर केन्द्रित कीजिये। प्रूधों की आवाज की प्रतिध्वनि बराबर गूँजती रहती है।

सन् १८७० के बाद पश्चिमी यूरोप के देशों ने निश्चित रूप से नया मोड लिया और उतोपीय आधार पर विकास की सम्भावना केवल पूर्वी यूरोप के देशों और वह भी खासकर विशाल देश रूस में रह गयी।

रूस में उतोपियावाद और पाश्चात्यवाद के बीच बराबर झगडा चलता रहा, किन्तु यह झगडा कभी बहुत स्पष्ट रूप में नहीं हुआ। रूस का गाँव-समाज क्या सहकारिता पर आधृत राज्य का बीज बन सकता है या पूँजीवाद के हथौड़े की चोट के सामने छिन्न-भिन्न और विलुप्त हो

किसानो में जनप्रिय बनाने के बजाय अर्थात् इन सभी चीजों के बजाय हमने इनके बिल्कुल विपरीत रास्ता अपनाया है। यद्यपि उत्पादन के पूँजीवादी ढग किसान के शोषण पर आधृत है तथापि हम पूँजीवादी ढग को रोकने में असफल रहे हैं। इसके विपरीत हमने अपनी पूरी ताकत से अपने जीवन को अस्त-व्यस्त कर देने में सहायता की।

स्वतन्त्रता और राजनीतिक अधिकार से वचित रूसी किसान मे विश्रृखलतामूलक क्रम को रोकने का सामर्थ्य नहीं था। जार के उखाड फेंके जाने पर किसान की तरती हुई स्वतन्त्रता बोल्शेविक हिमखण्ड से दब गयी।

रूसियों का 'नष्ट स्वप्न' फिलिस्तीन के यहूदियों के पास आया। एशिया के जिस प्राचीन खण्ड में कई बार पाँवों में बेवाई लिये हुए भटकता हुआ यूरोप आया था, उसी इजराइल में 'प्रयोग और त्रुटि' के द्वारा उतोपीय निरीक्षण का विकास हुआ। डायसपोरा के यहूदी आज की मूलहीन मानव जाति की पूर्व छाया थे। वे गृहहीन थे, क्योंकि वे भूमिहीन थे, भले ही आज वे ससार के महाजन है।

राष्ट्र-भूमि का निर्माण मूल से ही प्रारम्भ करना था। फिलिस्तीन में जमीन उसी प्रकार उर्वरता रहित और बेकार है, जिस प्रकार आज का तत्त्वरहित समाज। जिस प्रकार समाज को नये ढाँचे में ढालना पडता है, उसी प्रकार भूमि को भी फिर से तैयार करना था। कई शताब्दियों की अशाति और निराशा के बाद जो लोग विश्व के विभिन्न भागों से आये, उन्हें यह जानना था कि भूमि हमसे क्या चाहेगी और भूमि हमें क्या देगी। चोवथ जियोन (Chovath Zion) को भूमि से प्रेम करना और उसकी रक्षा करनी पडी थी। 'हम जानते हैं कि भूमि श्रम और नि स्वार्थता का खयाल रखती है। यह उसी प्रकार से लालची या लोभी हृदयवालों के हाथ में नहीं रहती।' यह विचार जोसेफ बरात्ज के हैं जो उन्होंने अपनी कहानी 'ए विलेज बाई दि जार्डेन' (जुर्दान नदी के

किनारे का एक गाँव) में व्यक्त किये हैं। ये ऐसे विचार हैं जिन्हें प्रत्येक पथप्रदर्शक या अगुआकार ने व्यक्त है।

फिलिस्तीन को यहूदियों की राष्ट्रभूमि बनाना था और यह ऐसा कार्य था जो स्वयं राजनीति से भी बड़ा था। जैसा कि चेम वेजमैन (१८७४-१९५२) ने कहा है : "दूसरे व्यवहारवादी पक्ष ने, जो हमारा पक्ष था, यहूदी धर्म और उसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में अधिक स्वाभाविक दृष्टिकोण अपनाया। इस पक्ष के लोगों ने यहूदी समाज को यह स्पष्ट बताने की कोशिश की कि राजनीतिक क्रियाकलाप ही काफी नहीं है। इसके साथ ही ठोस एवं रचनात्मक भूमि पर वास्तविक अधिकार (जिससे यहूदी चेतना को भौतिक बल प्राप्त होगा), फिर भाषा का पुनरुत्थान, यहूदी इतिहास सम्बन्धी ज्ञान का प्रसार और यहूदी धर्म के स्थायी मूल्यों के प्रति अनुरक्ति में वृद्धि की भी आवश्यकता है।' *

फिलिस्तीन में यहूदी राष्ट्र की स्थापना करने में लगे यहूदी अग्र-पन्थी आदर्शों और यथार्थवाद से परे केवल सिद्धान्तवादी नहीं थे। उनके दृष्टिकोण में स्वाभाविकता थी। कई देशों से उत्प्रवासियों के आगमन और बसने का फ़ैसला करनेवाले यहूदी तभी फिलिस्तीन में घर और राष्ट्रभूमि प्राप्त कर सकते थे, जब वे कृषि को मुख्य कार्य के रूप में अपनाते। 'जनता की सच्ची आत्मा—उसकी भाषा उसकी संस्कृति उसके साहित्य, उसकी परम्परा—का गाँव में ही मानव और धरती के बीच घनिष्ठता स्थापित होने पर प्रस्फुरण होता है। नगरों का काम गाँवों के फलों का 'संरक्षण' करने से अधिक और कुछ नहीं है। †

फिलिस्तीन की स्थिति और यहूदीवाद की शिक्षा के फलस्वरूप अग्रगामियों ने पूर्णरूप से सहकारिता पर आधृत गाँव कम्यूनों की स्थापना की। ये कम्यून जैसे-जैसे बड़े होते गये टिल्लों में बँटते गये; फिर भी सम्बन्ध से वे एक-दूसरे के साथ जुड़े थे। क्वुत्ज़ा (Kvutza) में

* चेम वेजमैन : ट्रायल एण्ड एरर, पृष्ठ १५०।
† वही पृष्ठ १२८

सहयोगपूर्ण जीवन और श्रम का विकास हुआ और उसने सामुदायिक जीवन को बल प्रदान किया। सच्चा समाज उन लोगों का नहीं होता, जो बराबर साथ रहते हैं, बल्कि सहयोग करनेवाले ऐसे साथियों से बनता है, जिनकी एक-दूसरे तक पहुँच होती है और जो एक-दूसरे की मदद के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। यह उसी दिशा में एक साथ गति है।

इजराइल की उन्नति शुद्ध रूप से प्रयोग करने और त्रुटि को समझने, सामुदायिक जीवन में बराबर सोच, गल्ती पकड़ने की दृष्टि और उसके साथ ही सामुदायिक भावना के रचनात्मक प्रवाह से हुई है। यहूदी धर्म के प्रचारकों को असली और प्रेरणाप्रद उपदेश के दर्शन किबुत्ज (kibbutz) और क्वूत्जा (kvutza)* में होते है। यहूदीवाद और इजराइल में आलोचना की बहुत-सी बातें हो सकती हैं, किन्तु उनके उतोपीय मूल और यहूदीवाद तथा इजराइल द्वारा उस परम्परा को नये

---

† "मुझे अक्सर इस बात से आश्चर्य हुआ है कि जहाँ एमर्सन के आचरण सिद्धान्त को अपनाकर भी 'ब्रुक फार्म", समाजवादी आदर्श अपना कर भी राबर्ट ओवेन की न्यू हार्मनी और उत्तरी अमेरिका के साकास से लेकर एफराटा और अमाना आदि तक कई धार्मिक लघु समाज विफल और विश्रृंखल हुए, वहीं किबुत्ज सफल कैसे हुए। निश्चय ही सामुदायिक जीवन का असाधारण पक्ष समाज के आन्तरिक ढाँचे और सम्पत्ति तथा उपभोग के सामुदायिक रूप को मिलाकर बना है। शेष सभी बात इसी ढाँचे पर निर्भर हैं। यह एक परिवार की तरह जीवन में हाथ बँटाना है। इसका अर्थ स्वेच्छा से व्यक्तिगत अधिकार का बहुत बड़ा हिस्सा उस समूह को दे देना है, जिसके साथ व्यक्ति के सम्बन्ध परिवार की अपेक्षा कहीं अधिक नाजुक हैं। ऐसे समुदाय को छिन्न भिन्न करने के लिए प्रयत्नशील विघटनवादी शक्तियाँ बहुत शक्तिशाली होती हैं और इनमें से कोई भी समुदाय उनके आगे नहीं टिक सका। ऐसे जीवन के लिए सर्वोपरि विवेक चाहिए—ऐसा विवेक जो किसी व्यक्ति को ऐसे लोगों के साथ रहने के लिए तैयार कर दे, जिनसे उसका पहले से कोई भी घनिष्ठ सम्बन्ध न रहा हो। किबुत्ज को यहूदी जाति के भविष्य की आशा ने यह विवेक प्रदान किया है।" मरे वीनगाटन लाइफ इन किबुत्ज, पृष्ठ १५५।

विचारों एवं रूपों और उपलब्धियों से समृद्ध बनाने वाले की बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

एशिया उटोपियावाद से खूब परिचित है। भारत के विषय में यह बात ज्ञान और विश्वास के साथ कही जा सकती है। यहाँ व्यक्तियों के उटोपियावादियों की एक शृंखला बताई जाती है और उन्होंने इस दिशा में काम किया है। उन लोगों में गांधी (१८६९-१९४८) का स्थान सबसे ऊँचा है। उनमें उटोपियावाद अपने सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ रूप में विद्यमान था।

गांधी और विनोबा

गांधीजी के जीवन और विचार का वर्णन थोड़े से वाक्यों में करना कठिन है। अपनी शिक्षा का आरंभ उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 'हिन्द स्वराज' (१९०९) में प्रस्तुत किया। उनके बुनियादी विचार स्वराज्य, स्वदेशी और सर्वोदय थे।

स्वराज्य का अर्थ है स्वशासन और गांधीजी ने इसे व्यापक राष्ट्रीय मुक्ति के अर्थ में ही नहीं बल्कि निम्नतम व्यक्तिगत विशिष्टता के अर्थ में अपना मूलमंत्र बनाया। स्वराज्य का अर्थ अपना राज भी है, स्वशासन का अर्थ 'स्व' पर नियंत्रण 'स्व' पर शासन भी हो सकता है और होना चाहिए। यह राज एक ही केन्द्र की परिधि में रहना चाहिए। संयमशील व्यक्ति अपने चारों ओर, अपने आसपास, गाँव में स्वराज्य चाहता है। केवल आत्म-निर्भर गाँव स्वावलम्बन मात्र गाँव ही विकासोन्मुख आकांक्षा पूर्ण और स्थायी स्वराज्य की वास्तविक ज्योति बन सकते हैं।

स्वदेशी का अर्थ है अपने देश में बना हुआ किन्तु इसका भी व्यापक वास्तव में अपने पड़ोस में बनी चीज से है। एक व्यक्ति की आत्म-निर्भरता एक गाँव की आत्म-निर्भरता एक क्षेत्र की आत्म-निर्भरता और सब मिलाकर पूरे राष्ट्र की आत्म-निर्भरता उसी तरह सम्पन्न पूर्ण और सुखी जीवन के अंग हैं, जिस प्रकार पैसे का पैमाना। अपने कपड़े स्वयं बुन लेना, ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना क्षेत्रीय विविधीकरण के माध्यम उत्पादन

और व्यवसाय में अधिक-से-अधिक विविधता और बहुलता को प्रश्रय देना, इन सब दृष्टियों को लेकर स्वदेशी सम्बन्धी विचार और समृद्ध हुए।

पूरे रूप से समग्रवादी दृष्टि में रँगा हुआ सर्वोदय अर्थात् सबका उदय उनका पूर्ण दर्शन था। विकास का ध्यान रखना गाधीजी की सारी शिक्षाओं का मूल है। जहाँ 'विकास' बीज तत्त्व है, वहाँ भूमि मुख्य आधार बन जाती है। गांधीजी की दृष्टि भूमि प्रधान थी। वे समझते थे कि किसान तभी सुखी हो सकता है, जब वह केवल अपनी भूमि का मालिक ही न हो अपितु दूसरे व्यवसाय भी, जिनमें भिन्न भिन्न ग्रामोद्योग हैं, करे। कृषि और दस्तकारी में घनिष्ठ सम्बन्ध से ही सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था और स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकती है।

सर्वोदय का अर्थ समाज को सुव्यवस्थित करना भी है। समाज के दलित और अस्वस्थ अगों को स्वस्थ और पूर्ण बनाना पड़ेगा। गाधीजी द्वारा अस्पृश्यता-उन्मूलन पर जोर दिया जाना, इसका उदाहरण है। भारत की जनसख्या का अष्टमाश अस्पृश्य है। यह केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी सबसे पिछड़ा हुआ वर्ग है। सर्वोदय की दृष्टि से प्रत्येक भारतीय का काम हो गया कि वह इन लोगों का आर्थिक उत्थान करे और इन्हें समाज में मिलाये। त्रुटि को दूर करना, घाव को भरना हमेशा से मानव की प्रवृत्ति रही है।

आर्थिक उन्नति और सामाजिक पुनरुत्थान के लिए गाधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम अपनाया। यही उनका राजनीति शास्त्र था। उन्होंने समाज'निर्माण की कल्पना को सामाजिक मुक्ति का साधन बनाकर उसे और भी सम्पन्न किया।

गांधीजी में जो विशेषता थी, वह यह कि उन्होंने रचनात्मक कार्य को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के साथ जोड़ दिया। अनूठा मिलाजुला रूप था उनका सत्याग्रह। सामाजिक बुराइयों और अन्याय का प्रतिरोध होना चाहिए, उनमें सहयोग देने का मतलब उन्हें स्वीकार करना और अपने को उनमें आत्मसात् करना है। स्वतंत्र व्यक्ति रचना ही नहीं करता,

वे अति प्राचीन स्मृतियों को ताजी कर देते हैं। गाधीजी की ही तरह विनोबा में भी कोई वलुष नहीं है, विचार की पारदर्शिता के फलस्वरूप उनकी बातों को समझना बिल्कुल आसान हो जाता है।

अच्छाई आग की तरह होती है, यह दूर तक प्रकाश फैला सकती है, किन्तु उसकी गर्मी बहुत नजदीक तक ही है। इसी तरह व्यक्ति का एक निर्धारित स्थान होना चाहिए, जहाँ वह काम और अपना विकास करे। उसके लिए गहन कार्य के सीमित क्षेत्र की आवश्यकता है। यह बीज बोने के लिए ऐसी भूमि है, जहाँ से जीवन रूपी कृषि का विशद् विकास किया जा सकता है। जब आप एक गड्ढा खोदते हैं, तो एक ओर मिट्टी का ढेर लग जाता है और दूसरी ओर खोह बन जाती है। इसी तरह एक स्थान पर सचय दूसरे स्थान पर अभाव की सृष्टि करता है। प्राणवान् व्यक्ति वह है, जो दूसरों के साथ घुल मिल जाने से कभी नहीं रुकता। विनोबा की इसी तरह की उपमाओं का क्रम चलता रहता है। उनका कहना है कि विचारों का प्रसार विरोधी विचारों से सघर्ष करके नहीं होता, बल्कि आदर्श प्रस्तुत करने से होता है। विचार की सत्यता उसे शान्तिपूर्वक जीवन में उतारने में है। जब उसे शब्दों की चीज बनाया जाता है, तब वह हिसा को जन्म देता है और हिसा सत्य को आहत और अगभग कर देती है। गाधीजी की तरह विनोबा की मुख्य शिक्षा यह है कि हिसा के प्रवाह से सत्य की आग निश्चित रूप से बुझ जाती है। हिसा सुसम्बद्धता, जीवन और उत्साह की अवमानना है, निषेध है।

'मेरा अधिकार मेरा कर्तव्य है' ऐसी बहुप्रचलित धारणा के स्थान पर विनोबा कहते हैं—'अपने कर्तव्य की पूर्ति करना मेरा अधिकार है।' और इस भाव से भूदान का जन्म हुआ, जो उतोपियावाद की सबसे नयी और आकर्षक प्रवृत्ति है।

भूदान आन्दोलन समाज के विभिन्न अंगों की ठीक से पुनर्व्यवस्था के लिए उल्लेखनीय प्रयास है। दान का अर्थ विभाजन भी है। भूदान

दान के रूप में भूमि लेकर उसका विभाजन पुनर्वितरण करना चाहता है। गरीब और अमीर का समान रूप से आह्वान किया जाता है कि वे भूमिहीनों को अपनी सम्पत्ति का एक और रिश्तेदार भाई समझकर अपनी भूमि का कम से कम छठा भाग भूदान में दें। ३ महीने के थोड़े से समय में पुनर्वितरण के लिए २४ लाख एकड़ से अधिक भूमि दान में मिल चुकी है।

भूदान आन्दोलन की महान् शक्ति को इस बात से समझा जा सकता है :

१ भूदान ऐसा वातावरण तैयार करता है, जिसमें भूमि का पुनर्वितरण सुगम हो जाता है।

२ चूँकि छोटे किसान भी भूमिदान करते हैं इसलिए स्वामित्व और अन्ततः सम्पत्ति के प्रति एक नया दृष्टिकोण सामने आता है।

३ जमीन का दाम कम हो जाता है और इस प्रकार मुआवजा की समस्या हल्की हो जाती है।

४ चूँकि भूमिहीनों को भूमि बिना मूल्य के मिलती है, इसलिए उन्हें सहकारी खेती में शामिल होने के लिए राजी करना आसान हो जाता है।

चूँकि गाँव में प्राप्त जमीनों का वितरण पंचायतों की सभा करके और प्रायः भूमिहीनों के चुनाव के ही अनुसार होता है इसलिए दुनियादारी और भ्रष्टाचार तो होता ही नहीं, अपितु आत्मनिर्भर चेतना पैदा होती है।

५ परिवार में भूमि के हस्तान्तरण या इसी प्रकार के दूसरे बेनामी धन्धों दान में छल-प्रपंच की गुंजाइश नहीं रहती, जो बँटवारा कानून के अन्तर्गत आमतौर पर होते हैं।

विरोध भावना को बढ़ाने या वर्ग भावना पैदा करने के बजाय विनोबा का तरीका प्रत्येक हृदय में बचपन में पड़ी हुई मानवता की भावना को शुद्ध करता है और इस समाज में सद्भाव और सहानुभूति की

नमी लाता है। भूदान के द्वारा भूमि के पुनर्वितरण से सारे समाज में नवजीवन का सचार होता है। विनोबा भूमि के पुनर्वितरण पर ही आकर नहीं रुक जाना चाहते, वे ग्रामीकरण चाहते हैं। भूमि को ग्राम की सम्पत्ति बनाना चाहते हैं, जिससे भूमि का स्वामित्व सहकारिता के आधार पर और खेती गाँव-समाज के आधार पर हो। उसके बाद गाँव के लिए ऐसी योजना बनानी पड़ती है कि वह सादे जीवन की अपनी सारी जरूरतें खूब अच्छी तरह पूरी कर सके। अपनी व्यवस्था में स्वतन्त्र और आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर प्रत्येक गाँव को अपने को लघु गणतन्त्र जैसा बनाने का प्रयास करना चाहिए। उसे एक छोटा संसार होना चाहिए, जिसमें लघु संसार के अधिकाश गुण हों।

विनोबा ने अपने आन्दोलन का विस्तार जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी सम्पत्तिदान, बुद्धिदान के रूप में किया है। इन दानों के द्वारा विनोबा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'प्रतिभाशाली व्यक्तियों के उपार्जन को मुक्त कर उसे समाज को प्रदान करने की आशा करते हैं। बाजार की भाँति नहीं, जहाँ व्यक्ति केवल विक्रेता और ग्राहक के रूप में ही मिलते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने ही हित और लाभ की बात सोचता है, वरन् जीवन के व्यापक जनसमूह में जहाँ व्यक्ति पारस्परिक आदान-प्रदान की इच्छा रखते हैं, लोग अपने जीवन को समृद्ध एव सार्थक करते हैं। विनोबा सेण्ट टामस एक्विनस के 'सम्पत्ति सरक्षक सिद्धान्त' और उससे भी अधिक उस पर जैक्वेस मेरिता की टीका को सहर्ष स्वीकार करेंगे। समाज अविरत दान और अविरत बचत के बिना (जिसका स्रोत व्यक्ति है), व्यक्तियों के जीवन और स्वाधीनता की गहराई में छिपे उदारता के स्रोत के बिना, (जिसे प्रेम प्रवाहित करता है) कायम नहीं रह सकता। मेरिता का विचार है कि सर्वजनहित की पहली अनिवार्य विशिष्टता 'पुनर्वितरण' है।*

गाधी और विनोबा भले ही उन कठिन सामाजिक, आर्थिक सम-

* जैक्वेस मेरिता दि राइट्स ऑफ मैन, पृष्ठ २३।

प्रकृति से स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित करके मानव का विकास हो। मानव स्वय और दूसरे व्यक्तियों के साथ शान्तिपूर्वक रह सकें, इसके लिए उनका प्रकृति के साथ अपने अन्योन्याश्रय को समझना ही दक्षिण पूर्वी एशिया की जीवन-कला है। दक्षिण पूर्वी एशिया की लोक-गाथाओं, साहित्य, वास्तुकला, राजनीति और जीवन में, सर्वत्र, मानव-व्यवस्था और प्रकृति व्यवस्था में घनिष्ठ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति हुई है। इसका एक उदाहरण है। बौद्ध राजा जयवर्मन सप्तम द्वारा १२ वीं शताब्दी के अन्त में स्थापित ख्मेर (कम्बोडिया) की राजधानी आँकोरथोम नगर, जो स्थिति, निर्माण, मूर्तियों के अलकरण आदि की दृष्टि से विशाल विश्व का लघु प्रतिरूप था। प्राकृतिक साधनों का नियोजित ढग से विदोहन एकदम पश्चिमी ढंग है, जिसके पीछे प्रकृति पर शासन की भावना है। इससे व्यक्ति का प्रकृति से सम्बन्ध टूट जाता है, जो दक्षिण-एशिया में परम्परा से चली आ रही दार्शनिक तथा धार्मिक भावना और व्यवहार के विपरीत है। मानव व्यवस्था का एक बार प्रकृति व्यवस्था से सम्बन्ध टूटने पर राजनीति में धर्म की अभिव्यक्ति नहीं रह जाती और धर्म राजनीति का गुण खो बैठता है। जीवन का स्तर मुख्यत आर्थिक दृष्टि से आँका जाता है और सास्कृतिक कलाओं के सामने एक ही रास्ता रह जाता है कि वे सामाजिक आदर्शों को प्रश्रय दे या उनकी आलोचना करें। यदि कम्यूनिज्म की स्थापना हुई, तो वह पश्चिम द्वारा किये गये इस विभाजन को चोटी पर पहुँचा देगा और इस प्रकार दक्षिण पूर्वी एशिया में सुसम्बद्ध जीवन विधि में प्रकृति और मानव का सम्बन्ध समाप्त हो जायगा। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह विद्रोह करके प्रकृति से सम्बन्ध-विच्छेद और उस सम्बन्ध विच्छेद के फलस्वरूप अपनी ही विरासत से सम्बन्ध विच्छेद न करे।

प्रकृति और मानव के बीच 'सन्धि' ही एशियाई सस्कृति का हृदय है। सभी विकासों का आधार यही बुनियाद होनी चाहिए। यदि इस बात की उपेक्षा की गयी, तो इच्छा, सजग चेतना और व्यापक तथा

अन्यायो और सामाजिक बुराइयों के पक्के शत्रु जयप्रकाश नारायण अब भी अपने स्वभाव के अनुसार समझने और समन्वय करने की कोशिश करते हैं। वे समझते हैं कि समाज के मूल अर्थात् व्यक्ति की सुव्यवस्था एवं प्रगति, और भूमि के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध पर जब तक खूब अच्छी तरह से ध्यान न दिया जायगा तब तक विशाल समाज को बदलने के सारे प्रयास बेकार रहेंगे।

कम्युनिज्म, मार्क्सवाद, लोकतान्त्रिक समाजवाद का लम्बी अवधि तक चक्कर लगाने के बाद विद्रोही का गाधीजी के उतोपिया की ओर लौटना स्पष्ट रूप से एशिया के बुद्धिवादियों की प्रतिक्रिया का प्रतीक है। जयप्रकाश की प्रतिक्रिया विशुद्ध है, यह उनमें दिखाई पडनेवाली शान्ति, गम्भीर निष्ठा और उनकी सीधी-सादी, पारदर्शी, अकृत्रिम अभिव्यक्तियों तथा उनके विचारों से प्रकट है।

अन्यत्र भी ऐसे विचारों के अकुर प्रस्फुटित हुए हैं। बर्मा के प्रमुख समाजवादी नेता वा स्वे अपने देश के समाजवाद के सम्बन्ध में कहते हैं कि उसमें दो परत हैं, पहला परत भौतिकता-प्रधान अर्थात् मार्क्सवादी है, दूसरा परत अध्यात्म-प्रधान अर्थात् बौद्ध है। महान् नेता को जो बात समझने की आवश्यकता है, वह यह है कि ससार के वारिस होनेवाले मार्क्सवादी और उनके दोहरे विश्वास के बीच होनेवाला यह अन्तर खण्डित जीवन की ओर ले जायगा, मस्तिष्क में विकार न रहते हुए भी उन्माद की बीमारी (शीजोफ्रेनिया) जैसी स्थिति उत्पन्न करेगा, क्योंकि दोनों निष्ठाएँ अपने में मौलिक और एकान्तिक हैं और दो परतों को एक साथ कर देने से उतोपीय समाजवाद बन जाता है। तब बा स्वे के प्रिय देश बर्मा की बेकार भूमि और धान के खेत स्वय भूदान और क्बुित्ज देखगे। न केवल इजराइल और न केवल भारत, बल्कि सारा एशिया उतोपियावाद का महान् स्वप्न देख रहा है।

मैंने उतोपीय समाजवाद को उस तिरस्कारपूर्ण भाषा से मुक्त करने का प्रयास किया है, जिसे इसके साथ प्रयोग किया जाता है। जिस अनु-

सर्वहारा-दर्शन

: 3 :

लेनिन द्वारा की गयी समाजवाद की कई व्याख्याओं में एक व्याख्या थी 'सर्वहारा-दर्शन।' जब कि 'दर्शन' की अन्तर्वस्तु के सम्बन्ध में समाजवादियों के विचारों में काफी अन्तर रहा है, सर्वहारा की प्रधानता के विषय में आमतौर पर मतैक्य रहा। लासैल ने कहा था "सर्वहारा चट्टान है, जिसपर भविष्य के मंदिर का निर्माण होगा।" जाँ जोरेस ने ललकारभरे शब्दों में प्रमेय का सूत्र बनाया "हमेशा के आग्रहपूर्ण प्रश्न 'समाजवाद कैसे प्राप्त किया जायगा' का उपयुक्त उत्तर हमें यह देना चाहिए कि 'सर्वहारा के विकास से, जिसका समाजवाद से अटूट सम्बन्ध है।' यह प्रथम और आवश्यक उत्तर है और जो भी इसे पूर्णरूप से नहीं समझता और स्वीकार करता वह समाजवादी जीवन और विचार की सीमा से बाहर है।" मार्क्स ने विचार को शानदार रूप दिया "सर्व-हारा को मुक्ति दिलाये बिना दर्शन अपने को चरितार्थ नहीं कर सकता, सर्वहारा दर्शन को चरितार्थ किये बिना अपनी मुक्ति नहीं कर सकता।"

एकमात्र सर्वहारा समाजवाद को आगे बढ़ानेवाला है, यह बात स्वयं-सिद्ध सत्य के रूप में स्वीकार कर ली गयी। फल यह हुआ कि जहाँ सर्वहारा कमजोर था, वहाँ कमजोरी को ठीक करने के लिए दर्शन की अधिक खूराक की जरूरत हुई। ब्रिटेन और अमेरिका में आंग्ल सैक्सन स्वभाव और परम्पराओं के अलावा सर्वहारा की शक्ति ने दर्शन की आवश्यकता नगण्य कर दी। जर्मनी में तेजी से औद्योगीकरण और १८७० में जर्मन साम्राज्य के विस्तार के साथ होनेवाली औद्योगिक क्रान्ति में उसके असाधारण नेतृत्व ने दर्शन का महत्त्व अंशतः कम कर दिया। फ्रान्स, इटली और रूस में दर्शन ने सर्वहारा की खामी और पिछड़पन को दूर करने का प्रयत्न किया।

ल्वासिशर के शब्दो मे'सशस्त्र विद्रोह' था। १८४८ म पेरिस म श्रमजीवियो ने सेना के घेरों को तोड दिया, सेना से चार दिनो की लडाई मे १६ हजार श्रमजीवी मारे गये। युद्ध में फ्रास की पराजय के वाद श्रमजीवियों ने १८७१ मे कम्यून की घोपणा की। इस कम्यून का दमन करने के लिए वर्साई सरकार को प्रशियनों द्वारा सेदान और मेत्ज में युद्धवन्दी वनाये गये सैनिको को मुक्त कराना पडा था। एक सप्ताह तक सडको पर हुए रक्तरंजित युद्ध मे २० हजार कम्यूनवादी मारे गये। इस प्रकार वर्ग सघर्ष का फ्रास ने प्रत्यक्ष अनुभव किया।

अपने लडाकूपन के वावजूद फ्रास के सर्वहारा का राज्य पर वहुत मामूली प्रभाव था। खेतिहर और मध्यम वर्ग का राज्य पर अधिक वश था। ट्रेड यूनियनों को १८८४ तक वैध नहीं करार किया गया। नि शुल्क प्राथमिक शिक्षा का लोग १८८२ तक नाम भी नहीं जानते थे। फैक्टरी सम्बन्धी कानूनों और सामाजिक वीमे की प्रगति मन्द थी। पहला कर्मचारी मुआवजा कानून १८९८ में पास हुआ। वृद्धावस्था तथा वीमारी सम्बन्धी वीमा का प्रभावशाली एव व्यापक कानून तो १९२८ में वना।

फ्रास की ट्रेड-यूनियनों का ढॉचा ऐसा था कि वे लडाकूपन पसन्द करती थीं। व्रिटेन में ट्रेड-यूनियनों का सगठन व्यवसाय के आधार पर हुआ और १८८९ के प्रसिद्ध उफान के समय तक उनमें उच्चवर्गीय और काफी सुदक्ष मजदूर ही आये। व्रिटेन के ट्रेड यूनियनों की भावना और विचार को इस वात से समझा जा सकता है कि १८८२ और १८८३ में ट्रेड-यूनियन काग्रेस ने सभी पुरुषों को मताधिकार देने के प्रस्तावों को वहुत भारी वहुमत से अस्वीकार कर दिया।

फ्रास में यूनियनों का संगठन उद्योग को आधार वनाकर किया गया था। उनका केन्द्रीय सगठन ट्रेड-यूनियनों का महासघ या सी० जी० टी० था। स्थानीय इकाइयों को उनके क्षेत्रों मे क्षेत्रीय श्रमिक संघटन (Bourses du travail) के रूप में एक साथ किया गया, जो रोजगार दफ्तर के रूप में भी काम करते थे। ट्रेड-यूनियनों ने मज-

कि कोई भी राज्य, उसके तत्कालीन शासकों की भावना चाहे जो हो, इस प्रवृत्ति से बच नहीं सकता।' एक दूसरे समाजशास्त्री फ्रैंकलिन गिडिंग्ज (१८५८-१९३१) ने रक्तशिरा में एक नया तत्त्व शामिल कर दिया है। 'छोटे राज्यों को मिलाकर बड़े राजनीतिक एकीकरण का कार्य तब तक चलता रहना चाहिए जब तक ससार की सभी अर्द्ध-सभ्य, बर्बर और जगली जातियाँ विशाल सभ्य राष्ट्रों के सरक्षण में न आ जायँ।'

सर जान सीली (१८३४-९५) ने ब्रिटेन के साम्राज्यवादी मिशन में 'एक स्पष्ट लक्ष्य' का दर्शन किया। एक दूसरे अंग्रेज इतिहासकार जे० ए० क्रैम्ब (१८६२-१९१३) ने कहा है कि अंग्रेज जाति ऐसी है, जिसे 'साम्राज्य स्थापित करने की प्रतिभा उपहार रूप मे मिली है और ऐसा राष्ट्र प्रारब्ध द्वारा निर्दिष्ट अपने काम को पूरा करने के लिए सभी जोखिम उठाने, सभी कठिनाइयाँ सहने और सभी बलिदान करने के लिए बाध्य है।'

साम्राज्यवाद की शक्ति के विषय में जर्मन और अमेरिकी इतिहासकारों के कुछ कहने की तुलना में अंग्रेज लेखक सीली, डिलके और फ्राउड में चलते हुए प्रसग जैसे साम्राज्य के विषय में बहुत कुछ कहने की प्रवृत्ति थी।

अपनी साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति को अनुभव करने में दूसरे देश सुस्त नहीं थे। हेनरिक वॉन ट्रीत्स्के (१८३४-९६) का कहना था कि परमात्मा ने ट्यूटन राष्ट्रों को यह काम सौंपा है कि वे 'संसार को राजनीतिक दृष्टि से सभ्य बनायें।' एच० एस० चेम्बरलेन अनुभव करते थे कि 'दो शताब्दियों के भीतर जर्मनी ऐसी स्थिति में पहुँच जायगा कि वह सारे विश्व पर शासन कर सकेगा।' फ्रास में मौरिस बैरेस (१८६२-१९२३) और चार्ल्स मौरास छेड़छाड़ करनेवाली अखण्ड राष्ट्रीयता' का गान गा रहे थे। इटली में जेन्टाइल और गैब्रील द अनन्जियो (१८६४-१९३८) ने 'पुनीत आत्मश्लाघा' (Sacroegoisms) को बढावा दिया और उसका गुणगान करने लगे। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र अपने साम्राज्यवादी लक्ष्य की बात सोच रहा था।

चीज है।" ट्यूटन, स्लाव सेल्ट, लैटिन सभी ने 'एक कुटुम्ब' होने का स्वप्न देखा। "शक्तिशाली राष्ट्र अपना विस्तार करने के लिए संघर्ष करें और अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों का बोलबाला हो, यह स्वाभाविक था और कुछ लोगों की दृष्टि में मानव प्रगति के लिए आवश्यक था। स्वस्थ जातियों में यह स्वभावगत भावना और ऐसी 'पिछडी जातियों' का होना, जिनका भेदन किया जा सके, साम्राज्यवाद के तर्क को अकाट्य बना देता है।"*

क्रैम्ब ने गति का एक नया नियम घोषित किया "जिस साम्राज्य का बढना रुक गया, उसका ह्रास प्रारम्भ हो गया है।" एलिस की लाल रानी की तरह इसे उसी स्थान पर बने रहने के लिए उत्तरोत्तर और भी तेज दौडना होगा। उत्तरोत्तर उन्माद का आन्दोलन किसी दिन खतरा बन जायगा, अपने ही अड्डे को 'विजित' कर लेगा, अपनी ही मातृभूमि को उपनिवेश बना लेगा।

मजदूर भी इसी तरह की बातें सोचते थे और ऐसी ही भावना रखते थे। उस समय वास्तविकता को आदर्श से पृथक् करने का जो बुद्धिवादी वातावरण था, जो प्रवृत्ति और प्रतिमान

श्रमिक सघवाद था, उससे उनका आन्दोलन अवगत रहता था। सेण्ट साइमन ने कहा था समाजवाद का उद्देश्य ऐसी नयी समाज-व्यवस्था की स्थापना करना है, जो कारखाने के आदर्श पर आधृत हो। समाज के अधिकार कारखाने के सामान्य अधिकार होंगे। 'उद्योग की प्रगति से समाज वस्तुत' सोरेल के शब्दों में 'पूँजीवाद द्वारा निर्मित एक कारखाना बन गया।' न केवल समाज एक कारखाना बन गया, अपितु जैसा कि डब्ल्यू० एस० जेवोन (१८३५–८२) ने कहा था, "समाज के सभी वर्ग हृदय से ट्रेड-यूनियनवादी बन गये, अन्तर केवल दृढता, क्षमता और जिस प्रकार वे अपने हितों को आगे बढाते थे, उस गोपनीयता का था।"

---

* एफ० एम० रसेल थ्योरीज आफ इण्टरनेशनल रिलेशन्स, पृष्ठ २६४।

श्रमिक संघवाद 'कारखाने में परिवर्तित समाज में समाजवाद का रूप था।

श्रमिक संघवादी समझते हैं कि मानव के सभी समूहगत विभाजनों में व्यावसायिक संघ अर्थात् ट्रेड-यूनियन सबसे अधिक मौलिक एवं स्थायी है, क्योंकि समाज के व्यक्ति सबसे अधिक अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति की इच्छा रखते हैं। व्यावसायिक संघ का सदस्य बनकर श्रमिक किसी पार्टी में नहीं शामिल हो रहा है किसी विचार-पंथ को नहीं स्वीकार कर रहा है और न कोई वाद अपना रहा है। वह केवल ऐसा सम्बन्ध शुरू कर रहा है जो समाज में उसकी स्थिति के कारण उस पर जबरदस्ती लाद दिया गया है। कारखाने के मालिक के रूप में मजदूर 'परम्परा के किसी बन्धन को नहीं मानता 'सर्वमान्य सम्बन्धी धार्मिक और नैतिक विरासत उसके लिए नहीं है।' उसके लिए जो कुछ भी है, वह है वर्गीय सम्बन्ध और व्यावसायिक संघ के हित को अपना हित समझना।

वर्गगत श्रमिक वर्ग-संघर्ष को बल देने के लिए है, यही वर्ग-संघर्ष सुगम एवं असाधारण महत्त्व प्राप्त कर लेता है। वर्ग-संघर्ष यद्यपि भिन्न भिन्न रूप ले सकता है तथापि इसे अनवरत और कठोर होना चाहिए। हड़ताल तोड़-फोड़, काम में सुस्ती, बहिष्कार इस संघर्ष के विभिन्न रूप और रीतियाँ हैं। धीरे-धीरे चलनेवाले संघर्ष का अवसर खुले संघर्ष के रूप में विस्फोट होते रहने की जरूरत है। प्रत्यक्ष कार्रवाई श्रमिक संघवाद की पद्धति की अभिव्यक्ति हो जाती है।

'हड़ताल बिजली के प्रकाश की तरह काम करानेवाले मालिकों और काम करनेवाले मजदूरों के बीच के कायम अन्तर को साफ प्रकट कर देती है। इन शब्दों को उद्धृत करने के बाद हैरी लेडलर आगे कहते हैं—"हड़तालियों को अपनी ज्यादतियों 'लड़के मार दबाव' से बचने का प्रयास करना चाहिए। ऐसी स्थिति में श्रमिक संघवाद, 'नग्न' समाजवाद था।

हड़ताल की लहर को बढ़ाकर आम हड़ताल का रूप धारण करना

चाहिए या कम-से-कम आम हडताल होने का लक्ष्य तो रखना ही चाहिए। इस प्रकार हडताल मजदूरों को मजबूत बनाती है, नेतृत्व के लिए उपयुक्त नेताओं का पता चल जाता है, सकट का वातावरण तैयार होने से उदासीन लोग भी सक्रिय हो जाते हैं। मजदूर चक्रवात में पड जाता है और उसके सभी सम्बन्ध और परम्पराएँ टूट जाती हैं।

मजदूरों द्वारा अपने ही अनुभवों के सहारे विकसित श्रमिक सघवाद की यही विशेषताएँ थीं। सबसे बड़े अस्त्र के रूप में आम हडताल की कल्पना एक मजदूर फरनेण्ड पेलूटीयर (१८६७-१९०१) ने की।

इसका दार्शनिक विस्तार सुयोग्य बुद्धिवादी जार्ज सोरेल (१८४७-१९२२) ने किया, जिनका खयाल था कि "धीरे धीरे घुसती हुई 'बुद्धिवादियों की तानाशाही' ने मजदूरों को पंगु कर दिया है। वे सर्वहारा को हिंसावादी बनाना और उसे समझौते की सभी प्रवृत्तियों से मुक्त करना चाहते थे। 'वर्ग सघर्ष की साफ और निर्मम अभिव्यक्ति' के रूप में बलप्रयोग श्रमिक सघवादी समाज की आवश्यक युद्ध-विधि थी, बल्कि यह कहना चाहिए कि वह इससे भी कुछ अधिक थी। सर्वहारा की हिंसा भावी क्रान्ति को केवल निश्चित ही नहीं बना देती, बल्कि एकमात्र साधन भी प्रतीत होती है। यूरोपीय राष्ट्र जो इस समय मानवतावाद के चक्कर में फँस गये हैं, अपनी पुरानी शक्ति पुन प्राप्त कर सकते हैं।"*

हडतालें और बलप्रयोग अन्यायपूर्ण समाज को विखण्डित और विनष्ट कर देते हैं और सर्वहारा के नैतिक तन्तुओं को मजबूत बनाते है। हडतालों और सघर्षों की कठिन अग्नि परीक्षा में 'न्याय' की क्षीण हो रही धारणा का स्थान 'सम्मान' की नयी धारणा ग्रहण कर लेती है। सोरेल के विचार से सर्वहारा का क्रान्ति रोकना तत्काल होनेवाले वास्तविक लाभ के अलावा स्वय में नैतिक निमित्त भी रखता है। समझौता कर लेने या झुकने की राजनीति से उन्हें सबसे अधिक आशका थी और

* जार्ज सोरेले रिफ्लेक्शन्स आन वायोलेन्स, पृष्ठ ९०।

वे ऐसा मानते थे कि यह प्रवृत्ति नैतिक पतन की ओर ले जानेवाली है। 'शक्ति प्रयोग के फलस्वरूप प्राप्त और कायम सुधार ही वास्तविक हैं।'

सोरेल चाहते थे कि बलप्रयोग बिना किसी घृणा या प्रतिशोध की भावना के किया जाय। इसमें वीरता की प्रवृत्ति होनी चाहिए, इसे निर्वाह द्वारा खींच गया कार्य समझा जाना चाहिए। उदात्तता और सिद्धान्त की दृष्टि से सोरेल के बलप्रयोग में लोकमान्य तिलक (१८५६-१९२०) द्वारा प्रतिपादित बलप्रयोग की पवित्र निष्कामता थी। ऐसा लोकयुक्त बलप्रयोग नैतिक दृष्टि से शुद्ध करनेवाला एवं निर्माण और उत्थान करनेवाला होता है।

सोरेल का समाजवाद साथ-साथ लोकतंत्र विरोधी था। साधारण लोगों के विषय में उनकी कोई राय नहीं थी और उनके लिए इन लोगों का कोई उपयोग नहीं था। 'बहुमत' अर्थात् समूह पीछे पर हाथ लगाकर रोकनेवाला होता है। राजनीतिक बहुमत जब अपने प्रभाव को बढ़ाना चाहता है तब उसका प्रभाव प्रगतिशील, सक्रिय और कार्यक्षम बने हुए अल्पमत की प्रगति में बाधक और निरोधक हो जाता है। चुनिन्दा लोगों को ऐसा बनाने का सिद्धान्त श्रमजीवी वर्ग में भी काम कर रहा था। 'अल्पमत के संघर्ष से होनेवाले श्रमजीवियों के समूह को अल्पमत की प्रेरणा और नेतृत्व स्वीकार करना ही पड़ता है।'

आम हड़ताल का एक प्रतीकात्मक महत्त्व है जो प्रत्यक्ष कार्यवाह के विभिन्न चरणों में किये गये सभी प्रयासों को सार्थक बना देता है। आम हड़ताल हो या न हो इसका मुख्य महत्त्व आदर्शात्मक है या जैसा कि सोरेल ने कहा है 'आम हड़ताल एक 'कल्पित कथा' (मीथ) है।' इस 'कल्पित कथा' की व्याख्या उन्होंने 'प्रतीकों का समूह' जो तरल भावनाओं को उभार सके' की। कल्पित कथा 'वस्तुओं का विवरण नहीं बल्कि कर्म के निश्चय की अभिव्यक्ति है' और इसलिए तर्क और खण्डन से परे है।

सोरेल कल्पित कथा की उपयोगिता से बहुत दृढ़ता से समर्थन करते हैं।

कल्पित कथा का कोई विश्लेषण नहीं हो सकता, क्योंकि वह किसी-न-किसी समूह के विचारों के अनुसार होती है, जब कि उतोपिया के सम्बन्ध में न केवल विचार-विमर्श हो सकता और उसकी तुलना की जा सकती है, अपितु आवश्यकता होने पर उसका नमूना स्थापित करके वर्तमान समाज से उसकी भिन्नता भी प्रदर्शित की जा सकती है।

श्रमिक सघवाद में हडताल के लिए कार्रवाई के लिए वचनबद्धता होती है, जिसका मतलब विवेक और सयम से पराङ्मुख होकर विद्रोही जीवन स्वीकार करना है। यह 'मैगनम मेअर' (magnum mare) में कूदना है, जिसे बर्क हार्ड ने बहुत घृणास्पद रूप में प्रस्तुत किया है। वर्ग सघर्ष किसी सामाजिक साध्य के लिए साधन न होकर एक प्रिय उद्देश्य बन जाता है। श्रमिक सघवाद (कम-से-कम जिस रूप में वह सोरेल द्वारा प्रस्तुत किया गया है) समाजवाद को थोथा बना देता है, वह हिंसा के म्यान के रूप में जीवित रहता है, वर्ग भावना की दृष्टि से जाग्रत चुनिन्दा श्रमजीवियों के दुर्निवार आदर्श के लिए कायम रहता है।

"श्रमिक संघवाद के वर्ग में पहली बार यूरोप में ऐसे व्यक्ति की एक किस्म दिखाई पडी जो विवेक को छोडना या सही होना नहीं चाहता, अपितु अपने मत को लादने के लिए आमादा है। यह विवेक न अपनाने का अधिकार, 'अविवेक का विवेक' एक नयी चीज है।"*

ट्रेट यूनियन को गुणात्मक दृष्टि से भिन्न समूह बनाने के श्रमिक सघवादी प्रयास का वस्तुत कोई आधार नहीं है। अन्य सामाजिक सगठनों की तरह यह भी उत्साह की लहरों और निरुत्साह की सीमा में बँधा हुआ है। सक्रिय निष्ठा उत्पन्न करने के लिए इसकी शक्ति दूसरे समूहों से अधिक नहीं है। मीरा कुमारोव्स्की के अध्ययनों से प्रकट है कि ट्रेड-यूनियनों में शामिल मजदूरों में केवल लगभग दो प्रतिशत ही स्वेच्छापूर्वक यूनियनो के नियमित कार्यों में भाग लेते हैं। इससे थोड़े ही अधिक लोग किसी प्रकार के सामुदायिक कार्यों मे शामिल होते हैं।

* जोज ओरतेगे गैसेट दि रिवोल्ट आफ दि मासेज, पृष्ठ ८०।

हिंसा और विवेकहीनता की प्रधानता मजदूरों को प्रिय नहीं लगती। यह कुछ ऐसी चीज मालूम होती है जो बुद्धिवादियों द्वारा ऊपर से लादी गयी है, जो उनकी कपटपूर्ण, अतिनाटकीय 'चालाकियों' के विरुद्ध मात्र संरक्षण है। लघु समाज और धरती से दूर रहने के बावजूद औद्योगिक मजदूर की अब भी कुछ परम्पराएँ तथा सम्बन्ध हैं और साथ ही है घर पर और आंशिक पड़े रहने का विचार। केवल बुद्धिवादी ही पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। वे समाज में जड़ जमाने की चिन्ता और उत्तरदायित्वों से मुक्त हैं और दर्शन को विशिष्ट बनाने में अपना समय लगाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

मार्क्स ने पूँजीवाद का जो सर्वभेदी विश्लेषण किया है, उसमें उन्होंने दिखाया है कि यह सभी प्रायः निर्भर सम्बन्धों को बड़ी निष्ठुरता से चौपट करता है। उसका काम स्वाभाविक अर्थ-व्यवस्था और वस्तु-प्रधान अर्थ-व्यवस्था को अपने चंगुल में करना और नष्ट कर देना है। विचार के साथ इस की कल्पना चाहिए कि स्वाभाविक अर्थव्यवस्था के विरुद्ध पूँजीवाद पहले स्वदेश में और फिर उपनिवेशों में निम्नलिखित तरीके अपनाता है :

विघटन : समाज-नाश का सेतु

१ भूमि सम्पत्ति में विभाजन, खनिज, रत्न आदि की तरह की विदेशी वनस्पतियों जैसी उत्पादक शक्तियों के महत्त्वपूर्ण स्रोतों पर अधिकार प्राप्त करना।

२. श्रमिक शक्ति को मुक्त करना और उसे नौकरी करने के लिए विवश बनाना।

३ वस्तु-प्रधान अर्थ-व्यवस्था प्रचलित करना और

४ व्यापार और कृषि को एक-दूसरे से अलग करना।

पूँजीवादी विकास का यह तकाजा है कि समाज के परम्परागत आधार को रत्ती-रत्ती करके नष्ट कर दिया जाए, सामाजिक ढाँचों को तोड़ दिया जाए, मानव को 'मुक्त' किया जाए, उसका एकाकीकरण और व्यक्तिकरण किया जाए और 'उत्पादक' शक्तियों को पूँजीवादी व्यवस्था में लगाया जाए। उत्पादक शक्तियों में सबसे खास और सर्वाधिक है भूमि

उसके भीतर छिपी हुई खनिज सम्पत्ति, उसके चरागाह, जंगल, जल, विभिन्न पशुओं के झुण्ड और समूह। सम्पत्ति के इन स्रोतों का उपयोग करना, इन्हें उन व्यक्तियों से जिनका इन पर अधिकार है, जो इनमें काम करते हैं, मुक्त करना, अपने प्रभाव में लोगों को रखनेवाले संगठन को नष्ट करना, यही पूँजीवाद के कार्य हैं।

पूँजीवाद की संग्रह करने की पिपासा गैर-पूँजीवादी सामाजिक आर्थिक ढाँचे के स्वाभाविक और आंतरिक विघटन से ही शान्त नहीं होती। पूँजीवाद विघटन में तेजी लाना चाहता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष बल प्रयोग पूँजीवाद का अनिवार्य साधन बन जाता है। इतिहास की प्रक्रिया के प्रकाश में देखा जाय, तो पूँजी का संचय हिंसा को न केवल अपने उद्भव, बल्कि विकास के भी अखंड अंग के रूप में अपनाता है।

हरएक ढेर कहीं न कहीं शून्यता लाता है। पूँजी का संग्रह समाज में शून्यता लाता है। जमीन घेरने के आन्दोलन ने भूमि का संचय कर लिया और किसानों को भूमिहीन, गृहहीन, कार्यहीन अर्थात् सब मिलाकर मूल्हीन बना दिया। नये नये यंत्रों के साधन से होनेवाला पूँजीवादी उत्पादन अपने गाँव में, अपने घर में हाथ से माल तैयार करनेवालों की जड़ साफ कर देता है। ब्रिटेन में एक जुलाहा १७९७–१८०४ में २६ शिलिंग ८ पेंस प्रति सप्ताह कमाता था, १८२५–३२ में उसकी कमाई घटकर ६ शिलिंग ४ पेंस हो गयी।

व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा समाप्त कर देना, नष्ट कर देना पूँजी-संग्रह का सारतत्त्व है। द्रौपदी का चीरहरण हमारे युग का प्रधान प्रतीक बन गया है।

व्यक्ति को प्राप्त समाज का संरक्षण ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सारी सार्थकता और विशिष्टता लुट गयी। "बुर्जुआ वर्ग ने अपने तेज से अनेक ऐसे व्यवसाय छीन लिये, जिनमें भक्ति और श्रद्धा की भावना मानी जाती थी। डाक्टर, वकील, पुरोहित, कवि और वैज्ञानिक उसके कमाई करनेवाले मजदूर बन गये हैं" (मार्क्स एंगेल्स घोषणापत्र)। हरएक

कार्य करते रहना है। यह विरोध जो पूँजीवादी समाज और राज्य का निश्चित नियम है बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। इसीलिए सर्वहारा को दबानेवाली दमनकारी शक्तियों को बढ़ते देखकर मार्क्स ऐसा आनन्द अनुभव करते हैं जिसमें द्वन्द्वात्मक रहस्यवाद का तत्त्व निहित है।*

सर्वहारा अपने को मुक्त करे और इस प्रकार पूरी मानव जाति को मुक्त करे। इसके लिए उसे थोड़े समय के लिए नहीं, बल्कि सर्वहारा की क्रान्तिकारी विजय होने तक सभी सामाजिक सम्बन्धों से रहित और अलग रहना होगा।

सर्वहारा अपने ऐतिहासिक मिशन के वाहक बन सकें, इसके लिए मार्क्स ने मजदूरों को व्यापक मनोविकारमयी स्वार्थों और लगावों से मुक्त किया। धर्म को जिसे मार्क्स ने 'पीड़ा का शिकार होनेवाले प्राणी की कराह, हृदयहीन संसार की अनुभूति, सत्त्वहीन अवस्था का उभार' की संज्ञा दी 'जनता के लिए अफीम' कहकर निरर्थक करार दे दिया गया। पूँजीवाद परिवार को बाँध रखनेवाले स्नेह पति पत्नी जैसे सम्बन्धों को समाप्त कर दे रहा था। समाज में बड़ा सम्मान पाने का एकमात्र आधार सम्पत्ति था। मार्क्स ने कहा—'सर्वहारा के सभी पारिवारिक बन्धन पहले से ही टूटकर छिन्न-भिन्न हो चुके हैं।' इसी प्रकार अन्य सामाजिक व्यवस्थाएँ पूँजीवाद की शिकार बन गयी हैं।

मान्टेस्क की आत्मपरक आलोचना करते हुए मार्क्स ने कहा : 'कानून की आत्मा सम्पत्ति है।' अपने दुर्भाग्य का चिह्न लिए हुए हर एक सामाजिक विचार और संगठन सापेक्ष है। पूँजीवाद अत्याचार करने वाला दैत्य था और मार्क्सवाद उसका सर्वनाश करनेवाला सिद्धान्त। दोनों के बीच हर चीज बन जाती है। जहाँ तक कुछ सम्पत्ति पर निर्भर है वहाँ कोई आदर्श, सिद्धान्त और सार्वभौमिक मूल्य नहीं हो सकता। वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों के विचार 'निरंकुश' का समान करने

---

* [illegible] पृ० १

के विषय में साफ थे। "हम सनातन, परम और नित्य का नैतिक नियम कहकर लादे जानेवाले किसी भी नैतिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि नैतिक ससार के भी अपने स्थायी सिद्धान्त हैं, जो इतिहास और विभिन्न राष्ट्रों के बीच अन्तर को आगे बढाते हैं। • नैतिकता हमेशा एक वर्गगत नैतिकता रही है। • वर्गगत विरोधों और विचारों में उनके प्रभावों को बढावा देनेवाली वास्तविक मानव नैतिकता समाज के ऐसे चरण में ही सम्भव होती है, जो वर्गगत असगतियों को ही नहीं पार कर चुका है, अपितु उन्हें व्यावहारिक जीवन में भी भूल चुका है" (एंगेल्स)। इस शिक्षा का ही प्रभाव था कि फ्रास के समाजवादी नेता जूलेस गज्दे (Jules Guesde) ने घोषणा की "कानून और सम्मान शब्द मात्र हैं।"

तिरस्कार, अभाव और चुपचाप बात मान लेने की प्रवृत्तियों के प्रति वही निष्ठुरता थी जो आदमियों में जीवन की उलझनें और गूढता उत्पन्न कर देती है। इन उत्तेजनाओं को 'कमजोर का गुण' कहकर तिरस्कृत कर दिया जाता था। सर्वहारा को बहादुर, दयाहीन और निर्बल्ताहीन होकर भाग्य के हथौड़े को चलाना है। उतोपियावाद की मार्क्सवादी आलोचना केवल विज्ञान के आधार पर ही नहीं, वरन् इसलिए भी होती है कि उतोपियावाद में दृढता नहीं है। मार्क्सवाद ने जहाँ विज्ञान के प्रकाश में अपने सिद्धान्त निरूपित किये हैं, वहाँ उसके मूल में यही 'दृढता' है। नरमी के डर, 'पेटी बुजुआ' कहे जाने के भय ने बहुतों को सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की असंगतियों और पेचीदगियों के प्रति इस प्रकार की निष्ठुरता अपना लेने के लिए बाध्य किया है। उदारता का स्थान घृणा ले लेती है।

मार्क्स की जो प्रगाढ मानववादिता, गहरा रहस्यवाद, दुखियों के प्रति दारुण निष्ठा, प्रकाण्ड पाण्डित्य और ऊर्ध्वमुखी दृष्टि थी, वह समाज की सापेक्षवादिता, विद्वेष और एक प्रकार की जातिगत केन्द्रीयता (Ethrocentrism) से निर्मित हुई। इस अर्थ में वे भी अपने समय की देन थे।

व्यापक रूप है, जो किसी अधिकार विशेष का दावा नहीं रखता, क्योंकि उसे किसी एक खास अन्याय से ही पीडित नहीं होना पडता, जिसके साथ कोई ऐतिहासिक पदवी नहीं लगी चली आ रही है, जो किसी प्रकार का एकतरफा विरोधपक्ष नहीं है, बल्कि जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्था-सम्बन्धी पूर्वभावना का आमतौर से विरोधी है, और इन सब बातों के साथ ही यह ऐसा समूह है जो अपने को तब तक मुक्त नहीं कर सकता, जब तक स्वय समाज के दूसरे समूहों से मुक्त न हो जाय, सक्षेप में ऐसा समूह है जो अपने सारे मानव अधिकारों से वचित है। सर्वहारा इस प्रकार के समाज का विघटन है।"

जिस समसामयिक समाज में 'मानव ने अपने को खो दिया है' उसमें 'सभी वर्गों और जातियों से अलग' पडा हुआ सर्वहारा 'अपने को तब तक मुक्त नहीं कर सकता, जब तक वह स्वय समाज से मुक्त न हो जाय।' मार्क्सवाद का यही सारतत्त्व है, इसीके प्रचण्ड प्रकाश में मार्क्स के सारे कार्य हुए।

जाँ जौरेस की व्याख्या थी कि हीगेल ने ईसाई धर्म मे जो रूपान्तर किया, उसीकी तरह मार्क्स ने आधुनिक मुक्ति-आन्दोलन को चित्रित किया है। जिस प्रकार ईसाई धर्म का भगवान् पूरी मानव जाति की मुक्ति के लिए स्वय पीडित मानव जाति के सबसे छोटे रूप में उतर आया, जिस प्रकार व्यक्ति का अनन्तकाल तक छोटा होना मानव के अनन्त-काल तक उद्धार का आधार था, उसी प्रकार मार्क्स के शास्त्र में आधुनिक उद्धारक सर्वहारा को सभी सरक्षणों (गारण्टी) से रहित, हर अधिकार से वचित और सामाजिक एवं ऐतिहासिक उन्मूलन के चरम बिन्दु तक आ जाना था, ताकि वह अपना उत्थान करके समस्त मानव-जाति का उत्थान कर सके। जिस प्रकार अपना मिशन पूरा करने के लिए मानव रूप में परमात्मा को कयामत के दिन तक, जब मुर्दे जी उठेंगे, दरिद्र, पीडित और तिरस्कृत रहना था, उसी प्रकार सर्वहारा को मानव जाति की क्रान्तिकारी कयामत, विद्रोह के दिन तक अपना पवित्र

के विषय में साफ थे। "हम सनातन, परम और नित्य का नैतिक नियम कहकर लादे जानेवाले किसी भी नैतिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि नैतिक ससार के भी अपने स्थायी सिद्धान्त हैं, जो इतिहास और विभिन्न राष्ट्रों के बीच अन्तर को आगे बढाते हैं। • नैतिकता हमेशा एक वर्गगत नैतिकता रही है। वर्गगत विरोधों और विचारों में उनके प्रभावों को बढावा देनेवाली वास्तविक मानव नैतिकता समाज के ऐसे चरण में ही सम्भव होती है, जो वर्गगत असगतियों को ही नहीं पार कर चुका है, अपितु उन्हें व्यावहारिक जीवन में भी भूल चुका है" (एंगेल्स)। इस शिक्षा का ही प्रभाव था कि फ्रास के समाजवादी नेता जूल्स गज्दे (Jules Guesde) ने घोषणा की "कानून और सम्मान शब्द मात्र हैं।"

तिरस्कार, अभाव और चुपचाप बात मान लेने की प्रवृत्तियों के प्रति वही निष्ठुरता थी जो आदमियों में जीवन की उलझने और गूढता उत्पन्न कर देती है। इन उत्तेजनाओं को 'कमजोर का गुण' कहकर तिरस्कृत कर दिया जाता था। सर्वहारा को बहादुर, दयाहीन और निर्बलताहीन होकर भाग्य के हथौड़े को चलाना है। उतोपियावाद की मार्क्सवादी आलोचना केवल विज्ञान के आधार पर ही नहीं, वरन् इसलिए भी होती है कि उतोपियावाद में दृढता नहीं है। मार्क्सवाद ने जहाँ विज्ञान के प्रकाश में अपने सिद्धान्त निरूपित किये हैं, वहाँ उसके मूल में यही 'दृढता' है। नरमी के डर, 'पेटी बुर्जुआ' कहे जाने के भय ने बहुतों को सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की असंगतियों और पेचीदगियों के प्रति इस प्रकार की निष्ठुरता अपना लेने के लिए बाध्य किया है। उदारता का स्थान घृणा ले लेती है।

मार्क्स की जो प्रगाढ मानववादिता, गहरा रहस्यवाद, दुखियों के प्रति दारुण निष्ठा, प्रकाण्ड पाण्डित्य और ऊर्ध्वमुखी दृष्टि थी, वह समाज की सापेक्षवादिता, विद्वेष और एक प्रकार की जातिगत केन्द्रीयता (Ethrocentrism) से निर्मित हुई। इस अर्थ में वे भी अपने समय की देन थे।

अग सामाजिक समूहों में उतनी ही भयानक कलह होती है, जितनी गिरोहों और राज्यों में। उनका एकमात्र उद्देश्य अपना स्वार्थ होता है।" समूहगत सुखवाद के इस विचार पर एक नयी आचरण-संहिता का निर्माण हुआ, जिसमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्व तथा सार्वभौम औचित्य की बात हटा दी गयी और यह पहले से मान लिया गया कि समूह-लिप्सा में ही समाज-कल्याण निहित है। इतना ही नहीं, हर समूह अपने को सामान्य साध्य का साधन ही नहीं मानता, वरन् अपने को ही साध्य समझता है। किसी समूह की श्रेष्ठता की माप संघर्ष में उसके सम्भावित या वास्तविक वजन से होती है। इससे एक नये विचार, जातिगत केन्द्रीयता (Ethnocentrism) का उदय हुआ। जातिगत केन्द्रीयता आन्तर समूह तथा बाह्य समूह के बीच व्यापक एवं कठोर भेद पर आधृत है। इसमें बाह्य समूह के प्रति पुरासक्त, नकारात्मक प्रतीक तथा विद्वेषपूर्ण भावनाएँ रहती हैं, आन्तर समूह के प्रति पुरासक्त स्वीकारात्मक प्रतीक तथा समर्पण की भावनाएँ रहती है और समूह में पारस्परिक व्यवहार में, जिसमें आन्तर समूह को वरीयता तथा बाह्य समूह को गौणता दी जाती है, उच्चस्तरीय अभिनायकवादी दृष्टिकोण होता है। हारे हुए व्यक्ति ने बहुत-सी बातों को जिन्हें उसके अहं ने स्वीकार नहीं किया, बहिर्जगत में स्थापित किया। अपनी कमजोरी के कारण लोग दूसरों की कमजोरी की अधिक निन्दा करते हैं और इस प्रकार अपनी आन्तरिक कमजोरी से बाह्य जगत् में लड़ते हैं।

व्यक्तिगत द्वन्द्व, सामूहिक टक्कर, वर्ग-संघर्ष, राष्ट्रीय युद्ध, इन सबसे मानव क्षत-विक्षत हो गया।

शक्ति के बल पर सामाजिक नवजागरण का प्रयास किया गया। विलफ्रेडो पैरेटो (१८४८-१९२३) ने लिखा "शक्ति प्रयोग समाज के लिए अनिवार्य है। उच्चवर्ग जब अपनी चालबाजियों या मूर्खता अथवा डरपोकपन के कारण शक्ति से घृणा करते हों, तब समाज के निर्वाह और समृद्धि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शासन करनेवाले वर्ग के

स्थान पर दूसरे दल को प्रतिष्ठित किया जाय जो शक्ति प्रयोग के लिए तैयार हो और इसकी क्षमता रखता हो।" हिंस की सदी में सत्य सफलताने के लिए आवश्यक है कि 'सोसाइटी' का स्थान 'दल' ले।

फ्रेडरिक नीत्शे (१८४४-१९) की उन्मादपूर्ण घोषणा दुष्कृतिनी की आपत्ति को केवल बढ़ाता है ऐसी या मनमाने विकृत रूप में प्रस्तुत कर देती है।

विचार के केवल एक अंग पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो विकास की मौलिकता नष्ट हो जाती है। युग की प्रवृत्ति के विकास को कानून की प्रगति में देखा जा सकता है। रुडोल्फ वान इहरिंग का कहना था कि कानूनी अधिकार का दूसरा पक्ष वे हित हैं जिनकी रक्षा करना कानून का उद्देश्य है। अधिकार न राज्य के ऊपर है और न राज्य से परे। लार्ड जेलिनेक ने उचित और अनुचित न्याय और अन्याय की सभी विभाजन-सीमाओं को लोप किया। उनका मत था कि "राज्य का वास्तविक अधिकार उसके वास्तविक अधिकार से बड़ा है। 'स्वतः सीमन' (Auto limitation) से इसका रूप वैधानिक अधिकार हो जाता है।" हान्स केल्सेन ने 'स्वतः सीमन' के नियम की अधीनता को अस्वीकार किया और कहा : "कोई भी अन्तर्वस्तु वैध हो सकती है, मानव का कोई ऐसा व्यवहार नहीं है जो वैधानिक आदर्श की अन्तर्वस्तु न बन सके।" "राज्य के हर काम वैध काम हैं।" जोसेफ कोहलर ने दूसरा ही रास्ता अपनाया। उन्होंने कहा : "मानव अधिकार हर उन्नति के लिए आवश्यक नहीं है।" "संस्कृति के लिए त्याग सबसे बड़ा त्याग है जो व्यक्ति कर सकता है, किन्तु यह ऐसा त्याग भी है जो व्यक्ति को करना चाहिए।" एरिक कॉफमैन ने 'संस्कृति' का स्थान 'शक्ति' को दिया और 'राज्य के अस्तित्व' की व्याख्या 'शक्ति का विकास' किया। कार्ल स्मिट ने 'शत्रु और मित्र के निश्चित रूप से राजनीतिक अन्तर' का विचार दिया और कहा "जैसा कि अच्छे और बुरे (नीतिशास्त्र में) का अन्तर खूबसूरत और बदसूरत (सौन्दर्यशास्त्र में) का लाभप्रद और हानिकर

(अर्थशास्त्र में) के अन्तर की तरह नहीं है और न उनके स्तर पर उसे लाया ही जा सकता है। इन अन्तरो की तरह उसे समझने की गलती भी न की जानी चाहिए।" इस प्रकार कानून की क्रमोन्नति में राज्य और व्यक्ति की गैर-जिम्मेवारी को प्रश्रय मिला। कानून निष्प्राण शरीर की तरह है, एकमात्र प्राणवान् सत्य शक्ति है।

बौद्धिक वातावरण में जाल के पर्दाफाश, विघटन और विलगाव की प्रधानता थी। इब्सन और स्ट्रिण्डवर्ग ने नैतिकता का पर्दाफाश किया, प्राउस्ट और गिडे ने विबद्ध मानव, उसके 'अंशों' और कृत्यों के विषय में लिखा। कला और साहित्य से उत्प्रेक्षावाद का जादू समाप्त हो गया, 'टुकड़ो' की लुढकन में कोई ढाँचा कायम नहीं रह सका।

जिस शताब्दी में मार्क्स हुए उस शताब्दी में किसीने भी इन तथ्यों और प्रवृत्तियों को उतनी गहराई से नहीं समझा, जितना मार्क्स ने। समाज की बुराइयों और उन बुराइयो की जड 'पूँजी' के प्रति उनके वीरोचित क्षोभ का जन्म उनके इस अनुभव से हुआ कि पूँजीवाद मजदूर को 'मशीन का दास' बनाये दे रहा है। उन्हे इस बात का क्रोध था कि मनुष्य के द्वारा तैयार की गयी चीज ही मनुष्य के प्रति क्रूरता कर रही है और वह स्वय निर्जीव वस्तु जैसा बन गया है। मानव का विलगाव और विघटन करनेवाली इन शक्तियो के विरुद्ध ही मार्क्स के कम्युनिज्म का जन्म हुआ।

एगेल्स की तरह मार्क्स के कम्युनिज्म का मूल आर्थिक नहा, बल्कि दार्शनिक था। स्वय से और अपने कार्य से व्यक्ति के दूर रहने का कारण पूँजीवाद और धर्म हैं, जिनका आधार सम्पत्ति है। मार्क्स ने कम्युनिज्म द्वारा पूर्ण मुक्ति का मार्ग दिखाया। उनकी पूरी दृष्टि इन शानदार शब्दों से प्रकट होती है "कम्युनिज्म उपलब्ध किया गया प्रकृतिवाद होने से मानव और प्रकृति के बीच, मानव और मानव के बीच, अस्तित्व और सार के बीच, वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ के बीच, स्वतन्त्रता और आवश्यकता के बीच तथा व्यक्ति और जातियो के बीच झगड़े को सही अर्थ मे

समाप्त कर देगा। यह इतिहास की पहेली को सुलझा देता है और जानता है कि हम (कम्युनिज्म) उसे सुलझा रहे हैं।'

परिवर्तनशील युग समाज में विकसित हो रही ऐसी व्यापक दृष्टि, अतिमानवीय आवश्यकता मार्क्स के विचार का आधार महत्त्व बन गयी।

मार्क्स ने मुक्ति के महान् आन्दोलन को व्यक्ति और समाज की अन्तर्निहित क्रिया में से प्रकट होता हुआ देखा।

मार्क्स ने व्यक्ति के सम्बन्ध में व्यक्तिवादी और राज्यवादी धारणा को स्वीकार किया जिसमें व्यक्ति और व्यक्ति के बीच आत्मस्वार्थ के अलावा और कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने रूसो के 'सामाजिक' के साथ युग के लिए इच्छुक और स्वभाव में 'प्राकृतिक' प्राकृतिक मानव को भी माना। यह सर्वहारा आन्दोलन का काम था कि वह ऐसे 'व्यक्तियों' की एकपक्षीयता से ऊपर उठे और स्वतन्त्र एवं परिपक्व मानव को सामने लाये।

मुक्ति के लिए इतिहास की गति और सामाजिक प्रगति को अच्छी तरह से समझने और प्रगतिशील प्रवृत्तियों को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। इस गति को समझने और क्रम को आगे बढ़ाने में मार्क्स ने हीगेल (१७७०-१८३१) के द्वन्द्वात्मक तर्क की सहायता ली। द्वन्द्वात्मक तर्क यथार्थ और विचार को गतिशील मानता है, इसपक्ष प्रतिपक्ष विरोध से संघर्ष करके समन्वय की स्थिति में पहुँचता है और यह समन्वय आगे बढ़ता है। तर्कात्मक विकास के द्वारा लगातार प्रगति ही सत्य का अविच्छेद्य और शाश्वत तत्त्व है। प्रकृति जीवन और विचार सभी क्षेत्रों में विकास इस त्रिक (Triad) से पुनर्निर्मित ऐसे ऐसे रास्ते से होता है।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक तर्क को ग्रहण किया किन्तु इसे उन्होंने यथार्थ में स्थापित किया। यथार्थता वस्तुओं की होती है, विचार की नहीं; विचार वस्तु की छाया मात्र होता है। मार्क्स-एंगेल्स ने 'जर्मन आदर्शवादी दर्शन के सुप्रसिद्ध द्वन्द्वात्मक तर्क को प्रकृति और इतिहास के भौतिकवादी

क्षेत्र मे उतारनेवाले सम्भवत प्रथम व्यक्ति' होने का गौरव प्राप्त किया। एक बार मौलिक परिवर्तन हुआ, तो एक नया सम्बन्ध, विचार का एक नया क्षेत्र सामने आया 'नयी उत्पादक शक्तियो को प्राप्त करने मे लोग अपनी उत्पादन विधि, जीविका-प्राप्ति का ढग बदल देते है, वे अपने सारे सामाजिक सम्बन्ध बदल देते है।' बढती हुई उत्पादन शक्तियाँ उत्पादन की विधि को बदल देती है और उदार सामाजिक व्यवस्था के लिए स्थिति तैयार कर देती है।

जो लोग वतमान उत्पादन विधि से लाभान्वित होते है तथा जो उसके शिकार है, उनके बीच सघर्ष के रूप मे मुक्ति की प्रक्रिया चलती रहती है। बढती हुई उत्पादन शक्ति से पीडितों को सफलता की आशा होती है। इस प्रकार उस वग संघर्ष का जन्म होता है, जो पुराने अन्तरों को समाप्त कर देगा और अन्तिम मुक्ति निश्चित कर देगा।

पूँजीवाद मानव श्रम को वस्तु मे परिवतित करता है। उत्पादन की आधारभूत विधियों मे मानव सम्बन्धों पर पर्दा पड जाता है। लोगों के बीच सम्बन्ध वैसा ही हो जाता है जैसा वस्तुओं के बीच। यह ऐसी विचित्र बात है, जिसे मार्क्स ने 'भौतिक वस्तुओं के रुप मे समझा जाना' (Verdinglichurg) कहा है। मानव श्रम को भौतिक वस्तु के रूप में समझे जाने, उसे वस्तु के स्तर पर रखने से विनिमय और स्वाभाविक न्याय के दो रूप हो जाते है मजदूर का पारिश्रमिक उसके श्रम के बराबर होता है, मालिक को प्राप्ति श्रम शक्ति के बराबर होती है। श्रम को श्रम-शक्ति से अलग किये जाने से अतिरिक्त श्रम रह जाता है। यह अतिरिक्त श्रम शोषण तथा तबाही, पूँजी संचय, बचत में वृद्धि और अततः सम्पत्ति के थोड़े से हाथों में खिच आने को बढावा देता है।

बढते हुए अतिरिक्त मूल्य का फल यह होता है कि उसके साथ साथ आर्थिक विस्तार होता है, सफल उद्योग मालिकों के ग्रूप का अन्तर घटता है, मजदूरों की तबाही बढती है और उनका समाजीकरण होता है। केन्द्रीकरण अनेक लोगों के सहयोगपूर्ण श्रम की एकसूत्रबद्धता को

उत्पादन की सामाजिक दृष्टि से किसी पूर्ण प्रणाली बनाकर संघर्ष के कार्य की सम्पूर्ति करता है।

पूँजीपतियों को उखाड़ फेंकने की शक्ति 'मजदूर समूह का सक्रिय' बनने से ही आती है 'समूह' में ही वह 'आघात करने की शक्ति प्राप्त' करता है। मार्क्स ने कारखाने को 'समूह का प्रतीक, समाजीकरण और आदर्श' माना है, ऐसे कार्यों का समूह माना है, जो एक-दूसरे पर निर्भरता के साथ एक सूत्र में सम्बद्ध हैं।

उत्पादन-शक्ति और उत्पादन-विधि के बीच, उत्पादन-विधि और वितरण-प्रणाली के बीच, आर्थिक विस्तार और बढ़ती हुई बेकारी के बीच, पूँजीवादी संचय और मजदूरों के दरिद्रीकरण के बीच व्याप्त आन्तरिक असंगति इस सीमा पर पहुँच जाती है कि क्रान्ति हो जानी चाहिए अन्यथा सारा समाज नष्टप्राय हो जायगा।

क्रान्ति उत्पादन और वितरण के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित कर देती है और उत्पादन शक्तियों के द्वार को खोल देती है।

बुर्जुआ वर्ग के समाप्त होने के बाद सर्वहारा की तानाशाही का संक्रमण काल आता है। चूँकि सर्वहारा सारे शोषण का आधार था इसलिए उसकी विजय और तानाशाही ऐसा करे, जो हमेशा सार्वजनिक के हाथ का प्रशासन यन्त्र था 'समाज का वास्तविक प्रतिनिधि' बना देती है और इस प्रकार 'अपने को ही अनावश्यक कर देती है। 'एक के बाद दूसरे क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप निरर्थक हो जाता है और फिर अपने आप समाप्त हो जाता है।

इतिहास की लम्बी प्रसव पीड़ा के बाद अन्ततः वर्गहीन समाज का जन्म होता है जो मानव की पहली मानवीय मर्यादा है। 'जीवन की परिस्थितियों का सारा क्षेत्र जिससे मानव घिरा हुआ है और जो अब तक मानव पर शासन करता था अब मानव के अधिकार और नियन्त्रण में आ जाता है। स्वतन्त्रता से मानव और प्रकृति की मुक्ति किसी मशीन के प्रयत्न का फल नहीं है, बल्कि समाज में पहले से ही विद्यमान

तत्वों के पूर्ण रूप से प्रकटन, सभी निषेधों के निषेध, जो चीज दबी हुई थी उसे समाज की पूरी शक्ति से सक्रिय करके और दर्शन द्वारा प्रबुद्ध सर्वहारा के क्रान्तिकारी उफान से प्राप्त किया गया है।

किसी विचार में सत्य और किसी कार्य के औचित्य को जीवन में व्यावहारिक कार्य से समझा जाता है। आलोचनात्मक विश्लेषण और कृत्य-गत समन्वय साथ-साथ आगे बढते हैं। बाह्य ससार में काम करके और उसे परिवर्तित करके मानव अपने स्वभाव में भी परिवर्तन करता है।

इस प्रकार मार्क्स का महान् विचार हर चीज को बहती धारा बना देता है। द्वन्द्वात्मक तर्क आधारभूत सिद्धान्त की चरितार्थता सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं द्वारा सोचता है। सामान्य बुद्धि द्वारा स्थिर उद्देश्यों का सामजस्ययुक्त ससार भग हो जाता है और स्वय लोक-प्रवाह में मिल जाता है। हर वस्तु में एक अविरल गति, एक स्थायी सुन्दरता आ जाती है। ज्ञान और क्रान्तिकारी विकास की एक-दूसरे के साथ मेल न रखनेवाली सापेक्षता एक दूसरे के अन्तर में प्रवेश करने लगती है।

व्यापक असगतियों ने विघटन के वातावरण को और बल प्रदान किया। मौन सम्मति और गतिविधि के बीच जीवन और विचार की स्थिति कम्पनयुक्त तनाव जैसी हो गयी, जिसमें बराबर बदलते हुए विचार ही किसी घातक पराकाष्ठा के चगुल में जाने से बचा सकते है।

निस्सन्देह दर्शन ने विघटनवादी आन्दोलन को तेजी प्रदान की। इसने सुस्थिरता नहीं आने दी और उपलब्धि तथा दृढता पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि यह लपेट में नहीं आया। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण एगेल्स की पुस्तक '१८४४ में इग्लैण्ड में श्रमजीवी वर्ग की स्थिति' (दि कण्डीशन आफ वर्किंग क्लास इन इग्लैण्ड इन एट्टीन हण्ड्रेड फोरटी फोर) में मिलता है। एगेल्स ने मजदूरों की दु खद और सन्तापकारी तबाही का वर्णन किया है और कहा है कि इससे बचने का एकमात्र रास्ता क्रान्ति है। सुधार भले ही वह

कितना भी शोषण क्यों न हो, असम्भव है, क्योंकि या तो वर्तमान व्यवस्था वैसा कर नहीं सकती या उसे स्वीकार करने में आपत्तियों की श्रृंखला खड़ी हो जायगी। ८ घण्टे की काम की व्यवस्था के विधेयक पर उनकी टीका देखिये :

"राजनीतिक अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से दिये जानेवाले उत्तरों के इन शब्दों में कहा ही गया है कि ८ घण्टे काम की व्यवस्था के विधेयक से उत्पादन का खर्च बढ़ जायगा, ब्रिटिश उद्योग विदेशी प्रतिस्पर्धा में ठहर न सकेंगे और मजदूरी निश्चित रूप से घटेगी। यदि ८ घण्टे का विधेयक कानून बन जाता है, तो स्वभावतः इंग्लैण्ड बरबाद ही तबाह हो जायगा लेकिन चूँकि इस कानून के अनुसार दूसरे ऐसे कदम भी उठाये जायेंगे, जो इंग्लैण्ड को अब तक अपनाये गये तरीकों से बिलकुल विपरीत कार्रवाई करने के लिए बाध्य कर देंगे इसलिए कानून प्रगति की दिशा में कदम है।"

समाज में सर्वहारापन बहुत कम था। लोगों से छिन होने की कोई भावना नहीं थी। पचास वर्ष बाद १८९२ में जब एंजेल्स ने अपनी पुस्तक पुनः प्रकाशित की तब उन्होंने यह प्रश्न नहीं किया कि घटनाओं ने क्यों उनकी भविष्यवाणी को गलत कर दिया तथा क्यों उनकी क्रान्ति सम्बन्धी आशाओं को शान्ति और सुधार के सम्बन्ध में उनके सन्देहों को अविश्वास का मूल सिद्ध कर दिया।

ऐसा ही दूसरा उदाहरण एंजेल्स का आवास सम्बन्धी लेख है जो १८७२ और फिर १८८७ में छपा था। उन्होंने मजदूरों को अपना घर बनाने में सहायता करने, नगरपालिकाओं द्वारा मकान बनवाने और सहकारिता के आधार पर बस्तियों के निर्माण को प्रोत्साहन देने की सभी योजनाओं और सुधारों को अव्यावहारिक घोषित किया। ऐसा कोई भी सुधार मजदूरों के स्तर को गिरा देगा 'छोटे मकान में अपनी बसी मजदूर की बस्ती एक प्रकार की पूँजी है किन्तु यह मजदूर के लिए नहीं बल्कि उन पूँजीपतियों के लिए पूँजी है जो मजदूर के मालिक हैं।' पूँजीवाद

के अन्तर्गत एक ही सुधार सम्भव है, वह यह कि गन्दी बस्तियाँ हटायी जायँ। गन्दी बस्तियाँ समाप्त हो नहीं सकतीं। पूँजीवादी समाज नगर और देहात के बीच अन्तर को बढ़ाता है और इस प्रकार आवास की समस्या को कठिन बना देता है।

इस प्रकार एंगेल्स सहकारिता को निरर्थक मानते थे। पूँजीवादी ढाँचे में परिवर्तन और सुधार की कोई गुंजाइश नहीं थी। पूँजीवादी समाज को उखाड़ फेंकने से ही मजदूर जंजीर की जकड़ से मुक्त हो सकता था।

उनके मत से सामाजिक कानून मजदूर वर्ग को सुविधा प्राप्त (जो वर्तमान शासन के प्रति रुचि रखेगा) और उपेक्षित वर्ग में बाँटनेवाले और मजदूर वर्ग में जिन लोगों की अच्छी स्थिति हो उन्हें क्रान्तिकारी भावना से दूर रखनेवाले हैं।

समाज के लचीलेपन में विश्वास का अभाव विचार को दुराग्रह की पराकाष्ठा पर पहुँचा देता है। यह पराकाष्ठा जवाबी पराकाष्ठा को उभाड़ती है और मजबूत बनाती है। अन्तर बढ़ता जाता है। पराजय के खतरे को खूब बढ़ाने-चढ़ाने से ही सफलता की आशा बढ़ती है।

वर्ग प्रमुख पात्र बन गया। वर्ग में व्यक्तियों के बीच कोई सुसम्बद्ध सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह कतिपय ऐसे समान तरीकों का नाम है, जिन तरीकों पर लोग कार्य करते हैं। यदि लोग एक साथ 'वर्ग' में एकत्र किये जा सकते हैं और उन्हें नया आकार प्राप्त हो सकता है, तो उसी प्रकार वे एक राष्ट्र, पार्टी और जाति भी बन सकते हैं। समूह की कल्पना नयी ऊँचाई पर पहुँच जाती है।

मुक्ति का सन्देशवाहक 'समूह का मजदूर', समूह में विलीन व्यक्ति था। मजदूरी के लिए गुलामी से स्वतन्त्रता के अन्त और उसके फलस्वरूप मानवता के अन्त के प्रति मार्क्स की गहरी सशंशीलता ने उनमें सामाजिक क्रान्ति की भावना का उदय किया। उन्होंने समझा कि सामूहिक जीवन और सामूहिक कार्य से मानव पृथक्करण से बच सकता है।

इस प्रकार मार्क्स ने अपने समय की 'नव शक्ति' को पकड़ा और समाज की सामूहिकता की शक्ति को सामने रखा। जब व्यक्ति की वैयक्तिकता और एकत्व चारों ओर से घिर गयी हो तब उसकी पूर्णता स्वत्व और एक साथ होने पर जोर देना चाहिए। उसमें व्याप्ति आनी चाहिए। मार्क्स ने इसी शक्ति से सामूहिकता का पक्ष लिया। विघटन और समूहवाद की प्रवृत्तियों के बीच सक्षम समाज-दर्शन अकल्पनीय नियमों की नीति चाहता है, ऐसा अनुशासन चाहता है जो व्यक्ति की शक्ति को मजबूत करे, क्योंकि उसे मानव का संसार के बराबर फैलाव करना या संसार को व्यक्ति में केन्द्रित करना था। इस अमीर वस्तु के साथ व्यक्ति समाज में घुल-मिल जाता है, राष्ट्र, वर्ग या पार्टी में समाहित हो जाता है और राज्य समाज को निगल जाता है। जिस उद्धार समाज के लिए उत्कण्ठा थी, उसके स्थान पर राज्य स्वार्थपरता पालन आ जाता है।

सन् १८६२ में बिस्मार्क जब चांसलर हुए, उन्होंने युग की आत्मा इस प्रकार घोषित की। "आज के बड़े बड़े प्रश्नों का निर्णय भाषणों और संसद में बहुमतों से न होगा बल्कि इसका निर्णय रक्त और लोहा रक्त और लोह के द्वारा होगा। १८७० के बाद पूरी का समाजवाद की यह माप जीवन के हर क्षेत्र में सुनाई पड़ी। मार्क्स ने देखा कि संचय विस्तार और शक्ति में भौतिक पूँजीवाद का उद्देश्य हो गया है। केन्द्र की बीमारी वस्तुतः जीवन के हर क्षेत्र में व्यापी। उत्पादन की प्रक्रिया केवल धन के लिए नहीं बल्कि जैसा कि सूकर ने कहा था और तब मार्क्स ने भी स्वीकार किया था धन के लिए दौड़ने के पीछे विद्यमान वास्तविक लक्ष्य शक्ति और सत्ता के लिए शुरू हुई। इस भावना से प्रभावित लोग महाद्वीपों पर अधिकार का स्वप्न देखने लगे और शताब्दियों के भविष्य की दृष्टि से सोचने लगे।

साम्राज्य-विस्तार से अतिरिक्त वस्तुओं और पूँजी को नहीं, बल्कि अतिरिक्त शक्ति और व्यक्तियों को भी बस्तियों में 'बाजार' मिल गया। साहसिक और यात्राएँ करनेवाले लोगों को अपनी उमड़ती हुई और

अनियन्त्रित शक्ति का बस्तियों में उपयोग करने का अवसर मिला। वहाँ बाहुल्यता तथा व्यक्तियों के आधिक्य से 'नृशंसता' के राज्य को बिना किसी रोक-टोक के बढने का अवसर मिला। सिसिल रोड्स (१८५३-१९०२), राजा ल्यियोपोल्ड द्वितीय (१८३५-१९०९), ई० बी० क्रोमर (१८४१-१९१७) को पिछड़े देशों में फैलने का खूब उपयुक्त अवसर मिला। बस्तियों की जनता खनिज तथा व्यावसायिक वनस्पतियों जैसी दुर्लभ वस्तुओं के उत्पादन के लिए पर्याप्त साधन के रूप में मिल गयी।

राष्ट्रगत श्रेष्ठता और जातिगत अभिमान की भावना मध्यवर्ती व्यापारियों और वाणिज्य की देखरेख करनेवाले राज्य-प्रतिनिधियों को अपराध करने से रोकती थी और इस भावना के ही कारण वे सहानुभूति भी नहीं रखते थे। जैसे व्यवहारों की स्वदेश में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, बस्तियों में वैसे व्यवहार साधारण चीज बन गये। आखिर बस्तियों में जाकर रहनेवाले लोगों में 'कानून की दृष्टि से' स्वदेश में रहनेवालों के बराबर 'रक्तगत शुद्धता' भी तो नहीं मानी जाती थी। केवल विशान नहीं, बल्कि लोगों के बाहुल्य से ही कुछ कार्य हो सकता था।

ब्रिटेन की बस्तियाँ बढती जा रही थीं और जितने भी लोग देश से जाते थे, इन बस्तियों में खप जाते थे। बर्क (१७२९-९७) ने आशंका प्रकट की थी और इस सम्बन्ध में 'कानून बनानेवालों का विरोध' भी किया था कि बस्तियों में 'कानून तोड़नेवाले' स्वदेश वापस आ जायँगे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। दूसरे देशों की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। कुछ को समुद्र पार के देशों में जाकर विस्तार करना अच्छा नहीं लगा। प्रशिया के जर्मनों, आस्ट्रिया के जर्मनों और रूसियों ने ऐसे साम्राज्य का स्वप्न देखा और उसके लिए कोशिश की, जो उनके भू-भाग से मिला रहे। वे अपने को 'यूरोप निवासी' समझते थे और 'यूरोपीय राज्यों' की प्राप्ति के लिए ही आकांक्षा रखते थे। समग्र जर्मन और समग्र स्लाव आन्दोलनों ने एक नयी संयुक्त शक्ति तैयार कर दी, जिसमें राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद और जातिवाद की भावनाएँ भरी हुई थीं और हर भावना में खूँखारपन

कहा था "इससे एक नया अनुलक्षण (Volkimperialismus) विकसित हुआ।"

स्वस्थ राजनीतिक समाज जनता के सहयोगपूर्ण प्रयास से बनता है। साझेदारी में काम के लिए बिन्दुपथ (locus) और दृष्टिपथ (focus) दोनों होता है। ऐसी स्थिति में ही मानव की सबके साथ सहयोग भावना सार्थक सम्बद्ध होती है।

नये सामाजिक समैक्य में दो कमियाँ हैं। एकाकी होने से बचाने के लिए यह व्यक्ति को जन-जाति के ढाँचे में सीमित कर देता है और मानव की आत्म-चेतना और आकाक्षा की अवस्था को समाप्त कर देता है। समाज धीरे धीरे 'एक साथ बढनेवाला' ही रह जाता है। बूटों की टाप पशुओं के पैरों की आहट ही रह जाती है। आन्तर उद्देश्य के अभाव में यह बराबर शत्रुओं के खतरे की बात करके एकता रखता है। नयी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कार्ल स्मिद्त ने सैद्धान्तिक सूत्र दिया है और स्पष्ट किया है कि राजनीतिक एकता में तीन तत्त्व हैं राज्य, गति और जनता। नये सामाजिक समैक्य में समाज को धूल की तरह बना दिया जाता है और वह गतिरूपी चक्रवात में चक्कर काटनेवाला बन जाता है। सामाजिक त्रिखड, जिसकी ऊपरी मजिल मानव, आधार राज्य और बीच का हिस्सा समाज है, औंधा कर दिया जाता है। इस घूमते हुए त्रिखण्ड की चोटी पर राज्य का कर्णधार या फ्यूहरर रहता है, जो गति का एकमात्र केन्द्रबिन्दु भी होता है। स्मिद्त ने दरअसल राज्य को जनता के स्वाभाविक हित (und volktrangede Tuhrungskorper) के समान समझा। इस प्रकार नाजियों ने विघटन की प्रक्रिया पूरी की। एक कठोर सत्य यह है कि नाजी दल अपने को केवल राष्ट्रीय और जर्मन ही नहीं, बल्कि मजदूरों की पार्टी कहता था। खूँखार राष्ट्रवाद और खूँखार समाजवाद के मूल में बहुत कुछ समानता है।

बेनिटो मुसोलिनी (१८८३-१९४५) को समाजवाद की शिक्षा ही नहीं मिली थी, बल्कि फासिस्ट होने के पूर्व तक वह समाजवादी पार्टी

का कर्णधार भी था। वयस्कावस्था में उसने रैडिकलवादी आन्दोलन के साथ युद्ध के विरुद्ध में अपने विचारों को विकसित किया जिससे हिटलर और मसारिक दोनों ने प्रेरणा ग्रहण की। मुसोलिनी ने 'स्पेंग से पैरेटो से शिक्षा पायी और 'प्रबल लोगों द्वारा नैतिक दृष्टि से सापेक्ष आभिजात्य कूटनीति' का अपना सिद्धान्त स्थापित किया जो 'आधुनिक युग का सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार' है। सिद्धान्त महासभा (सिद्ध धर्म सिर्फ़ते) में उसने इस तथ्य को पीछे स्वीकार किया कि 'मैकियावेली के विचार से राजा और प्रजा राज्य और व्यक्ति में कोई भी विरोध वाचक है। उसने अपनी आस्था का सिद्धान्त 'सब कुछ राज्य में, राज्य के विरुद्ध कुछ नहीं राज्य के बाहर कुछ नहीं' बनाया। जेन्टाइल के 'शुद्ध आचरण की 'वास्तविकता' के दर्शन के प्रभाव में विचार और कार्य के सम्बन्ध को समाप्त कर दिया। मुसोलिनी की सापेक्षिकता और इच्छाशक्तिता ने शब्दों की मर्यादा और अर्थ को खत्म कर दिया और इस प्रकार विचार को ही छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने गर्व के साथ अपने को 'सामन्त के साथ ही लोकतन्त्रवादी क्रान्तिकारी के साथ ही प्रतिक्रियावादी सर्वहारावादी के साथ ही सर्वहारावाद-विरोधी शान्तिवादी के साथ ही शान्तिवाद-विरोधी' घोषित किया। फासिस्ट वाद खास शब्दों की कोई व्यवस्थित अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि इच्छाओं और आकांक्षाओं का एक सिलसिला है। जीवन और विचार को पृथक् करके फासिस्टवाद निरंकुश बन गया।

स्पष्ट है कि मार्क्सवाद-विरोधियों की इन ज्यादतियों और लोकतन्त्र-वादों के लिए मार्क्स जिम्मेदार नहीं हैं। फिर भी सत्य यह है कि उसके समय की मूल प्रवृत्ति, पूँजीवाद की प्रबल भावना विषमता थी। नात्सीवाद और फासिस्टवाद इस प्रवृत्ति के चरम बिन्दु थे, 'मानववाद की आखिरी क्रान्ति' थे। मार्क्स अपने दर्शन में उद्भूत विनाशकारी शक्तियों की व्याख्या करने में असमर्थ रहे बल्कि इससे भी अधिक यह कहना चाहिए कि उनकी सापेक्षिकता और भौतिकवाद (भौतिकवाद सिद्धान्त) ने युग

की प्रवृत्ति को और भी बढाया। युद्ध और आर्थिक मन्दी, जो फासिस्ट-वाद रूपी बच्चे का पालना बन गये, मार्क्स की दृष्टि में समाजवाद रूपी पक्षी के पर आने की पूर्व की स्थिति की तरह थे। युद्ध और मन्दी तथा उनके बाद की स्थिति समाज के सम्बन्धों को क्षत-विक्षत और मानव विभव को कमजोर कर देती है, यह नहीं सोचा गया। प्राणवान् और गतिमान् सामाजिक सम्बन्धों का तकाजा है कि समाज निर्माण द्वारा सामाजिक नवचेतना का सचार किया जाय और वैयक्तिक विकास की नीति अपनायी जाय—इस आग्रह को विज्ञान के नाम पर उतोपियावादी कहकर तिरस्कृत कर दिया गया।

मार्क्स की शिक्षाएँ उनके जीवन के सध्याकाल में कुछ नरम हुईं। १८८०–१९१० में यूरोप में स्थिरता की जो स्थिति आयी, उसका मार्क्स की शिक्षाओं और समाजवादी आन्दोलन पर भी प्रभाव पडा। इस अनुकूली-करण के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे। मार्क्स के विचार अपने मूलरूप में रूस में कार्यान्वित किये गये, जहाँ १८९५ में प्राय. वही स्थिति थी, जो १८४५ में जर्मनी में थी। लेनिन का बोल्शेविकवाद अपने प्रारम्भिक उबाल-काल में मार्क्सवाद था। दोनों के लिए पेरिस कम्यून प्रकाश स्रोत था। लेकिन मार्क्स ने जहाँ उसमें विकेन्द्रीकरण की आवश्यकताएँ अनुभव कीं और कम्यून को सामाजिक मण्डली के रूप में देखा, वहीं लेनिन ने उसे राज-नीतिक अस्त्र के रूप में समझा।

रूसी क्रान्ति

रूस की १९०५ की क्रान्ति की ही तरह १९१७ की क्रान्ति सर्व-हारावादी थी और केवल इसी अर्थ में सर्वहारावादी नहीं थी कि सर्वहारा क्रान्ति का अगुवा था, बल्कि इस अर्थ में भी थी कि आम जनता को विद्वेलित कर देने के लिए इसने खास तौर से सर्वहारावादी अस्त्र हडताल को अपना मुख्य साधन बनाया और निर्णायक घटनाओं के लहर जैसे क्रम में इसकी असाधारण विशिष्टता थी।

यह क्रान्ति युद्ध रूपी हथौड़े की चोट से जारशाही के शक्तिहीन हो

आने पर हुई। 'द्वैध शक्ति' (Dual power) के प्रारम्भिक काल में अस्थायी सरकार पुरानी व्यवस्था की प्रतिनिधि थी और सोवियत उनके विघटन का। इसलिए लेनिन ने माँग की 'सभी अधिकार सोवियतों को मिलें।'

सोवियत रूसी क्रान्ति का सार रूप था। लेनिन ने घोषित किया कि 'सोवियत उसी प्रकार की शक्ति होंगे, जिस प्रकार की शक्ति पेरिस कम्यून था'—अर्थात् ऐसी शक्ति होंगे 'जिसका स्रोत पहले से किसी संसद द्वारा विचारित और स्वीकृत कानून नहीं, अपितु जन प्रेरणा होगी'; वे प्रत्यक्ष रूप से जनपूर्वक तथा जनतान्त्रिक सोवियत होंगे। अप्रैल १९१७ में लेनिन ने कहा था : "सारे रूस में सत्ता-प्राप्त जनसमूह के स्थानीय संगठनों का जाल फैला हुआ है।" क्रान्ति को इस दृष्टि से देखा गया कि वह 'स्थानीय कम्यूनों के रूप में' बढ़ रही है।

क्रान्ति फैल गयी, ज़ारशाही ढह गया। देहातों में जागीरों पर अधिकार कर लिया, मज़दूरों ने कारखाने अपने कब्ज़े में कर लिये, सेनायें भंग हो गयीं और प्रशासन अस्तव्यस्त हो गया। शक्तियों को ऊपर उठाकर सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया गया। स्थानिक सोवियतों ने अपना अधिकार स्वेच्छा से लिया। बोल्शेविकों द्वारा सत्ता छीने जाने के बाद भी लेनिन ने कहा था : "अब से आपके सोवियत राज्य शक्ति के अंग हैं, उन्हें सभी निर्णय करने का पूरा अधिकार प्राप्त है।" जैसा कि [illegible] (१८७०-१९२४) ने बाद में कहा : "प्रारम्भिक काल में स्थानिक सरकार के आदर्श ने अव्यवस्थित रूप से उत्पन्न कर लिया।" सेना के भी स्थानीयकरण की कोशिश की गयी। क्रान्ति का आदर्श उसका संगठन-सिद्धान्त स्थानिकता था अर्थात् "एक ऐसा राज्य जिसमें नौकरशाही न हो, जिसमें पुलिस न हो, जिसमें स्थायी सेना न हो।"

लेनिन के लिए स्थानिकता सिद्धान्त से अधिक व्यावहारिकता के रूप में थी। उसमें संगठन के बजाय विघटन अधिक था। उन्होंने सोवियतों को

प्रोत्साहित किया कि 'जीवन की सारी बातें अपने अन्तर्गत रख लें' और इसके साथ ही बोल्शेविकों को चेतावनी दी—हमने सोवियतों को आलिंगनबद्ध किया है, हमने उन्हें जकडा नहीं। जब 'दो चालबाजियाँ' की गयीं, तो स्वभावतः बोलशेविकों ने रूसियों के 'सारे जीवन को जकड लिया।'

'बलपूर्वक अधिकार छीनने' का क्रम कैसा था, इसका वर्णन दिलचस्प है।

जनता की प्रभुसत्ता की प्रतीक सविधान सभा मनमाने तौर से भग कर दी गयी। इग्लैण्ड में ससद को भंग करने के लिए क्रॉमवेल स्वय ससद में गये थे, रूस में रक्षकों के कमाण्डर ने सविधान सभा का द्वार बन्द कर दिया, क्योंकि 'पहरेदार थक गया है।' भाषणों से जो काम होता था, उसे 'नृशसता' से किया गया। बोलशेविकवाद 'नृशसता' में आनन्द अनुभव करता था, उसने न्याय को तिलाजलि दे दी।

सम्प्रभुतासम्पन्न नया सगठन 'अखिल रूसी सोवियत काग्रेस' अपने एक हजार सदस्यों की अधिकता के कारण देश पर सीधे शासन नहीं कर सकता था। उसके अधिकार उसकी कौन्सिल (Vtsik) और मन्त्रि-मण्डल (Sovnarkom) को सौंप दिये गये थे। निरीक्षण और निर्देश के लिए काग्रेस की बैठकें हर तीसरे मास होने की आशा की जाती थी। १९१८ से यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी और अधिवेशन वर्ष में एक बार होने लगा। काग्रेस की बैठक हुई, तो कौन्सिल और मन्त्रिमण्डल किसीने भी अपने कार्य की रिपोर्ट देने की जरूरत नहीं समझी।

काग्रेस की कौन्सिल को हमेशा सत्र की स्थिति में समझे जाने की आशा की जाती थी। उसके अधिकार इस प्रकार खत्म किये गये (१) उसकी सदस्य सख्या दो सौ से बढाकर तीन सौ कर दी गयी और इस प्रकार 'मिलावट' द्वारा उसे कमजोर किया गया। (२) एक नया सगठन, अध्यक्ष मण्डल, बना दिया गया जिसे अधिकार प्रत्यायुक्त (Delegate) कर दिये गये। (३) बैठकों की संख्या कम और सीमित कर दी गयी।

(४) इससे बड़ी बात यह हुई कि मन्त्रिमण्डल ने विधान-निर्माण के अधिकार भी ले लिये। यही हाल प्रान्तीय और क्षेत्रीय सोवियतों की कांग्रेसों का भी हुआ।

अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस ने निर्देश दिया था कि स्थानीय विषय स्थानीय सोवियतों पर छोड़ दिये जायें। आर्थिक एकाधिकार और आदेश जारी करने तथा सहायता सम्बन्धी अधिकार होने से मन्त्रिमण्डल उन पर (स्थानीय सोवियतों पर) आन्तरिक मामलों के बड़े विभाग (Commissariat) जैसा अधिकार और प्रभाव रख सकता है। लेनिन ने केन्द्रीय कृत सार्वजनिक वित्त-व्यवस्था का पक्ष-समर्थन करने में कभी कोताही नहीं की।

संघर्ष का अन्तिम चरण था रूसी समाजवादी गणतन्त्रों के सोवियत संघ (Rsfsr) के संविधान की रचना। संघर्ष के तीन रूप थे, जिनमें मुश्किल से भेद किया जा सकता है। यह संघर्ष उन लोगों के बीच था जो राज्य की शक्ति को कम करना और बढ़ाना चाहते थे—जो स्थानीय अधिकारियों को अधिकार और सत्ता सौंपने के पक्ष में थे और जो केन्द्र में सत्ता का केन्द्रीकरण चाहते थे, जो संघ व्यवस्था चाहते थे और जो 'एक एवं अखण्ड' गणराज्य चाहते थे।

राज्य के सम्बन्ध में मार्क्सवादी सिद्धान्त का जिसके प्रकाश में उपर्युक्त विचार रख किये गये, अधिकार के पृथक्करण या सीमा निर्धारण से कोई मतलब नहीं है। मार्क्स के कथनानुसार अधिकारों के पृथक्करण का सिद्धान्त उस पुराने युग का अवशेष चिह्न है जिसमें 'शाही तथा सामन्तवादी वर्ग और बुर्जुआ वर्ग में सर्वोच्चता के लिए संघर्ष होता है। 'जनता के अलग शासन' सोवियतिक राज्य को किसी प्रकार की सीमा में बांधने और उसकी शक्ति में कमी करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका जन्म विरोधी शक्तियों में समझौता और सौदेबाजी से नहीं, अपितु क्रान्तिकारी वर्गों के फलस्वरूप हुआ है। इसी दृष्टिकोण के निष्कर्ष का ध्यान में रखकर सोवियत संविधान ने राज्य के विरुद्ध कोई वैधानिक

सरक्षण या व्यक्तिगत रूप में नागरिकों के अधिकार नहीं स्वीकार किये। सविधान ने न्यायिक कृत्य के उपयोग की कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं की। उसे कार्यपालिका का मातहत मान लिया गया। सरकार का सारा कृत्य एक था अर्थात् कार्य-सम्पादन एक उद्देश्य के लिए केवल एक शक्ति करे।

'राष्ट्रीय प्रश्न' के रियायत के रूप में सविधान का रूप सघीय रखा गया। प्रोफेसर कार के शब्दों में यह 'विलक्षण बात' हुई। "यद्यपि रूस को बराबर सघ कहा जाता था और 'सघीय' शब्द उसके नाम के साथ और सविधान मे सामान्य सिद्धान्त सम्बन्धी प्रारम्भिक अध्यायों में लिखा हुआ था तथापि सविधान में और कहीं यह शब्द नहीं आया। संघ की सीमा क्या है, सघ के गठन का रूप क्या है, उसके वैधानिक यन्त्र की क्या स्थिति है, इन सब बातों की सविधान में कोई व्याख्या नहीं की गयी।"*

क्रान्ति के पहले झोंके में राजनीतिक और आर्थिक अधिकार के विभाजन के विचार से सोवियत की तरह आर्थिक परिषदों के निमाण का प्रयत्न किया गया। व्यवहार में सर्वोच्च राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था-परिषद् (Veserkha) मन्त्रिमण्डल के मातहती थी आर स्थानीय तथा प्रादेशिक राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था-परिषदें (Sovnarkhozy) सम्बन्धित सोवियतों के अधीन थीं। "आर्थिक सोवियतों सम्बन्धी विचार मृत अवस्था में जमा। जो निर्मित किया गया वह मात्र केन्द्रीय आर्थिक विभाग था, जिसके स्थानिक कार्यालय थे।"†

अन्य सामाजिक सगठनों में सत्ता के केन्द्रीकरण का यही क्रम था और इसी तरह राज्य की शक्ति का विस्तार भी किया गया।

कारखानों में मजदूरों ने कारखाना-समितियों के माध्यम से अपना नियन्त्रण स्थापित किया था। लेनिन ने इसके बारे में कहा था "यहाँ सभी नागरिक सेना की तरह राज्य के वेतनभोगी नौकर बन जाते हैं। सभी नागरिक एक राष्ट्रीय राज्यरूपी अभिषद् के कर्मचारी और मजदूर

* ई० एच० कार दि बोलशेविक रिवोल्यूशन, खण्ड १, पृष्ठ १३९।

† वही, खण्ड २, पृष्ठ ७७।

सोवियत सगठन से सामजस्य और घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।' दिसम्बर १९१८ में सहकारी समितियों के केन्द्रीय बैंक—मास्को नरोदनी बैंक—को स्टेट नेशनल बैंक (राज्यराष्ट्रीय बैंक) में मिला दिया गया। नवम्बर १९१९ में आभास मिला कि 'सोवियत सगठनों और सहकारी समितियों के बीच सिद्धान्तगत मतभेद समाप्त हो रहा है' और सहकारी समितियों को 'राज्य यन्त्र' का पुर्जा समझा जा सकता है। आरम्भिक 'सहयोग सूत्र' को 'सगठन के सीमेंट' के रूप में बदल दिया गया।

सत्तारूढ दल की कोई सवैधानिक स्थिति नहीं थी और न राज्य से उसका कोई कानूनी सम्बन्ध था। इटली में फासिस्ट पार्टी को 'राज्य का अश' (Organo statale) हुए बिना राज्य का प्रवक्ता (Un-organo dells stato) माना गया था। रूस में ऐसा कोई भेद नहीं किया गया। 'सभी सोवियत सगठनों में यह अनिवार्य नियम था, कोई भी अपखण्ड (Fraction) पूर्ण रूप से पार्टी अनुशासन के अन्तगत ही बनाया जाय। इन अपखण्डों में निश्चित सोवियत सस्था में काम करने-वाले रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के सभी सदस्य शामिल हों।' केन्द्रीकरण और राज्य शक्ति के विस्तार को धन्यवाद देना चाहिए, हस्तक्षेप और गृह-युद्धों के फलस्वरूप फैलते हुए सकट और प्रतिस्पर्धी दलों के उन्मूलन की कृपा कहिये कि १९२१ में लेनिन को स्वीकार करना पडा कि "शासक दल के रूप में हम 'सोवियत प्राधिकारियों' को 'पार्टी प्राधिकारियों' के साथ नहीं मिला सके।"

पार्टी में सोवियतों की अपेक्षा नियन्त्रण का केन्द्रीकरण कुछ मन्द गति से हुआ, लेकिन तरीका वही था। पार्टी काग्रेस का अधिकार केन्द्रीय समिति (Central Committee) के हाथ में चला गया। केन्द्रीय समिति अखिल रूसी सोवियत काग्रेस की कौन्सिल (Vtsik) की तरह अधिकार अपनी मुट्ठी में न रख सकी और वह (अधिकार) शीघ्र पोलिटब्यूरो, आर्गब्यूरो और सेक्रेटरियट जैसे छोटे किन्तु प्रभावशाली सग-ठनों के हाथों में चला गया। सर्वोच्च अधिकार उन थोड़े-से लोगों के हाथ मे

नहीं जा सकता। यह विचारों तथा हृदय की एकता नहीं थी, वल्कि परवशता थी।

जिस अवस्था में आकांक्षा थी, वह अस्थिरता की अवस्था थी। मार्क्स ने कहा था 'उनका युद्ध का नारा' स्थायी क्रान्ति होना चाहिए। "युद्धकाल में लेनिन को सामाजिक शान्तिवादियों से उतनी ही घृणा थी, जितनी समाज में गडबडी करनेवालों से, क्योंकि वे शान्ति नहीं गृहयुद्ध चाहते थे। जब कि लोकतत्रवादी साधारण वुर्जुआ जल्दी से जल्दी क्रान्ति समाप्त करना चाहता है, हमारा हित और हमारी जिम्मेदारी यह कहती है कि क्रान्ति को वहुत कुछ स्थायी वनाया जाय।"

दक्षिण के आधुनिक औद्योगिक केन्द्रों के प्रिण्टरों, रेलवे-मैनों, इस्पात कारखानों के कर्मचारियों जैसे अधिक दक्ष और मजदूर सघों के रूप में सगठित मजदूर अधिकतर मेनशेविक थे। वोल्शेविकों को मुख्यत पीटरोग्राड क्षेत्र और मास्को के अपेक्षाकृत पुराने उद्योगों के अदक्ष मजदूरों का समर्थन प्राप्त था। कोमिण्टर्न और प्रोफिण्टर्न ने बाद में इन्हीं ढंगों पर पश्चिमी देशों में भी मजदूरों को विभाजित करने का प्रयास किया। वोल्शेविकों का ध्यान सबसे अधिक आधारहीन और इधर-उधर काम करनेवाले मजदूरों की ओर था। ऐसी अवस्था तैयार करना, जिसमें लोगों की जड न जमी हो, बोल्शेविकों का मूलभूत दाँवपेंच था और 'सार्वकालिक क्रान्ति' इसका आवश्यक अग था।

कम्युनिस्ट सेल (मंडली) अपने नाम में निहित ध्वनि के बावजूद सुसम्बद्ध न होकर पराश्रयी थे। वे दूसरे सघों के रूप में काम करते थे, जहाँ लोगों के आने से कुछ सामाजिक आधारों की रचना हुई। जो भी व्यवस्था अधिकार के लिए प्यासी हो, उसके लिए यह हर तरह से जरूरी है कि वह समाज को विकीर्ण करे, उसका ढाँचा समाप्त करे। वोल्शेविक इससे परे नहीं थे।

ऐसी स्थिति में स्वतन्त्रता एक वस्तुभर रह जाती है, मूल्य नहीं रह पाती। रूसी सघ (Rsfsr) के सविधान में मजदूरों को 'प्रकाशन

में सर्वहारा की अधिक तबाही होती है, लेकिन साथ ही उसमें चतुराई से काम बनाने की शक्ति भी अधिक रहती है।

लेनिन ने 'अधर में लटके हुए' खेतिहर को नजरअन्दाज नहीं किया और न ही उसके वशीभूत हुए। उन्होंने खेतिहर को बीच का एक ऐसा तीसरा वर्ग माना, जिसमें आन्तरिक जागृति नहीं है और जो बुर्जुआ वर्ग तथा सर्वहारा के बीच में झूल रहा है। खेतिहर को तटस्थ बनाना, उसका समर्थन प्राप्त करना सर्वहारा का मुख्य दाँव-घात हो जाता है।

सामाजिक विकास कठिन कार्य है। विकास के किसी भी चरण को छोड़कर आगे नहीं जाया जा सकता। जो सम्भव है, वह यह कि क्रान्ति रूपी उष्ण गृह में परिपक्व बनाने का समय कम किया जाय। सामन्त-वादी-पूँजीवादी समाज को बुर्जुआई स्तर को पार करना पड़ता है। सर्व-हारा की बुद्धिमत्ता यही है कि वह इस काल को कम करे। ब्लैंकी के प्रसिद्ध कथन—'हम आन्दोलन का सृजन नहीं करते, उसका रुख बदलते हैं'—में लेनिन ने परिवर्तन किया, 'हम सर्वहारावादी आन्दोलन की सृष्टि करते हैं और बुर्जुआ क्रान्ति का रुख बदलते हैं।'

सामाजिक क्रान्ति क्रमिक गति से होती है और धीरे-धीरे उसकी शक्ति बढ़ती है। इस क्रम में असगतियाँ पुंजित होती हैं, उनमें परिपक्वता आती है और वे विनाश बिन्दु पर पहुँच जाती हैं। इस क्रम के साथ कम्युनिस्ट की सहमति और क्रिया-कलाप होना चाहिए, किन्तु क्रियाकलाप में उसे एक कदम आगे और सहमति में दो कदम पीछे रहना चाहिए।*

जब तक सर्वहारा चुनौती नहीं देता, पूँजीवादी फन्दे बढ़ते जाते हैं। साम्राज्यवाद इन फन्दों का विश्वव्यापी कुरूप है पूँजीवादियों की प्रति-स्पर्द्धा पूँजीवाद में परिवर्तित राज्यों की प्रतिस्पर्द्धा का रूप ले लेता है और फलस्वरूप युद्ध होता है। युद्ध उत्पादन की शक्तियों को बढ़ाता है, उत्पा-दन की रीति को कमजोर करता है और इस प्रकार आन्तरिक असन्तुलन बढ़ता है।

---

* टी० बी० एच० मामेल्ड ए फिलॉसाफिक एप्रोच टु कम्युनिज्म, पैस्सिम।

यह महान् द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति असामान्य रूप से वैसे ही कठिन है, जैसे चाकुओं के एक बँधे हुए मण्डल को हवा में घुमाना। इस बात का हमेशा खतरा है कि कहीं किसी अंश को पूर्ण न समझ लिया जाय। विकास का हर चरण, प्रकटन का हरएक स्तर, चक्करदार गति का केवल एक अंश नहीं, बल्कि उस क्षण की पूरी गति है। एक चरण पर अधिक समय तक रह जाने या उसे जल्दी छोड देने और समाप्त कर देने का खतरा बराबर सामने आता है। कम्युनिस्ट नीति का विकास लहर की गति के साथ होता है, हर बार पेंग एकाएक रुख बदलने के पूर्व खूब दूरी तक जाती है। परिवर्तन के हर सूक्ष्म अन्तर में उसी प्रकार हेर-फेर की भारी सम्भावनाएँ निहित रहती हैं, जिस प्रकार रेल की पटरी को थोडा-सा घुमा देने से गन्तव्य स्थान कुछ-से-कुछ हो जायगा। 'अवसरवाद' सार्वकालिक घटना बन जाता है।

रूसी क्रान्ति के अभिलेख बताते हैं कि लेनिन के किसी भी साथी ने आवश्यक अनुमानों की उपलब्धि के लिए विघटन और संयोजन के तरीके का प्रयोग नहीं किया। इतिहास में परिवतन करनेवाली शक्तियों, वर्ग-विद्वेष सम्बन्धी स्थिति, विक्षोभ और असन्तोष को कभी ठीक से नही समझा गया। इस प्रकार द्वन्द्वात्मक तर्क सबसे जटिल और परिष्कृत रूप में सामने आता है। यह कोई रास्ता नहीं देता और सहमति तथा क्रिया-कलाप की सबसे अधिक सहायक लय को समझने के लिए विकल्पों का मूल्यांकन करने के लिए कहता है। द्वन्द्वात्मक तर्क कुतुबनुमा की सुई नहीं है, जो हमेशा ध्रुवतारे की ओर संकेत करती है, बल्कि वह पारा है जो बराबर स्थान बदलता और हिलता रहता है। निर्णय पश्चात्वृत्ति (a posteriori) बन जाते हैं। जो सफल होता है, वही द्वन्द्वात्मक तर्क को जानता है।

अभ्याक्रमण और केन्द्रीकरण की कैंचियों से युक्त द्वन्द्वात्मक तर्क विध्वंस और क्रान्ति का अनुपम अस्त्र है। किन्तु अधिकारारूढ होने पर इसकी सीमाएँ बुरी तरह बँध जाती हैं। मानव के विषय में लेनिन का

का समय आ गया है। समूह-राजनीति आम लोगों को इस चक्कर में इसलिए नहीं खींचती कि वे दिलचस्पी रखनेवाले हैं और समूह है, बल्कि उन्हें शक्ति समझकर खींचती है। इसने पुरानी पद्धति को समाप्त कर दिया और 'आन्दोलन के युग' का आरम्भ किया। जिस किसी भी चीज का महत्त्व है, वह राजनीति के भीतर आ जाती है, प्रत्येक विचार, प्रत्येक मूल्य अस्थायी अन्तवर्ती अवस्था में लुप्त हो जाता है। स्विट्जरलैण्ड के इतिहासकार जैकब बरखार्दत (१८१८-९७) ने इस प्रवृत्ति के विषय में कहा कि 'यह राज्य और समाज के बीच सीमारेखा को मिटानेवाली है। साथ ही हर चीज अस्थिर और अनिर्णीत स्थिति में हो जायगी।'

बराबर चलायमान अवस्था का कोई ढाँचा और कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। समूह के व्यक्ति की विशेषता यह है कि वह सबसे अलग और बहुत कम सामाजिक सम्बन्ध रखनेवाला होता है। रेजमैन का कहना है कि औद्योगिक दृष्टि से अति विकसित अमेरिकी समाज 'एकाकी जन-समूह' (Lonely Crowd) है। जब ब्रिटेन पर हवाई जहाज बमवर्षा कर रहे थे और देश संकट में था, उस समय भी प्रोफेसर कोल के शब्दों में 'हमारे इस विशाल, शीघ्रगामी, निर्मूलित संसार में सहयोग पाना बड़ा कठिन था।' 'तमाम आदमियों के बीच में व्यक्ति एकाकी रहकर बढ़ता है। 'हम जितने ही एक साथ हैं, हम उतने ही अकेले होंगे'। जर्मन समाजशास्त्री जार्ज सिमेल ने सिद्ध किया है कि शहरी सम्बन्ध अधिकता के कारण अवैयक्तिक और प्रभावरहित होते हैं। समूह का व्यक्ति इस प्रकार विकीर्णित (Atomised) समाज की कृति है और इस समाज में व्यक्ति अकेला रह जाता है।

समूह राजनीति में ऐसी प्रवृत्ति है, जिसने समूह के व्यक्ति को चोटी पर पहुँचा दिया है। फासिस्टवाद और कम्युनिज्म दोनों समाज का ढाँचा समाप्त कर देना और कई चीजों को मिलाकर बने हुए उसके सामाजिक भवन को विकीर्ण कर देना चाहते हैं। व्यक्ति को सभी सामुदायिक बन्धनों और सामाजिक लगावों से अलग कर दिया जाता है, कोई भी

हित या संघ अपने रूप में नहीं रहने पाता। इस अनुमान यहाँ तक कि जो सर्वाधिक यौगिक हो वह भी राज्य के अनुचर के रूप में ही काम करता है। स्वायत्ततापूर्ण सभी क्रियाकलापों को समाप्त कर देना सबसे बड़ा राजनीतिक उद्देश्य हो जाता है। अब्राहम कार्डिनर ने समाज की 'प्रधान' और 'गौण' प्रथाओं का भेद इस प्रकार किया है : 'प्रधान' प्रथाओं जैसे परिवार में प्रत्यक्ष और आमने-सामने का सम्पर्क होता है, 'गौण' प्रथाओं में, जो व्युत्पत्यात्मक (Derivative) नहीं होतीं जिनमें अनिवार्यता पूरी रहती है, कम अनिच्छा और स्वाभाविकता होती है। पर राज्य की युद्धरत गौण प्रथाओं ने हस्तक्षेप और अतिक्रमण से हुई। समूह की राजनीति में प्रधान प्रथाओं की एकरूपता और घनिष्ठता पर ही आघात किया जाता है, यही नहीं बल्कि यह प्रयत्न चाहिए कि मानव के आन्तर जीवन, उसकी मूल वैयक्तिकता को राज्य के भँवर में खींच लिया जाता है।

सन् १८५१ में स्विट्जरलैण्ड में अपनी डायरी में हेनरी फ्रेडरिक एमील ने 'हमारे युग की प्रधानतम प्रवृत्ति' को स्पष्ट किया : "मानव को किसी कार्य-विशेष में ही होशियार बनाकर और पूर्ण व्यक्तियों का निर्माण करके नहीं बल्कि उन्हें विशाल मशीन का पहिया बनाकर, चेतना को नहीं बल्कि समाज को व्यक्तियों का केन्द्र बनाकर, आत्मा को भौतिक उद्देश्यों का दास बनाकर और मानव का अवैयक्तीकरण करके आत्मारम-परायण, मौलिकतापूर्ण मानव-जाति को छीन लेना यही हमारे युग की प्रधान प्रवृत्ति है। नैतिक विकेन्द्रीकरण और सामाजिक एकता यौगिकता लगाव का (अनुराग सहनशीलता विश्वास का) स्थान ले लेती है। समानता के द्वारा एकता होती है, समता 'आधिक्य' बन जाती है, गुण के बदले परिमाण का महत्त्व होता है। स्वतन्त्रता नकारात्मक होती है जिसका कोई आन्तरिक नियम नहीं होता और जो अपेक्षापूर्ण शक्ति तक ही सीमित रहती है।" (डायरी पृष्ठ ४५)

प्रश्न को पूरी तरह से निरा खोलने के लिए ऐसा विकेन्द्रीकरण

समाज का विचूर्णीकरण आवश्यक हो जाता है। प्रधान और गौण प्रथाएँ मानव की रक्षा करती तथा उसे 'महाकाय' के वश से बाहर, निष्ठा और लगाव के दृष्टिपथ (Foci) प्रदान करती हैं। उन प्रथाओं का अन्त हो जाने से असीम और अबाध निष्ठा उपलब्ध हो जाती है। समूह की राजनीति में मुक्त और अविभाज्य निष्ठा प्राप्त करने का दावा निहित होता है और यह निष्ठा थोथी होती है। 'महत्त्व केवल इस बात का है कि व्यक्ति हमेशा बलिदान के लिए तैयार रहे, किस उद्देश्य के लिए बलिदान करता है, इसका महत्त्व नहीं।' व्यक्ति के पास विवेक नहीं रह जाता, प्रतिक्रिया के विभिन्न सूक्ष्म भाव नहीं रह जाते, बल्कि उसके पास केवल परिस्थितिस्फूर्त प्रतिक्रिया (Conditioned Response) रह जाती है।

सामाजिक परम्पराएँ (Institutions) निस्सन्देह जीवित रहती हैं, किन्तु उन्हें खोखला और स्थिर बना दिया जाता है। हर सस्था या परम्परा का कोई सामाजिक कार्य नहीं रह जाता, बल्कि वह शासन करनेवाले थोडे-से गिने-चुने लोगों और जनसाधारण के बीच 'इधर का सन्देश उधर और उधर का सन्देश इधर पहुँचानेवाली' जैसी रह जाती है। सामाजिक व्यवस्था को मनमाने ढग से सामाजिक अव्यवस्था में परिवर्तित कर दिया जाता है। समूह राजनीति की यह विशेषता है कि वह नियन्त्रणों के बाहुल्य द्वारा अधिकार रेखा को धुँधला कर देती है और ऐसी भ्रान्तिपूर्ण नीति को जन्म देती है जिसका कोई रूप नहीं होता। किसी पद की एक से अधिकता और अधिकार के विषय में अन्धेरगर्दी जान-बूझकर की जाती है। पद-विशेष का एक से अधिक होना और नियन्त्रणों की जटिलता अधिकार को बराबर इधर उधर करने, राज्य व्यवस्था को और पेचीदा बना देने तथा इस प्रकार साधारणजन को उसमें 'लापता' कर देने के लिए उपयोगी है। गुप्त और अस्पष्ट सामाजिक प्रक्रिया आदमी को लाचार और चेतनारहित—'राजभक्त' बना देती है। लोग पिछलग्गू बन जाते हैं और उस शक्ति के आगे सिर झुकाते हैं, जिसकी उपेक्षा करने का उनमें साहस नहीं हो सकता।

पार्टी कार्यकर्ता ही आदर्श नागरिक, समूह राजनीति का कुलीन व्यक्ति (elite) तथा सिद्धान्त में दीक्षित आन्दोलन की अभिव्यक्ति है। कार्यकर्ता भी अकेले या शून्य में अध्ययन नहीं करते, बल्कि समूह में ही अध्ययन करते हैं—क्योंकि वे अध्ययन मण्डलों की सभी आयोजना की थी। पार्टी कार्यकर्ता प्रायः संगठनों के माध्यम से कार्य करते हैं; इस प्रकार पहले के गुप्त संगठन में सहभागी करने के लिए द्वार बना लिये जाते हैं। आन्दोलन लेनिनवादी संगठन के उच्चस्तरीय कार्यकर्ता-मण्डलों, साधारण सदस्यों तथा 'हमराहियों' (सहयोगियों) के द्वारा प्रसारित होता है : "प्रत्येक संगठनों के 'हमराही' अन्य नागरिकों का तिरस्कार करते हैं, क्योंकि उनकी कोई दीक्षा नहीं होती। पार्टी के सदस्य हमराहियों का तिरस्कार करते हैं क्योंकि वे हमराही आसानी से किसी बात में विश्वास कर लेते हैं तथा उनमें आमूल परिवर्तन नहीं हुआ होता और उच्चस्तरीय कार्यकर्ता मण्डल इन्हीं कारणों से पार्टी के सदस्यों का तिरस्कार करते हैं। इस व्यवस्था का फल यह होता है कि हमराहियों का आसानी से विश्वास कर लेने का स्वभाव झूठ को भी विश्वास करने योग्य बना देता है, जब कि इसके साथ ही सदस्यों तथा उच्चस्तरीय कार्यकर्ता मण्डलों की अधिक आत्मपरिमिता से इस बात का खतरा नहीं रहता कि नेता अपने प्रचार के फलस्वरूप अपने वक्तव्य को सार्थक करने के लिए बाध्य हो जायगा। उच्चस्तरीय कार्यकर्ता मण्डल साधारण सदस्यों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उन्हें इस प्रकार के दिखावे की आवश्यकता नहीं होती और वे उन सिद्धान्तगत सत्यों के शाब्दिक रूप में विश्वास नहीं करते, जिनकी रचना साधारण जनता के बीच अभिप्राय प्रकट करने के लिए की जाती है। उच्चस्तरीय कार्यकर्ता-मण्डल में आदर्शवादी नहीं होते, अपितु उनके सदस्यों की सारी शिक्षा का उद्देश्य ही यह होता है कि सत्य और असत्य वास्तविक और कृत्रिम का अन्तर समझने की उनमें क्षमता न रह जाय। उनकी अपेक्षा इस बात में है कि वे किसी भी कथन को अपने कार्यक्रम की योजना में सम्मिलित कर लेते

हैं।"* आन्दोलन का विकास इस प्रकार होता जाता है कि उच्चस्तरीय कार्यकर्ता-मण्डलों तथा सदस्यों की सीमा निश्चित रहती है और हमराहियों का तब तक विस्तार होता जाता है, जब तक सारे लोग हमराही न बन जायँ। इस तरीके से समाज के सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर प्रभाव स्थापित हो जाता है, पार्टी कार्यकर्ताओ का सारे जन-जीवन पर नियन्त्रण हो जाता है और मानव की शक्ति सर्वसत्तावादी नियन्त्रण मे आ जाती है।

समूह-राजनीति में शक्ति का वास्तविक नियन्त्रण प्रच्छन्न रहता है—जो अभिकरण जितने ही साफ रूप में सामने रहता है, उसके अधिकार उतने ही कम रहते हैं। जो स्पष्ट है वह कृत्रिम बन जाता है, जो गुप्त है उसीके हाथ में वास्तविक सत्ता होती है। इस प्रकार खुफिया पुलिस प्रच्छन्न सत्ता बन जाती है, जो कभी दिखाई नहीं पडती, फिर भी हमेशा उपस्थित रहती है और शक्तिशाली है।

राज्य के आदेश पर बराबर न केवल कला, साहित्य और सगीत के सिद्धान्त बदलते हैं, अपितु इतिहास भी समय समय पर फिर से लिखा जाता है। सुस्थिर अतीत और जनस्मृतियों को समय समय पर इस प्रकार नये ढग से प्रस्तुत किया जाता है कि वे राज्य सचालन कला की आवश्यकताओं के उपयुक्त हो सकें। द्वन्द्वात्मक तर्क हर चीज को क्षणिक बना देता है। स्थिरता का एकमात्र स्रोत नेता होता है।

निकोलो मैकियावेली (१४६९–१५२७) ने कहा था "लोगों की या तो देखभाल की जाय या उन्हें बर्बाद कर दिया जाय, साधारण आघात किये जाने पर वे प्रतिशोध करेंगे, किन्तु बड़े आघात किये जाने पर वे ऐसा नहीं कर सकते।" एडोल्फ हिटलर (१८८९-१९४५) ने कहा था "छोटे झूठ पकड में आ जाते हैं, बड़े झूठों पर विश्वास कर लिया जाता है। व्यक्ति समूह द्वारा बराबर बर्बाद किया जा रहा है।"

समूह-राजनीति व्यक्ति और राज्य के बीच की सारी दूरी को

* हन्ना आरेन्द्रत दि ओरिजिन्स आव टोटैलिटैरियनिज्म, पृष्ठ ३७१-७२।

द्वारा परिष्कृत किया। जब दबाव बहुत अधिक हो जाता है, तो आनेवाली पीढ़ियों की शक्ति और निष्ठा का लाभ उठाने के लिए सुरक्षा और स्थिरता की मृगतृष्णा दिखाई जाती है। यह ऐसी प्रणाली है, जो अपने अनेक सेवकों को आत्मसात् कर जाती है, लेकिन शासन भाग्य पर निर्भर उस क्रीडा की तरह, जिसमें विजेता और उत्तरजीवी दोनों खूब पुरस्कृत होते है और क्रीडा से पहले विजेता और विजित का पता नहीं चल सकता, खिलाड़ियों की आकाक्षाओं को समय समय पर उभाड़ता रहता है और उनके बलिदान को अपनी शक्ति का आधार बनाता है।"*

निरोधन शिविर (कन्सेन्ट्रेशन कैम्प) में समूह-राजनीति अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। किसी उद्देश्य, किसी विश्वास के लिए प्राण देकर जो गौरव प्राप्त होता है, इस शिविर में मानव को वह गौरव भी नहीं मिलता। मूक और मृत के उस ससार अर्थात् निरोधन शिविर मे विरोध का कोई अर्थ नहीं है। वहाँ कोई साक्षी, कोई समैक्य, कोई सबूत नहीं होता। जैसा कि डेविड रोजेट ने कहा है "जब मृत्यु रोकी नहीं जा सकती, उस समय अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करना मृत्यु को एक अर्थ प्रदान करता है। सफलता के लिए किसी काम की सामाजिक सार्थकता होनी चाहिए। यहाँ हम लोगों जैसे ही लाखों लोग हैं, जो सबके सब तनहाई की हालत में रह रहे हैं। यही कारण है कि कुछ भी हो हम अधीनस्थ हैं।"† जैसा कि ब्रेटिलहाइम ने कहा है उस "दूसरे राज्य में उत्पीडक और उत्पीड़ित, हत्यारे और मृत का भेद करनेवाली रेखा बराबर धूमिल हो रही है।"

मौन अत्याचार से भी आगे बढकर यह होता है कि उत्पीडन मानव की निजी चीज विचार के क्षेत्र तक में होने लगता है। जिस व्यक्ति का दमन किया जाता है, उसे उसके अपने ही विचारों को गलत कहलवाकर

---

* मेरले फेनसोड हाऊ रशा इज रूल्ड, पृष्ठ २७६।

† डेविड रोजेट दि अदर किंगडम, पृष्ठ ४६४।

इस प्रकार समूह-राजनीति का अन्त व्यक्ति पर व्यक्ति के आक्रमण के रूप में होता है। यह समाज के ढाँचे और सामाजिक तत्त्व को जिसका अधिकांश आदमियों के लिए उपयोगी था, समाप्त कर देती है और भद्दी व्यवस्था को जन्म देती है। समाज के विघटन की इति मानव के 'विबधन' (decomposition) में होती है, 'समूह का मजदूर' समूहबद्ध किया जाता है और पूर्ण राज्य में, महोदर आन्दोलन में समाहित हो जाता है। जैसा कि जेस्लाव मिलौस्स ने कहा है "जहाँ मस्तिष्क बन्दी हो जाता है, वहाँ आदमी शत्रु बन जाता है।"

विकराल सरलीकरण

मार्क्सवादी समाजवाद का महान् साहसिक कार्य, जहाँ क्रान्तिकारी हर्षातिरेक के रूप में रहा है, वहाँ उसकी परिणति स्वतन्त्रता से विमुख होकर विस्मृति में हुई है। मार्क्स के स्वप्नों ने डरावने स्वप्न का रूप क्यों लिया, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि कतिपय सामाजिक और मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं के प्रति उनमें हठवादी उदासीनता थी।

मार्क्स ने पूँजी के सम्बन्ध में कहा था "हर सचय का अर्थ है, और सचय करना।" उन्होंने जो नहीं अनुभव किया, वह यह कि यह पूँजीवाद का ही विकृत रूप नहीं है, बल्कि सचय की प्रवृत्ति ही ऐसी होती है, उसकी गति का नियम ही ऐसा है। सचय स्वाभाविक रूप से बढ़ रहा है और उसमें तेजी आ रही है, उसके निरोध और नियन्त्रण की आवश्यकता है, उसे आगे बढ़ने से रोकने की जरूरत है। जहाँ स्थिरता का सन्तुलन रखनेवाली शक्तियाँ दृढ़ हैं, वहाँ मार्क्स की तत्परता की कैंची अच्छा काम करती है। जब प्रयास सफल हो जाता है, तब क्रान्ति अपना ही साध्य बन जाती है।

मार्क्स का दर्शन अधिकार का दर्शन है और यह अधिकार व्यक्ति का नहीं, समूह का अधिकार है। प्रकृति और जीवन पर उत्तरोत्तर नियन्त्रण बढ़ानेवाले आधुनिक ढंग में भयानक रूप से अधिकार की भावना भरी हुई है। मार्क्स ने इस प्रवृत्ति को विलक्षणतापूर्वक बढ़ाया,

उन्होंने मानव को 'परमात्मा की नकल का स्वयं देखनेवाला' बना दिया। इतनी ऊँची आकांक्षा के साथ ही मानव का यदि मनस्तत्त्व भी इसी अनुपात में विकसित न हो, तो इससे भयानक स्वार्थ पैदा होता है अधिकार के लिए मार-काट शुरू हो जाती है। यहाँ भी 'नवीन और अधिक नवीन' की प्रवृत्ति रहती है। अधिकार की इच्छा की परिपूर्ति स्वयं करने की इच्छा के रूप में रहती है। आवश्यकता इस बात की है कि पुनरुत्थान से चली आ रही भौतिक वृद्धि की आकांक्षा और उसके साथ ही अधिनायकवादी प्रवृत्ति के प्रति बराबर सतर्कता बरती जाय।

मार्क्स ने जिस सामाजिक सहयोग की बात सोची उसमें जबरदस्ती रूप से और दबाव की ऐसी कार्रवाई थी जिसे समाज किसी खास स्तर पर पहुँचने के बाद करने के लिए बाध्य था। यदि पर्याप्त नियन्त्रण की व्यवस्था न हो तो जिस दल का बोलबाला होगा निश्चय ही वह अधिकार का उपयोग अपने लाभ के लिए करेगा। मार्क्स ने जान-बूझकर अनिवार्य व्यावहारिक नैतिकता और बाह्य सामाजिक नियन्त्रणों की व्यवस्था नहीं की जो दमन तथा अन्याय की प्रवृत्तियों को रोकने के लिए आवश्यक है।

मिल ने अपने विकासवादी समाजवाद में इस प्रकार के विभिन्न नियन्त्रणों की व्यवस्था की थी और स्वतन्त्रता को विशेष रूप से प्रधानता दी थी। अपने सारे सिद्धान्तों में उन्होंने सरकार के अधिकार बढ़ने से होनेवाले खतरों का उल्लेख किया और कहा कि 'निरन्तर ईर्ष्या' के साथ उनके प्रति सतर्क रहना चाहिए। 'और किसी भी प्रकार के समाज की अपेक्षा शायद लोकतन्त्र में सतर्कता अधिक आवश्यक है।' मानव की स्वार्थ-परायणता यदि लोकतन्त्र को सम्भव बनाती है, तो उसमें अन्याय की प्रवृत्ति का रहना लोकतन्त्र को आवश्यक बना देता है।

मार्क्स ने अपने क्रान्तिकारी समाजवाद में सत्ता के अधिकार को कम करने के लिए किसी प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था नहीं की। 'जब तक इच्छा और आकांक्षा पर नियन्त्रण के लिए कोई व्यवस्था न हो तब तक

समाज कायम नहीं रह सकता 'यह व्यवस्था भीतर जितनी ही कम होगी, बाहर उतनी ही अधिक रहेगी'—बर्क के इस नियम में मानव के सामाजिक अनुभव का सारतत्त्व और उनका परिपक्व ज्ञान भरा हुआ है। मार्क्स ने 'नियम' की अवहेलना की और समाज तथा मानव के भीतर नियन्त्रण रखनेवाली शक्तियों का सफाया कर दिया। इस कटाव ने मानव को सर्वसत्तावादी बाढ के सामने रक्षाहीन बना दिया। राजनीति और नीतिशास्त्र को एक विषय के दो पहलू मानने की यूनानी परम्परा का, जब उसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी, परित्याग कर दिया गया।

पूँजीवाद ने समाज के जिस विघटन को सुनिश्चित कर दिया और मार्क्स ने जिस विघटन को स्वीकार किया, उससे मानव मूलहीन और स्वच्छंद हो गया। बेकारी के बाद और भी गम्भीर आध्यात्मिक बेकारी आयी, अनेक लोग अपनी ही भूल-भूलैया में खो गये हैं, उन्हें बिन्दुपथ और दृष्टिपथ, दोनों नहीं मिल रहा है। यहाँ समाजशास्त्र मनोविज्ञान की सीमाओं को पार कर जाता है।

रोजा लक्जमबर्ग (१८७०–१९१९) ने लेनिन के 'अति केन्द्रीयता' (ultra centrism) के विषय मे कहा था कि "रूसी एकान्तिकता (absolutism) द्वारा रौंदा और विचूर्णित कर दिया गया 'अह' उस रूसी क्रान्तिकारी के 'अह' के रूप में फिर से प्रकट होता है, जो उल्टा समझता है और अपने को इतिहास को पूरा करनेवाली शक्ति मानता है।" इस विचार के लिए यद्यपि लक्जमबर्ग की निन्दा की जाती, तथापि उनकी आलोचना मार्क्स पर भी उतनी ही लागू होती है। पूँजीवाद द्वारा कुचला गया 'अह' इसी तरह का छल करता है।

जिस व्यक्ति का 'अह' कुचल दिया गया है, जिसका समाज पोषण नहीं करता, जिसे सहायता नहीं देता, उसके कुछ 'न्यष्टिक विचार' (nuclear ideas) बन जाते है, जो कतिपय सामाजिक प्रवृत्तियों को उभाड़ते और आत्मसात् कर लेते हैं। मार्क्सवाद 'कुचले गये' 'अह' के "न्यष्टिक विचारों' को पसन्द करता है और वैचारिक दबाव डालता है,

गत सम्बन्धों में छिन्न-भिन्न हो जाता है। एंगेल्स का आदमियों के नियन्त्रण का स्वप्न वस्तुओं की व्यवस्था को स्थान दे रहा है।

मार्क्स का विश्वास था कि दो बड़े द्वन्द्वात्मक त्रिक ' पहला व्यक्तिवादी रूप की आदिम स्वतन्त्रता या मानव की समानता, पूँजीवादी अव्यवस्था या असमानता, कम्युनिस्ट स्वतन्त्रता या समानता और दूसरा सामाजिक त्रिक सरल कम्युनिज्म, पूँजीवाद और सामाजीकृत कम्युनिज्म—ठीक एक-दूसरे से लगे हुए क्रम में हैं। एक सौ दस वर्ष के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि यह अनुमान गलत है।

मार्क्स ने मानव के बिलगाव का जो पाण्डित्यपूर्ण विचार रखा, वह इस तथ्य को आवरणमुक्त नहीं कर सका कि समाज की पेचीदगी और उत्तरोत्तर अधिक अज्ञात एव अपारदर्शी सामाजिक प्रक्रिया के कारण मानव के लिए अपने निजी जीवन अनुभव की सीमित स्थिति को वस्तुनिष्ठ सामाजिक गति के साथ एकीकृत करना कठिनतर हो गया है। ऐसी स्थिति में मानव समाज में मनुष्यत्वहीनता की क्षतिपूर्ति वैयक्तिकभाव से करना चाहता है, अपनी सामाजिक अक्षमता की पूर्ति राज्य की काल्पनिक सर्वशक्तिमत्ता, अजेय फूहरर (अधिनायक) की सर्वशक्तिमत्ता से करना चाहता है। जैसा कि हॉब्स ने कहा है . "छोटे-छोटे लोग ही 'महाकाय' का आह्वान करते हैं।"

औद्योगिक जीवन एकरूपता पसन्द करता है, इतना ही नहीं, बल्कि इससे भी अधिक एक साँचे में ढलाई चाहता है। एक साँचे में ढली हुई एकरूपता में सख्यागत शक्ति होती है, क्योंकि लोग विचित्र और विलक्षण स्वभाव के होते हैं और संख्या का वजन बुनियादी एकरूपता और सदाचारहीनता को उत्तेजना प्रदान करता है। हीगेल के बाद सामाजिक प्रणाली से नीतिशास्त्र को जबरदस्ती अलग करना गलत था' उस व्यक्ति के लिए गलत था—जिसकी एक-एक नाडी और एक-एक तन्तु में स्वतन्त्र, पूर्ण विकसित और मुक्तिवादी सर्वोपभोग्य व्यवस्था (Commonwealth) की उत्कट इच्छा थी।

राज्य एक विशाल कारखाना बन जायगा। बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों के आदमियों के ये झुण्ड अनिश्चित काल के लिए अपरितोष एव अभाव की स्थिति में नहीं छोडे जा सकते। अति प्रसन्न बीसवीं शताब्दी में अधिकारवाद अपना सिर फिर उठायेगा और उसका यह सिर बड़ा भयावना होगा। सारे यूरोप पर छा जानेवाले विकराल सरलीकरण करने-वालों का जो चित्र मैं देखता हूँ, वह सुखकारक नहीं है। यह आदेश देने-वाली और विरोधियों का मुँह बन्द करनेवाली नग्न शक्ति होगी। फिर से चुने जाने के लिए राष्ट्रीय नेताओं को समूह के फसादी लोगों को अपने साथ रखना पड़ेगा। समूह के ऐसे वर्ग चाहते है कि बराबर कुछ-न-कुछ होता रहे, अन्यथा उन्हे विश्वास न होगा कि प्रगति हो रही है। ... एक के बाद एक सामाजिक व्यवस्था, सम्पत्ति, धर्म, आचरण के विशिष्ट नियमों और उच्च ज्ञान का बलिदान करना पड़ेगा। लोग सिद्धात में आस्था न रखेंगे, किन्तु सम्भवत समय-समय पर त्राण देनेवालों में विश्वास करेंगे। बहुत समय तक के लिए अधिनायक की दासता का युग आनेवाला है।"

एक-एक चीज समाप्त कर देने की लम्बी प्रक्रिया द्वारा और द्वन्द्वा-त्मक दर्शन में डूबकर सर्वहारा की इति बहुत कुछ विकराल सरलीकरण के रूप में होती है। स्वतन्त्रतारूपी तीर्थ की यात्रा उसके सिद्धान्तरूपी कारागृह में समाप्त होती है।

● ● ●

'बरोक' से 'रोकोको' की ओर बढने की आवश्यकता है। यहाँ भी दूसरे प्रसग में कहे गये राजा विक्टर इमैनुअल द्वितीय के शब्दों में . "अब कविता के बाद गद्य आना चाहिए।"

ब्रिटेन और जर्मनी रोकोको समाजवाद की आदिभूमि हैं।

पश्चिम में प्रगति

ब्रिटेन में मैगनाकार्टा (१२१५ ईसवी का अंग्रेजों की स्वतन्त्रता का महाधिकार पत्र) की परम्परा बहुत गहराई तक गयी हुई है। किसी भी उथल-पुथल की समाप्ति, चाहे वह उथल-पुथल क्षणिक हो, चाहे तत्त्वयुक्त, राजनीतिक अधिकारों की माँग के रूप में होती है। औद्योगिक क्रान्ति के प्रति जनप्रतिक्रिया ने प्राचीन परम्परा को नहीं तोडा। १८११-१२ और फिर १८१६-१७ के लुडवादी (Luddite)* उपद्रवों को मेजर कार्टराइट और कोबेट ने राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन की धारा के रूप में बदल दिया। १८३० में मशीनों को तोडने और आग लगाये जाने की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। निष्ठुरतापूर्वक दमन के बावजूद विलियम कोबेट (१७६३-१८३५) जैसे नेता ने असन्तोष को उग्र आन्दोलन के बजाय ससदीय सुधार का रूप दे दिया।

१९ वी शताब्दी के चतुर्थ दशक के प्रारम्भ में मजदूरों में पुन असन्तोप हुआ। बरमिंघम में डेढ लाख व्यक्तियों की एक विशाल रैली ने करबन्दी की धमकी दी। नार्टिघम दुर्ग जला दिया गया, ब्रिस्टल कई दिनों तक विद्रोहियों के अधिकार में रहा और उन विद्रोहियों ने जेल, मैन्सन हाउस और बिशप्स पैलेस को जला दिया। चार्टिस्ट आन्दोलन ने असन्तोष को राजनीतिक सुधार की दिशा में मोडा। छह सूत्रीय घोषणापत्र का स्वागत करने के लिए मैंचेस्टर में ३ लाख व्यक्ति एकत्र हुए। १८३९ में चार्टिस्ट सम्मेलन ने ससद को एक प्रार्थना-पत्र दिया, जिस पर साढे

---

* मध्य इंग्लैण्ड में मशीनों की तोडफोड करनेवाले उपद्रवियों को दिया गया नाम।

१२ लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे। लोकसभा ने इसे ४९ के विरुद्ध २१५ मतों से अस्वीकार कर दिया।

यूरोप के दूसरे तमाम कर्मचारियों की तरह मजदूरों के नये उत्साह ने चार्टिस्ट आन्दोलन को एक नया बल दिया। ६ लाख व्यक्तियों ने दस्तखत के साथ संसद को दूसरा प्रार्थना-पत्र दिया और वह भी अस्वीकार कर दिया गया। १८४८ में यूरोप में जो विप्लव हुआ उसकी छाया एक दूसरे प्रार्थनापत्र में दिखाई पड़ती है, जिस पर ६ लाख नागरिकों के हस्ताक्षर थे। अन्ततः प्रार्थनापत्र के ६ सूत्रों में ५ सूत्र स्वीकार कर लिये गये और उन्हें कानून का रूप दे दिया गया। राजनीतिक आन्दोलन की एक नयी विधि की खोज की जा चुकी थी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मार्क्स ने जब पेरिस कम्यून की प्रशंसा की, तो "इण्टरनेशनल" के एक को छोड़कर शेष सभी ब्रिटिश नेताओं ने त्यागपत्र दे दिये। जैसा कि प्रोफेसर कोल ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश सोशलिज्म' में कहा है : "१९ वीं शताब्दी के छठे दशक में चार्टिज्म की गूँज समाप्त हो जाने के बाद से हम क्रांति का विचार छोड़कर शान्त व्यक्ति रहे हैं। 'क्रान्तिकारी व्यक्तियों' के लिए 'पेकोलो' उपयुक्त होती है।

ब्रिटिश मजदूरों द्वारा किये गये सुधारों और उनके द्वारा प्राप्त की गयी सुविधाओं का क्षेत्र और परिमाण व्यापक हो गये। उनसे केवल राजनीतिक अधिकार ही नहीं मिले, अपितु आर्थिक सुधार भी हुए। केवल इंग्लैण्ड में ही नहीं, बल्कि सामान्यतः अन्यान्य देशों में भी ट्रेड-यूनियन की कठोरता और तत्सम्बन्धी वैधानिक कानूनों से अलग रही थी। काम के घण्टे जो १८४ में इंग्लैण्ड में सप्ताह में ६९, अमेरिका और फ्रान्स में ७८ तथा जर्मनी में ८१ थे, १८८ तक इंग्लैण्ड में ५२ और अन्यत्र ६ हो गये। इसी तरह से कम वेतन धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पौंड का उपभोग प्रति व्यक्ति वर्ष में १८ पौण्ड (१८४) से ३८४ पौण्ड १८८ हो गया। सम्पत्ति के पवित्र अधिकार, जो १८७५ तक भूस्वामी

और मकान मालिक को मोरी सीवर में मिलाने के लिए बाध्य करने में बाधक थे, अब पवित्र नहीं रह गये और यह वैसे अधिकार की बात नहीं रह गयी। सुधार धीरे-धीरे किन्तु महत्त्वपूर्ण रूप में पूँजीवाद का चित्र बदल रहे थे।

जर्मनी में राजनीतिक लोकतंत्र का अभाव बहुत कुछ गहरी सामाजिक चेतना द्वारा पूरा किया गया, जिसने कारखाना कानून, सार्वजनिक शिक्षा, सामाजिक बीमा जैसे सामाजिक सुधारों की दृष्टि से देश को अग्रणी बनाया। मजदूरों में सामाजिक चेतना थी, ट्रेड यूनियनें 'सबसे ज्यादा लड़ाकू और शक्तिशाली सुधारक के रूप में' विकसित हुई और इस प्रकार उन्हें संशोधनवाद को दृढ़ता प्रदान करने की प्रवृत्ति पसन्द आयी। दूसरी ओर जहाँ बड़े शहरी समुदाय थोड़े थे, वहाँ यह समझा गया कि सामाजिक लोकतत्र कृषक समाज और कृषक दस्तकार वर्ग में पैठ पाने पर निर्भर करता है। यही क्षेत्र था, जिसमें पहली बार सुधारवाद शक्तिशाली दिखाई पड़ा।

यान्त्रिक नवीनताओं और विकास की गति लेकर उपस्थित दूसरी औद्योगिक क्रान्ति और दक्षता का आधार लेकर वित्तीय पूँजी (Finance Kapital) के आविर्भाव का संशोधनवाद के बुनियादी आस्थासूत्रों, 'रोकोको' प्रवृत्ति से मेल हो गया। तीन उदाहरण प्रकट करते हैं कि प्रवाह की प्रक्रिया कैसी थी। ज्वाइण्ट स्टाक बैंक के रूप में मिडलैण्ड बैंक की स्थापना १८३६ में हुई। प्रारम्भ के ५३ वर्षों में इसने १७ शाखाएँ खोलीं और १० शाखाएँ विलयन के फलस्वरूप बढ़ीं। जमा की गयी रकम जो एक लाख पौण्ड से कम थी, २० लाख पौण्ड से अधिक हो गयी। अगले ३० वर्षों मे शाखाओं की संख्या बढ़कर १४४४ हो गयी, जिनमें से ९१३ शाखाओं की वृद्धि विलयन के फलस्वरूप हुई। १९३० में जमा किया गया धन बढ़कर ४० करोड़ पौण्ड हो गया। जर्मनी में १९११ में बर्लिन के ६ प्रमुख बैंकों के ८२५ डाइरेक्टर औद्योगिक कम्पनियों के बोर्डों में थे। इनमें से २० प्रतिशत बोर्डों के अध्यक्ष और १५

तैल क्षेत्र ब्रिटेन को सौंप दिया। यह सत्य है कि समय का प्रवाह प्रवृत्ति के विरुद्ध था। साम्राज्य-विस्तार के दशकों में ब्रिटेन की बस्तियाँ ४५ लाख वर्गमील (जनसंख्या ६६ लाख), फ्रांस की ३५ लाख वर्गमील (जनसंख्या २ करोड ६० लाख) और जर्मनी की बस्तियाँ १० लाख वर्गमील (जनसंख्या १ करोड ३० लाख) तक में फैल गयीं। किन्तु गहराई में धारा का रूप भिन्न था, जैसा कि विदेशों में धन लगाने के तरीकों और उद्देश्यों से (जो साम्राज्यवाद की वास्तविक गति है) प्रकट है।

सन् १८७५ और १९१४ के बीच विदेशों में ब्रिटिश पूँजी का विनियोग एक सौ गुना बढ़ गया। महायुद्ध के पूर्व विदेशों में लगाया जानेवाला धन राष्ट्रीय बचत का प्राय आधा होता था। विदेशों में लगाया गया कुल धन लगभग ४ अरब पौण्ड या राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक चौथाई था। प्रतिवर्ष राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत धन विदेशों में लगाया जाता था और संचित धन विनियोग से राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत प्राप्त होता है। धन-विनियोग साम्राज्य के देशों और साम्राज्य के बाहर के देशों में प्राय बराबर-बराबर ही लगा हुआ था। ब्रिटेन अपने अनुभव से यह समझ रहा था १ साम्राज्य के बाहर के क्षेत्रों में धन लगाना भी उतना ही लाभप्रद है। उदाहरण के लिए अमेरिका को लीजिये, वहाँ लगभग एक खरब पौण्ड का धन-विनियोग हुआ था। २ छोटे-मोटे धन विनियोग उतने ही लाभदायक थे, जितने प्रत्यक्ष एव जोखिमभरे धन विनियोग। उदाहरण के लिए अमेरिका में इस तरह के परिवर्तन बहुत लाभदायक ढंग से किये गये। ३ पूँजी का बाहर बहुत अधिक भेजा जाना स्वदेश के उद्योगों को कमजोर कर और भूखों मार रहा था।

विदेशों में फ्रांस का धन-विनियोग दो अरब पौण्ड से कम अर्थात् राष्ट्रीय आय के छठे भाग के बराबर हुआ। फ्रान्स का धन-विनियोग साम्यत (Equity financing) की अपेक्षा ऋण के रूप में अधिक हुआ था। निधि विशेष से निश्चित आमदनी करने की भावना राष्ट्र

आकर्षक शक्ति का कम मूल्यांकन किया है, तथापि समाजवादियों ने सब कुछ होते हुए भी समस्या की अवहेलना की।

मार्क्सवादी विचार का भवन यद्यपि ब्रिटिश अनुभवरूपी पत्थर की खान की सामग्री से बनाया गया था, तथापि ब्रिटिश समाजवाद पर मार्क्सवाद का प्रभाव बहुत ही कम था। उसका विकास राष्ट्र की अतीतरूपी धारा से सिंचन के द्वारा किया गया। इसमें अविच्छिन्नता की भावना की राष्ट्रीय विशेषता और सामंजस्य-स्थापना की आकांक्षा है।

इंग्लैण्ड का समाजवाद

ब्रिटिश समाजवाद अव्यावहारिक सिद्धान्तों (Abstract Principles) या व्यापक सूत्र (Universal Formulation) की कोई खास चिन्ता नहीं करता। यह समाजवाद को ब्रिटिश जनता की विशिष्ट परम्पराओं का समसामयिक प्रदर्शन मानता है। एडमण्ड बर्क ने कहा "पूर्वजों से प्राप्त और भावी पीढियों को प्राप्त होनेवाले नियमित उत्तराधिकार (Entailed inheritance) के रूप में, इस राज्य की जनता की सम्पत्ति के रूप में, हमारी स्वतंत्रता का, अन्य किसी भी व्यापक एवं प्राथमिक अधिकार के किसी प्रकार के सन्दर्भ के बिना, दावा और घोषणा करना संविधान की अभिन्न नीति रही है। यह नियमित उत्तराधिकार ब्रिटिश समाजवाद की विशेषता है।

जैसा कि ऐडम बी० उलाम ने अपनी पुस्तक 'फिलॉसाफिकल फाउंडेशन्स आफ ईंगलिश सोशलिज्म' (इंग्लैण्ड के समाजवाद के दार्शनिक आधार) में स्पष्ट किया है, इंग्लैण्ड में समाजवाद की जड़ें परिवर्तनवाद और सुधारवाद में बहुत गहराई तक जा चुकी हैं। मिल और बेन्थम की कृतियों के अध्ययन से उसका मार्ग काफी स्पष्ट हो चुका है। सिडनी वेब ने एक बार कहा भी था कि "समाजवादी इस पीढी के बेन्थमवादी हैं।"

न्यूमैन ने अपनी पुस्तक 'डेवलपमेण्ट ऑफ इकानामिक थॉट' (आर्थिक विचार का विकास) में लिखा है "मिल ने वितरण का जो

बुर्जुआ उदारवाद का चरम किन्तु अवश्यम्भावी परिणाम है और इसीलिए,वह निर्णायक रूप से प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उदारवादियों के विरोध की नहीं, बल्कि उन्हें आगे बढाने, उदारवाद को समाजवाद के साथ समाहित करने की नीति अपनाता है। जैसे ही वर्ग-सघर्ष को दबाने का अपना खास दॉव-घात उन्होंने अपनाया, सब कुछ बेकार हो जाता है।" इग्लैण्ड में कभी भी राज्य की कल्पना वर्ग प्रधान राज्य (Klassesntaat) के रूप में नहीं की गयी। ब्रिटिश समाजवादियों को राज्य के निष्पक्ष रूप मे और तत्त्व ग्रहण करने की नीति के महत्त्व में कभी सन्देह नहीं था। अंग्रेजों में सामजस्य की जो भावना निहित है, वह उस प्रकार के दुराग्रह को असम्भव कर देती है। जैसा कि काम्पटन मैकेंजी ने कहा है "अंग्रेज ऐसे व्यक्ति से सन्देह करते हैं, जो सामजस्य स्थापित करने की बात नहीं सोचता, भले ही यह सामजस्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा से हो या अपने निकट और साथ के नश्वर प्राणियों से।"

ब्रिटिश समाजवाद कितना रूढिहीन और कट्टरता-रहित है, यह प्रोफेसर कोल की आत्मकथा के निम्नलिखित अश से स्पष्ट है "सबके लिए समान अवसर और सबके लिए रहन सहन के बुनियादी स्तर के आश्वासन ने मुझे समाजवाद की ओर खींचा। मेरा खयाल है कि मैंने बाद में चलकर इसमें तीसरा विचार जोडा, जो हमेशा मेरी प्रवृत्ति में निहित था, किन्तु पहले अच्छी तरह स्पष्ट नहीं था। यह तीसरा विचार था, लोकतन्त्रवाद, जो मेरे मस्तिष्क में स्वतन्त्रता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुडा हुआ था। इसीलिए मैं उन्हें स्वभावत दो नहीं, एक विचार समझता हूँ। लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता का यह विश्वास मेरे मस्तिष्क में क्रमश विकसित हुआ। मेरे लिए इसका यह अर्थ रहा कि समाज की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि मतभेद बर्दाश्त ही न किया जाय, अपितु उसे प्रश्रय भी दिया जाय। मानव समाज बनाने के लिए अनेक तरह के स्त्री-पुरुष चाहिए। कुछ बहुत व्यापक सीमाओं में जितने ही अधिक लोगों का, रुचि और स्वभाव ही नहीं, बल्कि मत की दृष्टि से भी मतभेद हो, उतना ही अच्छा है, क्योंकि

उन्हें अपने राष्ट्र के अतीत से प्रेम था और वे उससे शिक्षा लेते थे। फ्रान्सीसी क्रान्ति के प्रति उनकी सर्वाधिक अनुरक्ति थी। वे क्रान्ति को अकस्मात् विस्फोट नहीं, अपितु शान्तिपूर्वक विकसित किया गया चरम रूप मानते थे। क्रान्ति ने अधिकार के सम्बन्ध में जो नया विचार दिया, उसे समाजवाद स्वीकार करता और अपना बना लेता है। वह 'लोकतन्त्र और महान् क्रान्ति का दल' बन जाता है। समाजवाद यद्यपि फ्रान्सीसी क्रान्ति से अपनी अनन्यता मानता है, तथापि वह उस क्रान्ति से बँधा हुआ नहीं है। 'बुर्जुआ और लोकतन्त्रवादी पार्टियाँ अपने को ज्वालामुखी के नीचे से ठण्डे लावा के कुछ अंश उठाने और अग्निकुण्ड के किनारे से जले हुए अंगारे को लाने तक ही सीमित रखती हैं। दहकती हुई धातु को नये रूप में प्रवाहित होना चाहिए।'

जौरेस का खयाल था कि क्रान्ति का बराबर विस्तार हो रहा है और उसकी जड़ें गहरी हैं, जब कि १८१५ में अस्सी हजार मतदाता थे, १८३० में बढ़कर उनकी संख्या दो लाख हो गयी। शताब्दी के अन्त तक फ्रान्स पुरुषों के मताधिकार पर आधृत लोकतान्त्रिक गणराज्य बन चुका था। स्वतन्त्रता के इस उत्थान को अन्ततः अव्यवस्था उत्पन्न करना नहीं, समाजवाद के रूप में पुष्पित होना था। उनके विचार एकता और अविच्छिन्नता की भावना से बराबर देदीप्यमान थे। 'इस प्रकार समाजवाद का उदय फ्रान्सीसी क्रान्ति से दो शक्तियों की संयुक्त कार्रवाई के अन्तर्गत हुआ—एक शक्ति थी अधिकार का विचार और दूसरी शक्ति थी सर्वहारा का नवजात क्रियाकलाप।' पूँजीवाद का उन्मूलन केवल अवश्यम्भावी ही नहीं था, बल्कि उचित भी था।

फ्रान्स का समाजवादी आन्दोलन बुरी तरह विभाजित था। एक छोर पर पाल ब्रूसे (१८५४-१९१२) के अनुयायी थे, जिन्हें गर्व था कि हम व्यावहारिक 'सम्भाव्यतावादी' (Possibilistas) हैं 'हम अपने कार्यक्रम को तब तक खण्डित करते हैं, जब तक उसे अन्ततः सम्भव न बना दें।' फेबियन नीति 'एक-एक कदम आगे, एक एक टुकड़े

कूदे। ड्रेफस जातिवादी विद्वेष, सेना के भ्रष्टाचार और चालबाजियों के शिकार हुए। उनके बचाव के लिए आगे आकर जौरेस ने यह समझा कि हम भारी खतरों से गणतत्र के लोकतान्त्रिक आधार की रक्षा कर रहे हैं। जोला की ही तरह जौरेस के लिए भी ड्रेफस 'मगरमच्छ' से सघर्ष करनेवाले पराजित व्यक्ति के प्रतीक थे। जौरेस ने कहा: "हम समाजवादी रहने के लिए बाध्य नहीं हैं कि अपने को मानवता के बाहर रखें।"

जौरेस की अन्तर्राष्ट्रीयता में राष्ट्र पर भी जोर था। मार्क्स का सूत्र 'मजदूर की कोई पितृभूमि नहीं है' जौरेस के विचार से अपनाने लायक चीज नहीं थी, बल्कि वे इससे ऊपर उठने की जरूरत मानते थे। उनका खयाल था कि एकमात्र राष्ट्र वह "व्यापक सघ है जो बिना किसी अपवाद के सभी व्यक्तियों के अधिकारों की—जीवित व्यक्तियों के ही नहीं, बल्कि आगे पैदा होनेवाले व्यक्तियों के अधिकारों की भी—रक्षा कर सकता है।" उन्होंने जर्मनी और इटली के नये राष्ट्र राज्यों के आविर्भाव का स्वागत किया और कहा "भविष्य में दीर्घकाल तक इस अवस्था में राष्ट्र समाजवाद की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा के लिए स्थिति तैयार करेगा, यह वह ढाँचा होगा, जिसमें न्याय ढाला जायगा।"

समाजवाद के वाहक के रूप में सर्वहारा को समाज के दूसरे वर्गों, खासकर खेतिहरों को समाजवाद के आदर्श से अनुप्राणित करना चाहिए। फ्लोकोन द्वारा एंगेल्स को दी गयी यह चेतावनी जौरेस ने विस्मृत नहीं की कि 'फ्रास के एक करोड दस लाख किसान सम्पत्ति के स्वामी हैं।' उनका खयाल था कि भूमि के साथ किसान के असामान्य घनिष्ठ सम्बन्ध को समाजवाद के नाम पर समाप्त करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। वे चाहते थे कि समाजवाद अपना गतिक्रम और रूप आवश्यकता के अनुसार ऐसा नियंत्रणायुक्त रखे कि उससे किसानों की भी निष्ठा प्राप्त हो सके। "मैं इसे बहुत अदूरदर्शी बात मानता हूँ कि यदि खेतिहरों को तटस्थ बना दिया जाय, तो यह बहुत काफी होगा। जब बहुत बडा आन्दोलन चल रहा हो,

तब कोई भी सामाजिक शक्ति अपने को तटस्थ नहीं रख सकती। यदि वे हमारे साथ नहीं हैं तो हमारे विरुद्ध होंगी।"

चूँकि पूँजीवाद से सभी वर्गों के लिए खतरा है इसलिए जौरेस समाजवादी आन्दोलन के लिए सभी परिवर्तनवादियों और प्रजातन्त्रवादियों की प्रभावशाली एकता चाहते थे। जहाँ लोकतन्त्र की उपलब्धियाँ खतरे में हों, वहाँ ऐसी एकता विशेष रूप से आवश्यक है। समाजवाद की ओर कदम के लिए वे समाजवादियों प्रजातन्त्रवादियों की सरकारी स्तर पर एकता चाहते थे। जौरेसवाद का यही 'ब्लॉक' था।

सन् १८९९ में जौरेस ने अन्य अनेक लोगों की तरह अनुभव किया कि गणतन्त्र के लिए खतरा है। लोकतान्त्रिक शक्तियों को मजबूत करने के लिए उन्होंने वाल्डेक-रूसो मंत्रिमण्डल में मिलरां (millerand) को शामिल करना स्वीकार किया। यह पहला अवसर था जब एक बुर्जुआ सरकार में समाजवादी शामिल किया गया। यहीं मिलरां का ही मामला था जिसने अनेक देशों में समाजवादी आन्दोलनों को धक्का पहुँचाया और कँपा दिया।

जौरेस ने समाजवाद में इस परिवर्तन को कैसे उचित ठहराया ?

पूँजीवाद के खतरों को किसी प्रकार कम नहीं आँका गया था। सर्वहारा के जीवनशक्ति मार्ग को पूँजीवाद के बन्धन अवरुद्ध कर देते हैं। बन्धन स्वयं जीवन विधि पर था क्योंकि वह 'सर्वहारा के अस्तित्व का पृथक्करण करता है। सर्वहारा केवल साधन रह जाता है और श्रम के उद्देश्य तथा विधि पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रहता। 'सर्वहारा के अस्तित्व का उसके आकार को ही क्या ह्रास हुआ।' जौरेस हेस के मार्क्सवादी विचार से सहमत थे, लेकिन इससे आगे उनकी सहमति नहीं थी। मार्क्स का रोग सम्बन्धी पूर्वज्ञान बेकार था क्योंकि 'उसका आरम्भ या तो पुरानी या नयी ऐतिहासिक शक्तियों से होता है या स्वतः आर्थिक शक्तियों से।'

मार्क्स ने अपने [illegible] घोषणापत्र में तर्क दिया था कि [illegible] के

विरुद्ध हिंसात्मक क्रान्ति से ही सर्वहारा शक्ति छीनेगा और कम्युनिज्म को चरितार्थ करेगा। किन्तु क्रान्ति अब भी बुर्जुआ-वर्ग की ही क्रान्ति रह जाती है, क्योंकि सर्वहारा क्रान्ति का सूत्रपात करने के लिए बहुत कमजोर है। सफल बुर्जुआ क्रान्ति का परिष्कार करके सर्वहारा क्रान्ति रूपी वृक्ष को तैयार करना होता है। जौरेस का कहना था कि इस प्रकार के चक्करों से सर्वहारा के सामाजिक अधिकार नहीं बढ सकते। मिजेल (Miguel) द्वारा मार्क्स को लिखे गये शब्दों को उन्होंने चेतावनी के साथ उद्धृत किया "हम क्रान्ति को बुर्जुआ-विरोधी दिशा में ले जा सकते हैं, हम बुर्जुआवादी उत्पादन के खास तरीकों को समाप्त कर सकते हैं, लेकिन हम शायद छोटे-छोटे व्यवसायियों और दूकानदारों का महत्त्व नहीं घटा सकते। मेरा आदर्श है कि जो भी आप प्राप्त कर सकते हैं, उसे प्राप्त करें। हमें प्रथम विजय के बाद जितने भी अधिक समय तक सम्भव हो सके, निम्नवर्ग और मध्यमवर्ग को कोई सगठन बनाने और खासकर हर वैधानिक सदन में बगल में बैठकर हमारा ही विरोध करने से रोकना चाहिए। आशिक आतकवाद और स्थानिक अराजकता को अधिकाश लोगों के समर्थन के अभाव का स्थान ले लेना चाहिए।"*

इस प्रकार अधिकाश के समर्थन के अभाव की पूर्ति करने का मतलब जीवन को अव्यवस्थित करना और समाज का ढॉचा बर्बाद करना है। जौरेस ने ऐसे विचार का 'पराश्रयी क्रान्ति' कहकर तिरस्कार किया।

ऐसी क्रान्ति की उपलब्धि क्या होती है? "जौरेस ने मार्क्स के नीति घोषणापत्र का विश्लेषण किया और सिद्ध किया कि वह १८ वीं शताब्दी के खेतिहर साम्यवाद और आज के मिलरा के कार्यक्रम के कुछ तत्त्वों का विचित्र मिश्रण है।"† उन्हें घोषणापत्र के 'कार्यक्रम सम्बन्धी गडबड-

---

* मिजेल की रूप रेखा आगे चलकर लेनिन के दॉवघातों की अच्छी भविष्यवाणी थी।

† सन् १८९४ में मिलरां द्वारा सयुक्त समाजवादी पार्टी के लिए निरूपित कार्यक्रम।

व इसे जनता की ओर ध्यान देना है और जब भी अवसर आये, अपने व्यावहारिक सुझावों और सामान्य हित के कानून निर्माण द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण देना है कि हमारा एकमात्र लक्ष्य जन-कल्याण है और जनता की इच्छा ही हमारा शासन है। हम व्यक्ति के प्रति राज्य के कर्तव्य के सम्बन्ध में विरोधियों के विचार से ऊँचे विचार रखते हैं और अपने विरोधियों, विशेष सुविधा प्राप्त तथा एकाधिकार रखनेवाले वर्गों से व्यवहार में भी हम इसका स्तर नीचे न आने देंगे।"

जौरेस ने 'वैधानिक न्याय की स्थिति लाने के यह शान्तिपूर्ण तथा सामजस्ययुक्त' विचार स्वय लीब्कनेख्त के लेखों से लिये हैं। इनमें से कुछ १८८१ के निराशापूर्ण दिनों में लिखे गये थे और लीब्कनेख्त की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए थे। जौरेस ने विशेष रूप से इन्हें समझा। इन लेखों में लीब्कनेख्त ने इस सम्भावना को अनुभव किया था कि सैनिक धक्के या राजनीतिक उदारता के फलस्वरूप 'शासन करने या कम-से-कम सरकार में शामिल होने के लिए समाजवादियो का आह्वान किया जायगा।'

ऐसी सम्भावनाएँ उस सामाजिक अनुकूलन का अविच्छिन्न अग थीं जो धीरे-धीरे आगे बढ रहा था। ऐसे लोग 'प्राय एकदम नगण्य' थे, जो अज्ञान नहीं, बल्कि अपने हित के कारण समाजवाद के शत्रु थे। भारी बहुमत सामाजिक प्रवृत्तियों के दबाव के कारण सामाजिक परिवर्तन की दिशा में बढ रहा था। यह समाजवादियों का काम था कि वे प्रक्रिया को सजग प्रयास में परिवर्तित कर दें, अज्ञानतापूर्ण विरोध भावना को सहानुभूतिपूर्ण अवबोध में बदल दें। प्रभावशाली शब्दों में जौरेस ने स्थिति का साराश प्रस्तुत किया "दूसरे शब्दों में, चूँकि घटनाओं के फलस्वरूप और समाजवादी पार्टी के बढते हुए सगठन से सर्वहारा ने अन्तत उन वर्गों को भी अपने साथ कर लिया है, जो स्वभावत समाजवाद की ओर ले जानेवाले सामाजिक कानूनों के विचार के विरुद्ध होते और चूँकि राष्ट्र का बहुत बडा बहुमत समाजवाद की ओर चल पडा है और यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सगठन की पहली सीढी तक पहुँच चुका है, हम

कल्पना करती है और यह उत्कर्ष तभी सम्भव है, जब लोगों में आपसी विश्वास और अनुराग के द्वारा व्यापक एकता की चेतना हो। ससदीय कार्य अच्छी तरह निश्चित सुधारों के लिए हों, हड़ताल निश्चित और व्यापकरूप से स्वीकृत उद्देश्यों के लिए की जायँ। किन्तु इन सबसे भी अधिक जरूरी यह है कि समाजवादी क्रान्ति को उत्पादन की नयी स्थिति और नया सम्बन्ध कायम करने की शक्ति देने के लिए रचनात्मक भावना से कार्य किये जायँ। 'सन् १७८९ में सम्पत्ति के क्षेत्र में क्रान्ति को केवल निषेधात्मक कार्य करना था। उसने उन्मूलन किया, रचना नहीं की।' समाजवाद के पृष्ठों में रचना है, निर्माण है, अनियमित पृष्ठों में ही विध्वस की बात कही गयी है। जिस समाजवाद को जोरेस ने हृदय से लगाया, वह जीवन की पुस्तक और रचना का गीत था।

जौरेस यह नहीं मानते थे कि व्यक्तिवादी चेतना में सत्य और न्याय के लिए उद्वेग भरने का प्रयास ही काफी है, श्रमजीवी वर्ग के उपयोग के लिए 'शासन करने और कानून बनाने का यत्र' ढालने की भी आवश्यकता है।

'हिस्तीयरे सोशलिस्ते' (समाजवाद का इतिहास) में जौरेस ने लिखा "इतिहास की हमारी व्याख्या मार्क्स की व्याख्या की तरह भौतिकवादी और मिशेल (Michelet) की व्याख्या की तरह आदर्शवादी होगी। निश्चय ही आर्थिक जीवन मानव इतिहास का मूल और स्रोत है, किन्तु सामाजिक रचना की सारी परम्परा में मानव विचारशील प्राणी के रूप में पूर्ण आदर्शजीवन और एकता के लिए भूखी अपनी अशान्त आत्मा तथा रहस्यपूर्ण ससार के बीच घनिष्ठ तादात्म्य भी चाहता है। ऐसा कोई मानव प्राणी नहीं है, जो बिल्कुल मानव न रह जाय और एक वर्ग का सदस्य बन जाय। इससे भी बड़ी बात यह है कि स्वय वर्ग भी केवल वर्ग-चेतना से उत्तेजित नहीं होते। जिस प्रकार भिन्न भिन्न तापमानों में एक ही रासायनिक तत्त्व बिलकुल भिन्न-भिन्न समूह (Combination) बनाते हैं, उसी प्रकार नैतिक तापमान, मान-

बाद वह मास्को इण्टरनेशनल के प्रभाव में आया। सन् १९२० में दो-तिहाई बहुमत से फ्रान्सीसी समाजवाद 'कम्युनिस्ट' बन गया। जौरेस का 'ह्यूमैनिते' 'ल ह्यूमैनिते' बनकर कम्युनिज्म का प्रवक्ता हो गया। अब जौरेस की बातें भर रह गयी हैं। उनकी शिक्षाएँ उपेक्षित है, उन शिक्षाओं की निन्दा की जाती है, उनकी स्मृति और उनके नाम के जादू का ऐसे उद्देश्यों के लिए उपयोग होता है, जिन्हें वे कभी न स्वीकार करते।

बर्नस्टाइन और जर्मन समाजवाद

एडवर्ड बर्नस्टाइन (१८५०-१९३२) को इतिहास में संशोधनवाद का जनक माना जाता है। वे चाहते थे कि समाजवाद वैज्ञानिक न होकर गुण-दोष का मूल्यांकन करनेवाला हो, क्रान्तिवादी न होकर विकासवादी हो। इन दूरगामी परिवर्तनों को वे मार्क्सवादी विचार के ढाँचे के अन्तर्गत करना चाहते थे।

जर्मन सोशल डेमोक्रेसी में भी बर्नस्टाइन पहले संशोधनवादी नहीं थे। जार्ज वॉन वोलमर (१८५०-१९२२) इस काम में उनसे प्राय एक दशक आगे थे। उनकी बवेरियायी पृष्ठभूमि अर्थात् प्रशिया-विरोधी क्षेत्रीय भावना, कृषि-प्रधान व्यवस्था में विश्वास तथा कैथोलिक धर्म ने उन्हे मार्क्स का स्वाभाविक आलोचक बना दिया। लेकिन चूँकि यह आलोचना उपदेश-प्रधान और क्षेत्रीयता की भावना से युक्त होती थी, इसलिए इसका बौद्धिक प्रभाव नहीं था और न इसमें बर्नस्टाइन की तरह दार्शनिक गहराई ही थी।

बर्नस्टाइन संशोधनवादरूपी वर्षा ऋतु के अकेले बया पक्षी नहीं थे। पार्टी में विचार की धारा पहले से ही इस दिशा में प्रवाहित हो चली थी। बेबेल ने एडलर को लिखा था "हमारे पास अनेक बर्नस्टाइन है और उनमें से अधिकांश पार्टी में उच्च पदों पर है।" संशोधनवाद के व्याख्याकार के रूप में बर्नस्टाइन अपने जैसे लोगों में केवल प्रधान थे।

संशोधनवाद को शक्ति इस बात से मिली कि जो घटनाएँ घटीं उनका मार्क्स की भविष्यवाणियों से मेल नहीं था और उन घटनाओं तथा

और सम्मान भी है जो समाज मानवीय तत्वों से बहुत ही भिन्न ऐतिहासिक रूपों का निर्माण करता है।"

जौरेस निश्चित रूप से मार्क्सवाद से दूर हट गये थे। मार्क्स द्वारा उपलब्ध की गयी सब आलोचनाओं तथा समाजवादी विचार की उपयोगी एकता के लिए वे अवश्य मार्क्स के ऋणी थे। जौरेस के समाजवाद की जड़ें फ्रान्स की ऐतिहासिक परम्पराओं में थीं। उनके विचार अपने देश की भावनाओं से ओतप्रोत थे। समाजवाद को वे प्राचीन आदर्श की परिपक्वता मानते थे, जिसके बीच पूर्ण और पक्ष का सम्बन्ध है। उन्होंने युद्ध को ही हिंसा से घृणा नहीं की बल्कि किसी भी हिंसा से घृणा की, क्योंकि वह मानव में मानवीयता को बर्बाद कर देती है। समाजवाद का सम्बन्ध एवं समान व्यक्तियों का समाज भावना की ओर व्यक्ति आत्मनिर्भरता तथा समाज के साथ उसकी सुसम्बद्धता से ही आ सकता है। द्वेष के स्थान पर उन्होंने विवेक और सहानुभूति की भावना बढ़ाने की कोशिश की। यह रचनात्मक विचार, केवल पीड़ित वर्गों की आवाज नहीं बल्कि धर्मभीरु जन की आवाज के रूप में समाजवाद की यह कल्पना कभी भी फ्रान्स के समाजवाद का अविच्छिन्न अंग नहीं बनी। जौरेस ने सर्वहारा के विकास-क्रम के अनुसार नीति निर्धारित करते रहने की जिस आवश्यकता पर जोर दिया उसकी आलोचना यह कहकर की गयी कि यह तो मजदूर की वर्ग भावना को कमजोर करनेवाली है। उनके विचार की आलोचना करनेवाले 'क्रान्ति' के लक्ष्य का परित्याग करना घृणास्पद समझते थे और जीवन में क्रमशः समता और मर्यादा के धीरे-धीरे विकास का कार्यक्रम अपनाना उन्हें पसन्द नहीं था। जिन लोगों ने पूर्वों के आकर्षण को नष्ट कर दिया था उनके लिए जौरेस के सन्देश का कोई उपयोग नहीं था। केवल शक्ति की प्राप्ति के अर्थ में उन्हें मार्क्स द्वारा प्रस्तुत मार्गदर्शन का लाभ मिला।

जौरेस की दृष्टि न अपनाने का फल यह हुआ कि फ्रान्स के समाजवाद ने पहले अपने को युद्ध के बादलों में आबद्ध पाया और उसके

बाद वह मास्को इण्टरनेशनल के प्रभाव में आया। सन् १९२० में दो-तिहाई बहुमत से फ्रान्सीसी समाजवाद 'कम्युनिस्ट' बन गया। जौरेस का 'ह्यूमैनिते' 'ल ह्यूमैनिते' बनकर कम्युनिज्म का प्रवक्ता हो गया। अब जौरेस की बातेंभर रह गयी हैं। उनकी शिक्षाएँ उपेक्षित हैं, उन शिक्षाओं की निन्दा की जाती है, उनकी स्मृति और उनके नाम के जादू का ऐसे उद्देश्यों के लिए उपयोग होता है, जिन्हें वे कभी न स्वीकार करते।

एडवर्ड बर्नस्टाइन (१८५०-१९३२) को इतिहास में संशोधनवाद का जनक माना जाता है। वे चाहते थे कि समाजवाद वैज्ञानिक न होकर गुण-दोष का मूल्यांकन करनेवाला हो, क्रान्तिवादी न होकर विकासवादी हो। इन दूरगामी परिवर्तनों को वे मार्क्सवादी विचार के ढाँचे के अन्तर्गत करना चाहते थे।

बर्नस्टाइन और जर्मन समाजवाद

जर्मन सोशल डेमोक्रेसी में भी बर्नस्टाइन पहले संशोधनवादी नहीं थे। जार्ज वॉन वोलमर (१८५०-१९२२) इस काम में उनसे प्राय: एक दशक आगे थे। उनकी बवेरियाई पृष्ठभूमि अर्थात् प्रशिया-विरोधी क्षेत्रीय भावना, कृषि-प्रधान व्यवस्था में विश्वास तथा कैथोलिक धर्म ने उन्हें मार्क्स का स्वाभाविक आलोचक बना दिया। लेकिन चूँकि यह आलोचना उपदेश-प्रधान और क्षेत्रीयता की भावना से युक्त होती थी, इसलिए इसका बौद्धिक प्रभाव नहीं था और न इसमें बर्नस्टाइन की तरह दार्शनिक गहराई ही थी।

बर्नस्टाइन संशोधनवादरूपी वर्षा ऋतु के अकेले बया पक्षी नहीं थे। पार्टी में विचार की धारा पहले से ही इस दिशा में प्रवाहित हो चली थी। बेबेल ने एडलर को लिखा था "हमारे पास अनेक बर्नस्टाइन हैं और उनमें से अधिकांश पार्टी में उच्च पदों पर हैं।" संशोधनवाद के व्याख्याकार के रूप में बर्नस्टाइन अपने जैसे लोगों में केवल प्रधान थे।

संशोधनवाद को शक्ति इस बात से मिली कि जो घटनाएँ घटीं उनका मार्क्स की भविष्यवाणियों से मेल नहीं था और उन घटनाओं तथा

मध्यवर्गियों के बीच का अन्तर व्यापक था। बर्नस्टाइन ने कहा है "सिद्धान्तों की आलोचना ने नहीं, अपितु वास्तविकता ने मुझे अपने विचार बदलने के लिए बाध्य किया।"

पूँजीवाद के विकासक्रम के सम्बन्ध में मार्क्स का विचार था कि 'एक छोर पर धन का संचय होगा और उसके साथ ही दूसरे छोर पर श्रमिक वर्ग की यंत्रणा, दासता, अज्ञानता, निर्ममता तथा नैतिक पतन में वृद्धि होगी। पूँजीवाद को बढ़ते हुए संकट का सामना करना पड़ेगा और वह धराशायी हो जायगा। अनुभव ने इस विश्लेषण को गलत सिद्ध कर दिया। निस्सन्देह धन खूब बढ़ा किन्तु उसके साथ का संचय नहीं हुआ। दीनता स्वतः रूप से समाप्त हुई। आर्थिक जीवन ठीक से चल रहा था और पूँजीवाद के पतन का मूल गायब हो चुका था। मार्क्स के ध्वंसात्मक सिद्धान्त के विपरीत जीवन को अनुकूल बनाने का व्यापार अपना कार्य कर रहा था। जिन्हें उत्पादकार? में कुछ नहीं मिला था वे धीरे-धीरे पुनः समाज में प्रतिष्ठित होकर अपने खोये हुए अधिकार को प्राप्त कर रहे थे। मार्क्स ने आगे चलकर होनेवाली जिस बीमारी की विश्वासपूर्ण बात कही थी, वह बीमारी नहीं हुई और इसके साथ ही वह विनाशक दिन, वह क़यामत भी नहीं आयी, जिसकी वे कल्पना करते थे। बर्नस्टाइन ने लिखा : "लोकतंत्र डेमोक्रेसी इस समाज का विघटन करना और अपने सभी सदस्यों को सर्वहारा बनाना नहीं चाहती। इसके बजाय समाज श्रमजीवी को सर्वहारा के स्तर से ऊँचा उठाकर मध्यवर्गी बनाना चाहता और इस प्रकार पूरा मध्यवर्गी समाज स्थापित करना चाहता है।"

संशोधनवाद न तो क्रान्ति से संकट पैदा करने में विश्वास करता था और न ही क्रान्ति से समाधान करने में उसकी आस्था थी। वह पूँजीवादी असंगतियों को कम करना कमजोर करना चाहता था। अर्थव्यवस्था को युक्तिसंगत बनाकर उत्पादन और वितरण के बीच सारी अन्तर को समाप्त करना मजदूरों की स्थिति में सुधार करके और मध्यवर्गी

को शक्तिशाली बनाकर पूँजी तथा श्रम के सघर्ष का शमन करना सशोधनवाद का उद्देश्य था। उसे वर्ग-प्रधान राज्य तथा समाज के बीच असगति को उत्तरोत्तर राज्य द्वारा अधिक नियत्रण तथा लोकतत्र की प्रगति से समाप्त करना था। यह कोई नया कार्यक्रम, कोई नयी सूझ नहीं थी, बल्कि जो कुछ वस्तुत हो रहा था, उसे जारी रहने देना और स्थिरता लाना था। ये परिवर्तन स्वय मजदूर आन्दोलन और उसके कार्यों के साथ जुड़े हुए थे।

बर्नस्टाइन ने कहा था कि पार्टी के उद्देश्य और ट्रेड-यूनियनें बिल्कुल विपरीत दिशा में गतिशील हैं। पार्टी का मुख्य सिद्धान्त राजनीतिक दृष्टि से निराशावादी है अर्थात् पार्टी वर्गगत विरोध गहरा होने की धारणा रखती है और स्थिति की अपकृष्टता को सामान्य तथा सुधार को असामान्य क्रम मानती है। बर्नस्टाइन का तर्क था कि राजनीति के इस निराशावादी दृष्टिकोण का ट्रेड यूनियन-आन्दोलन से मेल नहीं बैठता। ट्रेड-यूनियनों को चाहिए कि वे अपनी उपलब्ध सफलताओं द्वारा अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करें। ट्रेड-यूनियनों पर दाँवघात की ऐसी नीति लादना, जो निराशावादी और क्रान्तिवादी हो, उन्हें 'ट्रेड-यूनियन के आवरण में समूह का राजनीतिक आन्दोलन बना देगा।' जहाँ पार्टी सघर्ष को निश्चित रूप से सामान्य स्थिति मानती है, वहीं ट्रेड-यूनियन हमेशा 'सघर्ष को अपवाद और शान्ति को (या उद्योग में शान्ति बनाये रखने के समझौते को) नियम के रूप में मानेगी, क्योंकि इसके विपरीत चलने पर वह अपना ही अस्तित्व और अपनी सफलताओं के आधारों को कमजोर कर देगी।' बर्नस्टाइन का खयाल था कि इन दृष्टिकोणों में सघर्ष अवश्यम्भावी है।

पार्टी पहले ससद-विरोधी थी, वह ससद को दलदल समझती थी। बाद में पार्टी चुनाव के मैदान में उतरी और उसके प्रवक्ता रीख्सताग (जर्मन ससद की लोकसभा) में पहुँचे, किन्तु 'उनका विशुद्ध उद्देश्य आन्दोलन था।' फिर सुधार सम्बन्धी विषयों पर मत देने के लिए उनका

भविष्यवादियों के बीच का अन्तर व्यापक था। बर्नस्टाइन ने कहा है : "सिद्धान्तों की आलोचना ने नहीं अपितु वास्तविकता ने मुझे अपने विचार बदलने के लिए बाध्य किया।"

पूँजीवाद के विकासक्रम के सम्बन्ध में मार्क्स का विचार था कि 'एक ओर पर धन का संचय होगा और उसके साथ ही दूसरी ओर पर दीनता, श्रम की यंत्रणा, दासता, अज्ञानता, निर्ममता तथा नैतिक पतन में वृद्धि होगी। पूँजीवाद को बढ़ते हुए संकट का सामना करना पड़ेगा और वह नाशवान् हो जाएगा। अनुभव ने इस विश्लेषण को गलत सिद्ध कर दिया। निस्सन्देह धन खूब बढ़ा किन्तु सारे धन का संचय नहीं हुआ। दीनता स्वतः रूप से समाप्त हुई। आर्थिक जीवन ठीक से चल रहा था और पूँजीवाद के पतन का भूत गायब हो चुका था। मार्क्स के महान् संकट सिद्धान्त के विपरीत जीवन को अनुकूल बनाने का व्यापार अपना कार्य कर रहा था। जिन्हें उत्तराधिकार में कुछ नहीं मिला था वे धीरे-धीरे पुनः समाज में प्रतिष्ठित होकर अपने खोये हुए अधिकार को प्राप्त कर रहे थे। मार्क्स ने भावी भयंकर होनेवाली जिस बीमारी की भविष्यवाणी व्यक्त की थी, वह बीमारी नहीं हुई और उसके साथ ही वह विनाशक दिन या कयामत भी नहीं आयी जिसकी वे कल्पना करते थे। बर्नस्टाइन ने लिखा "सोशल डेमोक्रेसी इस समाज का विघटन करना और अपने सभी सदस्यों को सर्वहारा बनाना नहीं चाहती। इसके बजाय समाज श्रमजीवी को सर्वहारा के स्तर से ऊँचा उठाकर मध्यमवर्गी बनाना चाहता और इस प्रकार पूरा मध्यमवर्गी समाज स्थापित करना चाहता है।"

संशोधनवाद न तो क्रान्ति से संकट पैदा करने में विश्वास करता था और न ही क्रान्ति से समाधान करने में उसकी आस्था थी। वह पूँजीवादी असंगतियों को कम करना कमजोर करना चाहता था। अर्थ-व्यवस्था को बुद्धिमूलक बनाकर उत्पादन और विनिमय के बीच भारी अन्तर को समाप्त करना मजदूरों की स्थिति में सुधार करके और मध्यमवर्गी

को शक्तिशाली बनाकर पूँजी तथा श्रम के संघर्ष का शमन करना संशोधनवाद का उद्देश्य था। उसे वर्ग-प्रधान राज्य तथा समाज के बीच असंगति को उत्तरोत्तर राज्य द्वारा अधिक नियंत्रण तथा लोकतंत्र की प्रगति से समाप्त करना था। यह कोई नया कार्यक्रम, कोई नयी सूझ नहीं थी, बल्कि जो कुछ वस्तुत हो रहा था, उसे जारी रहने देना और स्थिरता लाना था। ये परिवर्तन स्वयं मजदूर आन्दोलन और उसके कार्यों के साथ जुड़े हुए थे।

बर्नस्टाइन ने कहा था कि पार्टी के उद्देश्य और ट्रेड-यूनियनें बिल्कुल विपरीत दिशा में गतिशील हैं। पार्टी का मुख्य सिद्धान्त राजनीतिक दृष्टि से निराशावादी है अर्थात् पार्टी वर्गगत विरोध गहरा होने की धारणा रखती है और स्थिति की अपकृष्टता को सामान्य तथा सुधार को असामान्य क्रम मानती है। बर्नस्टाइन का तर्क था कि राजनीति के इस निराशावादी दृष्टिकोण का ट्रेड यूनियन आन्दोलन से मेल नहीं बैठता। ट्रेड-यूनियनों को चाहिए कि वे अपनी उपलब्ध सफलताओं द्वारा अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करें। ट्रेड-यूनियनों पर दाँवघात की ऐसी नीति लादना, जो निराशावादी और क्रान्तिवादी हो, उन्हें 'ट्रेड-यूनियन के आवरण में समूह का राजनीतिक आन्दोलन बना देगा।' जहाँ पार्टी संघर्ष को निश्चित रूप से सामान्य स्थिति मानती है, वहीं ट्रेड यूनियन हमेशा 'संघर्ष को अपवाद और शान्ति को (या उद्योग में शान्ति बनाये रखने के समझौते को) नियम के रूप में मानेगी, क्योंकि इसके विपरीत चलने पर वह अपना ही अस्तित्व और अपनी सफलताओं के आधारों को कमजोर कर देगी।' बर्नस्टाइन का खयाल था कि इन दृष्टिकोणों में संघर्ष अवश्यम्भावी है।

पार्टी पहले संसद-विरोधी थी, वह संसद को दलदल समझती थी। बाद में पार्टी चुनाव के मैदान में उतरी और उसके प्रवक्ता रीख्सताग (जर्मन संसद की लोकसभा) में पहुँचे, किन्तु 'उनका विशुद्ध उद्देश्य आन्दोलन था।' फिर सुधार सम्बन्धी विषयों पर मत देने के लिए उनका

लोकतन्त्र ही सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र सभ्य तरीक़ा था। इसी प्रकार बर्नस्टाइन ने लासेल के समाजवाद की नीतिपरायणता के आग्रह को भी स्वीकार किया। मार्क्स द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक आधार के सन्तुलन के लिए नैतिक सजगता की आवश्यकता थी। 'समाजवादी समाज की स्थापना के लिए बर्नस्टाइन और अन्य संशोधनवादी मुख्य रूप से मानव की विकासशील नैतिक चेतना पर भरोसा करते थे।'*

बर्नस्टाइन की आलोचनाएँ पहले उन लेखमालाओं में मुखर हुईं, जो उन्होंने १८९६ से १८९८ के बीच 'न्यू जीट' में लिखीं। कोट्स्की के सुझाव पर उन्होंने इन लेखों को और विस्तृत करके १८९९ में एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया और वहीं से एक भारी विवाद की शुरुआत हुई।

मार्क्स का कहना था कि पूँजीवाद का विकास पूँजी में बराबर वृद्धि से होता है। यह पूँजी सचय धीरे-धीरे कम लोगों के हाथों में सिमटने लगता है, नियमों का आकार बढता जाता है और मालिकों की सख्या घटती जाती है। साख और प्रतिस्पर्द्धा की जुडवाँ शक्तियाँ सकेन्द्रण करती हैं। विस्तार और सकेन्द्रण अवश्य हुआ, किन्तु जिस तरह का विस्तार और सकेन्द्रण मार्क्स ने सोचा था, वैसा नहीं। साख का नियत्रण यन्त्र पूँजीवादी उत्पादन की अव्यवस्था मे व्यवस्था स्थापित कर रहा था। वित्त और उद्योग में बैंक प्रभावशाली योगदान कर रहे थे। जैसा कि रुडोल्फ हिल्फरडिंग (१८७७-१९४०) ने आगे चलकर अपनी पुस्तक 'फाइनैन्स कैपिटेल' (१९१०) में लिखा "६ बड़े बैंकों को अपने अधिकार में लेने का मतलब आज बड़े उद्योग के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को अपने अधिकार में लेना होगा।" यहीं बलात् समाजीकरण की प्रक्रिया निहित थी, कलम घुमायी कि बैंक 'राज्य यंत्र' और इस प्रकार समाज-वाद के अग बने।

इस चमत्कार को बर्नस्टाइन ने 'पूँजीवाद में समाजवाद' की सज्ञा दी। समाजवादी सस्थाएँ पूँजीवाद का वेधन करने लगती हैं और पूँजीवाद

* कार्ल ६० शोर्स्के जर्मन सोशल डेमोक्रेसी, पृष्ठ १८।

अपनी चरम ऊँचाई की ओर बढ़ता रहता है। तब भी वे केवल बढ़ती रही हैं। सामुदायिक कार्रवाई का क्षेत्र आकार पर महत्त्व दोनों दृष्टियों से बढ़ता जाता है। कार्टेलों (व्यापारी फर्मों के संघ, जो कीमतों को ऊँचा रखने और प्रतिस्पर्धा समाप्त करने के लिए होते हैं) और ट्रस्टों के फलस्वरूप सार्वजनिक नियंत्रण बढ़ा और अन्ततः यह नियंत्रण उनको क्रमान्तर सार्वजनिक निगमों में बदल देगा। यह आवश्यक था कि 'राजनीतिक सत्ता के माध्यम से मुक्ति' के विचार का परित्याग करके 'आर्थिक सुव्यवस्था के माध्यम से मुक्ति' का विचार अपनाया जाय। पहला विचार विध्वंसात्मक बन जाता है, दूसरा विचार रचनात्मक है। रूसी क्रान्ति के बाद बुखारिन ने सिद्धान्त निरूपित किया कि समाजवाद के उत्थान का पहला चरण हमेशा विध्वंसात्मक होता है, केवल दूसरा चरण रचना की ओर ध्यान देता है। यह उसी प्रकार की तोड़-मरोड़कर कही गयी बात थी, जिसकी बर्नस्टाइन ने आलोचना की और जिसके विरुद्ध उन्होंने चेतावनी दी थी।

मार्क्स द्वारा सोची हुई केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों ने विशेष रूप से जोर मारा किन्तु उसके साथ-साथ ही विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ भी इन्हें नियमन और सन्तुलित करने के लिए सामने आ चुकी थीं। शेयर व्यवस्था बढ़ने से औद्योगिक उपक्रम का स्वामित्व फैलता जा रहा था। मध्यमवर्ग नष्ट होने के बजाय बढ़ता गया और प्रभाव सभी दृष्टियों से बढ़ रहे थे। भारी पैमाने की अर्थव्यवस्था टेक्नोलॉजिस्टों का एक नया वर्ग ही नहीं तैयार कर रही थी, बल्कि उससे निकट और उसके अन्तर्गत में इसने कारखानों तथा निजी उद्योगों के लिए नया अवसर भी प्रदान कर रही थी।

ट्रेड यूनियनों के बढ़ने का आर्थिक विकासक्रमों पर प्रभाव पड़ा। मजदूरों के संगठन और बढ़ते हुए सामाजिक नियंत्रण से समाजवाद के रूप में सुधार हो रहा था। बर्नस्टाइन और फेबियन सिद्धान्त वाद-मजदूरों

को उस 'सामाजिक नियत्रण' के अग के रूप में देखते थे, जो पूँजीवाद के अकलात्मक चित्र को सुधार रहा था।

पूँजीवाद के सम्बन्ध में विद्वान् लोग तीन बातें देखते हैं, वे हैं उत्पादन के ढग, वितरण के तरीक़े और वैधानिक सम्बन्ध। इसमें से केवल पहले में ही सुधार करना बाकी था। शेष दो में मजदूर-आन्दोलन के दबाव के फलस्वरूप पहले ही सुधार हो चुका था। मालिक अब नौकरी की मनमानी शर्तें नहीं रख सकता था, काम की शर्तें तथा वेतन सामाजिक विषय बन चुके थे और कानून के अन्तर्गत थे। ट्रेड यूनियनों के कार्य में विस्तार करके और सहकारिता का विकास करके (जिसकी मार्क्स ने बुरी तरह उपेक्षा की थी) सर्वहारा औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आधार को अपने पक्ष में कर सकता था।

आर्थिक जीवन के इन परिवर्तनों ने सर्वहारा के राजनीतिक दृष्टिकोण में और भी परिवर्तन किये तथा उनका तकाजा था कि और भी परिवर्तन हों। मार्क्स का वर्ग-विश्लेषण बहुत सीधा सा था, जब कि वास्तविक जीवन मे सम्बन्ध पेचीदे थे। मार्क्स ने स्वयं 'कैपिटल' के तृतीय खण्ड में 'वर्गों को उपवर्गों में बाँटनेवाले हितों तथा स्थितियों के सतत विपाटन' का जिक्र किया है। इन विपाटनों से लाभ उठाना अपराध होगा। यह घोषणा करनी होगी कि 'हम चाहते हैं कि तुम शत्रु को निगल जाओ और उसके बाद ही हम तुम्हें निगल जायँगे।' ऐसी चालबाजियाँ समाज को केवल बर्बाद कर सकती हैं। वर्ग के पेचीदे रूप का उपयोग उन वर्गों के भीतर एकता बढाने में करना चाहिए और फिर विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर सहयोग स्थापित करना चाहिए। वर्ग-संघर्ष केवल वर्ग-शान्ति की स्थिति में ही सामाजिक अस्त्र हो सकता है।

पार्टी को गैर-मजदूरों, खासकर किसानों, दूकानदारों और वेतनभोगियों का अधिक-से-अधिक सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी को चौथाई मत इन्हीं वर्गों से मिले थे, हालाँकि पार्टी के सदस्या में ९० प्रतिशत श्रमजीवी वर्ग के थे।

वादी थे। 'हर बार हम इतिहास का आधार माने जानेवाली अर्थ-व्यवस्था के सिद्धान्त को उस सिद्धान्त के आगे आत्म-समर्पण करता हुआ पाते हैं, जो शक्ति पूजा को सीमा तक पहुँचा देता है, हमें अनुभव होता है कि हम हीगेल के वाक्य पढ रहे हैं। सम्भवत इसका उपयोग केवल दृष्टान्त के रूप में होगा, किन्तु वह इसे और भी वदतर बना देता है।' वर्नस्टाइन ने जीवन को 'स्वाभाविक विकास' के रूप में देखा, जिसमें परिवर्तन और अनुकूलन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त विपरीतताओं में संघर्ष को आवश्यकता से अधिक प्रधानता देता है और पारस्परिक सहायता की उपेक्षा करता है। 'मैं यह नहीं मानता कि विपरीतताओं में संघर्ष विकास का आधार है। सापेक्ष शक्तियों में सहयोग का भी वहुत वडा महत्त्व है।' द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त हिंसा या वलप्रयोग की 'रचनात्मक शक्ति' का वहुत अधिक मूल्यांकन करता है और मुक्तिवादी कार्यों पर वेमतलव जोर देता है। द्वन्द्वात्मक तर्क वस्तुत 'अस्वाभाविक उत्क्रान्तिवाद' है। सामाजिक विकास धीरे-धीरे समाजवाद का रूप लेता है, जिसमें वर्गगत वैषम्य क्षीण हो जाते हैं, जहाँ राज्य के अन्तर्गत कार्य राज्य के विरुद्ध संघर्ष का स्थान ले लेता है।

मार्क्स की नैतिक सापेक्षता और आर्थिक अवश्यम्भावीवाद ने समाजवाद के 'जरूरी गुण' को नष्ट कर दिया था। मनुष्य के कार्य स्वतंत्र नहीं होते (अवश्यम्भावीवाद) यह माननेवाला भौतिकवादी वास्तव में 'परमात्मा को न माननेवाला कालविनवादी' जैसा है। त्राण पाने के लिए चुने जाने की वैसी ही आवश्यकता है, 'परमात्मा द्वारा ठुकराये गये लोगों' के प्रति वैसी ही उदासीनता की जरूरत है। अहस्तक्षेप नीति में पूँजीवाद का कालविनवादी जैसा हृदय था। जब तक आचार नीति की पुनप्रतिष्ठा न हो, तब तक समाजवाद भी इसी प्रकार दुर्गम बना रहेगा। सामाजिक प्रगति का अर्थ वास्तव में 'इतिहास के कठोर नियमों का' आचारिक मूल तत्त्वों के द्वारा सुधार करना है। 'वैधानिक और राजनीतिक अधिरचना' का आर्थिक रचना के साथ एक-दूसरे पर प्रभाव डालनेवाला सम्बन्ध ही नहीं

परिवर्तन की प्रवृत्तियों को प्रतिबन्धों और असमर्थताओं पर विजय प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। युद्ध के भेड़ियों न उत्कण्ठापूर्ण आशाओं को पीछे ढकेल दिया।

बर्नस्टाइन को युद्ध का भय था और वे उसके विरुद्ध थे। फिर भी ४ अगस्त १९१४ को उन्होंने पूरी जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के साथ रूस के विरुद्ध युद्ध के पक्ष में मत दिया। किन्तु ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध को उन्होंने भविष्य के विरुद्ध युद्ध के रूप में देखा। जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया, उनके विचार अपने दल से दूर होते गये और अन्ततोगत्वा १९१६ में शान्ति तथा राष्ट्रों के बीच सद्भावना के प्रति उनकी निष्ठा ने उन्हे अपने दल से हटने के लिए बाध्य किया। संशोधनवाद के इस बड़े पुजारी ने अपने को सोशल डेमोक्रेसी के टाट-बाहर किये गये क्रान्तिकारियों के साथ पाया।

यदि युद्ध थोड़े समय तक ही चलता और वार्ता द्वारा शान्ति स्थापित हो जाती, तो स्थिति संशोधनवाद के लिए अनुपयुक्त न होती। किन्तु चार वर्षों के लम्बे संघर्ष ने बहुत कुछ 'स्वाभाविक विकासवाद' के आधार को ही नष्ट कर दिया। युद्ध ने समाजीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ाया किन्तु नैतिक एवं लोकतान्त्रिक भावनाओं को भारी आघात पहुँचाया। जैसा कि बाद में लेनिन ने कहा, इतिहास ने विचित्र खेल दिखाया—१९१८ में उसने समाजवाद के दो पृथक्-पृथक् अर्ध भागों को एक ही साथ दो चूजों (मुर्गी के बच्चों) की तरह जन्म दिया, आर्थिक अर्ध भाग का आविर्भाव जर्मनी और राजनीतिक अर्धभाग का आविर्भाव रूस में हुआ। बर्नस्टाइन ने देखा कि युद्ध के फलस्वरूप जर्मन अर्थव्यवस्था ने राज्य-पूँजीवाद का रूप ले लिया है, किन्तु लोकतान्त्रिक शक्तियाँ इतनी कमजोर हो गयी है कि राज्य-पूँजीवाद का सामाजिक लोकतन्त्र के रूप मे शान्तिपूर्ण परिवर्तन बिल्कुल असम्भव है। अर्थव्यवस्था ने अपने ही रूप में राजनीति व्यवस्था को प्राप्त करने की कोशिश की।

युद्ध अपने बोझिल आयोजन और अभियान के साथ अधिकारवादी

पहुँचाने मे सफल रहे। इटालियन समाजवाद ने कभी भी राष्ट्र के गौरव-मय अतीत से अपनी परम्परा नहीं जोडी।

इटालियन समाजवाद की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति मिखैल बकूनिन (१८१४ ७६) नामक एक रूसी तथा सुधारवाद बेनोई मैलों की देन थी। मार्क्सवादी प्रभाव ने इटालियन आत्मा के अन्तरतम को प्रभावित किया। जैसा कि बेनेदेतो क्रोचे ने कहा है "मनुष्य अपने को तब तक उतना स्वतन्त्र नहीं अनुभव करता, जब तक वह उसे परमात्मा की इच्छा या स्वाभाविक आवश्यकता के अनुरूप न समझ ले।" स्वतन्त्रता ने, आवश्यकता की मान्यता के रूप में, अस्थिर सम्बन्धों को स्थिर कर दिया।

जिस बौद्धिक वातावरण में इटालियन समाजवाद का जन्म हुआ, वह 'प्रत्यक्षवादी' था जब कि लोम्ब्रोजो के मतानुसार बाह्य वातावरणगत तथ्यों का नैतिक उत्तरदायित्व से कहीं अधिक महत्त्व था।

इटालियन समाजवाद ऐसे समय म सामने आया, जब स्थिति उसके अनुकूल नहीं थी। धरती के अभाव से स्वस्थ उद्योग असम्भव हो गया और लूट-खसोट (Transformismo) ने लोकतन्त्रवाद के आधार को ही कमजोर कर दिया था। लोकतंत्र को रक्ताल्पता जैसी बीमारी थी और आर्थिक स्थिति स्वस्थ नहीं थी। इटली पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा पूर्वी यूरोप के अधिक निकट था। सामाजिक लोकतन्त्र को सफल बनाना था तो यह जरूरी था कि समाजवादी पार्टी कल्याण और समृद्धि की स्थिति लाती। उसकी नीति लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना और इस दिशा में विकास के लिए सक्रियता होनी चाहिए थी।

सन् १९०३ और १९११ के बीच प्रधान मन्त्री ज्योलिती के काल मे लोकतन्त्र का थोडा सा उत्थान हुआ। आर्थिक विकास और सामाजिक कानूनों की व्यवस्था साथ-साथ हुई। सरकार में शामिल होने के लिए समाजवादियों द्वारा ज्योलित्ती का प्रस्ताव अस्वीकार किया जाना उचित था, किन्तु सामाजिक कानूनों के निर्माण और लोकतान्त्रिक परम्पराओं के प्रति उन्हें विरोध के बजाय क्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था।

पूर्ण से घृणा। युद्ध में कूदकर इटली अपने अधिकार के लिए जोर देने लगा। गड़बड़ी, हिंसा, आधिपत्य के लिए उत्तरदायित्वरहित भावना और विचाररहित, मन्त्रणारहित, एवं विधिरहित कार्यों की प्रधानता हो गयी।

युद्ध के बाद समाजवादियों को शक्ति सचय और निर्माण का अच्छा अवसर मिला। पार्टी को ४० प्रतिशत मत मिले और ससद में उसकी शक्ति किसी भी दल से अधिक अर्थात् १५६ थी। ६९ प्रान्तीय सरकारों में २६ तथा लगभग ४ हजार क्षेत्रीय प्रशासनों में २१६२ पर उसका अधिकार था। शक्तिशाली ट्रेड यूनियन आन्दोलन ने पार्टी को बल प्रदान किया। सीमा के उस पार युद्ध से तहस-नहस आस्ट्रिया में सोशल डेमोक्रेट क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी के साथ मिली-जुली सरकार बनाकर अपने देश में शान्ति एवं स्थिरता स्थापित कर रहे थे।

इटली में भी इस प्रकार के सहयोग के लिए उपयुक्त स्थिति थी। डान लुइगी स्तर्जो की पापुलर पार्टी 'कुछ भी स्वीकार करने के बन्धन से परे' (Aconfessional) क्रिश्चियन सोशलिस्ट पार्टी थी। ससद में इसके एक सौ प्रतिनिधि थे और इसके अनुयायियों में सामाजिक आदर्श-वाद की भावना अब भी प्रबल थी। इटली के लोगों को आस्ट्रिया के अनुभव से शिक्षा लेनी चाहिए थी। कैथोलिक देशों में जहाँ किसानों की प्रधानता है, हमेशा कार्ल लूजर्स (१८४४–१९१०) जैसे नेताओं का आविर्भाव होगा। अच्छा होगा कि उनके साथ गतिरोध उत्पन्न न करके उन्हें अपने साथ रखा जाय।

इटालियन समाजवाद सदैव देश के कैथोलिकवाद से दूर भागता रहा। आम जनता तथा श्रमजीवी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाने की अभावात्मक प्रवृत्ति निरर्थक थी। चर्च को अकेले छोड़ दिया जा सकता था, किन्तु कैथोलिकवाद के साथ भावनात्मक और बौद्धिक सहयोग आवश्यक था।

इटालियन समाजवादी पार्टी के जन्म के अवसर पर पोप लियो १३वें ने धार्मिक आदेश (Rerum Novarum) जारी किया। यद्यपि

इसमें राज्यवाद की आलोचना की गयी थी किन्तु साथ-ही-साथ पूँजीवाद की भी आलोचना थी। इसकी मूल आपत्ति वस्तुतः राज्यवाद तथा केन्द्रीकरण के विरुद्ध थी। इसमें वितरण व्यवस्था को उपयोगी बनाने पर जोर दिया गया था। कृषक-प्रधान देश में यह अच्छा श्रीगणेश हो सकता था। वितरण व्यवस्था की उपयोगिता से मूलग्राहियों को भी प्रभावित किया जा सकता था।

पापुलर पार्टी में आदिम ईसाई-धर्म के ऐसे तत्त्व पर्याप्त रूप में थे, जिनका अराजकतावादी समाजवादी आन्दोलन से मेल हो सकता था। अन्य शब्दों में सिद्धान्त का मूल आधार श्रेणीसमाजवाद था। इससे समाजवादियों की इच्छा के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और आर्थिक विकेन्द्रीकरण में किसी प्रकार का संघर्ष न होता। सिद्धान्त रूप में लोकप्रियता को ये दोनों गुण मिले। इटली में, जहाँ तरह तरह के नगर-राज्यों की ऐतिहासिक परम्परा रही है, श्रेणीसमाजवाद बहुत आवश्यक था और इसकी व्यावहारिकता का ठोस प्रमाण पड़ता। एक महान् इटालियन लेखक टामस एक्वीनास (१२२५-७) ने 'अरस्तू की राजनीति' की टीका में एक लेख लिखा है, जो उनके महान् देश में विकसित हुआ था : "नगरों की भिन्नता का कारण वर्गों की भिन्नता है, या यों कहा जाय कि एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानव सामुदायिक जीवन के भिन्न भिन्न वर्गों की रचना करता है और उसके फलस्वरूप विभिन्न नगरों का आविर्भाव होता है।' किसी सामान्य शैली के अन्तर्गत इस प्रकार की भिन्नता ही स्वतन्त्रता को सम्पूर्ण बनाती है।

किन्तु मार्क्सवादी बहुलवाद और रोमन कैथलिक इस प्रकार की बात सोच ही नहीं सकते थे, क्योंकि इस प्रकार का मार्ग राज्यवाद को दमन रूप प्रदान करता।

सितम्बर १९२ में इटालियन समाजवाद अपनी शक्ति के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच गया। धातु उद्योग के ६५ हजार तथा इंजीनियरिंग संस्थाओं के तीन लाख श्रमिकों ने देश के सर्वाधिक विकसित उद्योग

समूह को अपने कब्जे में कर लिया। क्रान्ति समाजवादियों के दरवाजे पर थी, किन्तु समाजवादी 'पेनेलोप की तरह' जाल बुनने में व्यस्त थे। सुधारवादियों ने ससद में जो कुछ प्राप्त किया, क्रान्तिकारियों ने बाहर उसे मटियामेट कर दिया और क्रान्तिकारियों ने बाहर जो सफलता प्राप्त की, उसे सुधारवादियों ने ससद में समाप्त कर दिया। रूसी क्रान्ति से चकाचौंध होकर इटली के समाजवादियों ने जो कुछ किया, वह यह कि उन्होंने राष्ट्र तथा श्रमजीवियों का मनोबल तोड दिया, राजनीतिक दुस्साहसिकों के मुकाबले अपनी ही शक्ति कमजोर कर ली, पार्टी के बल को ही छिन्न-भिन्न कर दिया और उसकी एकता समाप्त कर दी। क्रान्ति से उत्पन्न अव्यवस्था और तहस-नहस हुई पार्टी के ऊपर पैर रखकर मुसोलिनी सत्तारूढ हुआ।

बीस वर्ष का फासिस्टवाद, दमन और देश-निकाला इटालियन समाजवाद को मूलत परिवर्तित नहीं कर सका है। यह पुन स्थिरतावादी प्रवृत्ति या विप्लवकारी रूप लेना स्वीकार नहीं कर रहा है। इसमें फूट पडी हुई है। पीट्रो नेनी रूस से प्रेरणा लेते हैं, जिसेप सरगत ब्रिटेन की ओर देखते हैं और इटली की अपनी राष्ट्रीय प्रवृत्ति का कोई उपयोग नहीं हो रहा है।*

एक आशाजनक विकासक्रम, जिसमें जीवन और सौन्दर्य की लालस थी, शिल्पसंघ समाजवाद (Guild Socialism) था। यह वैसे ही था जैसे किसी पुराने खनिज पदार्थ के लिए नयी तह व

शिल्पसघ समाज-
वाद

खुदाई। शिल्पसघ समाजवाद का जन्म पूँजीवाद अ आगे आनेवाले राष्ट्रीकरण के विरुद्ध हुआ। रोग अ चिकित्सा दोनों में आदमी खोया रह जाता है।

बाहुल्यता के पीछे दौड और लाभ की तृष्णा ने आदमी को वस्तु सामने गौण बना दिया। यन्त्र ने कर्मचारी को निगल लिया। मुक्त आत्म बडी लालसा से उन पुराने दिनों की बात सोचती थीं, जब एक मह

* डब्ल्यू० हिल्टन दि इटालियन टेस्ट।

और इस उत्पादन का मूल्याकन साधारण ढग पर किया जाता है, क्योंकि उत्पादक किसी प्रकार का रचनात्मक या प्रत्यक्ष कार्य करने से मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार की सम्पत्ति को प्रोफेसर टावनी ने अर्जनात्मक (Acquisitive) सम्पत्ति कहा है। यह शोषण तथा अधिकार-लिप्सा को प्रश्रय देती है। उन्होंने कहा है "अपने श्रम से मानव जो सम्पत्ति अर्जित करता है, वह 'वालू को सोने में परिवर्तित करने के समान' है। किन्तु जो सम्पत्ति दूसरे के श्रम से प्राप्त होती है, वह 'सोने को वालू बनाने' जैसी है।" अर्जनात्मक समाज कभी भी मुक्त समाज नहीं होता।

मानव का कोई स्वाभाविक अधिकार नहीं होता, उसे केवल उसकी कर्तव्यपूर्ति पर आधृत वस्तुनिष्ठ अधिकार प्राप्त होता है। यह वृत्ति-मूलक (Functional) सिद्धान्त स्पेनिश लेखक रमीरो द मैजतू ने दिया और एक दूसरे स्पैनिश सेम्प्रम वाइ० गुरिया ने उसे 'वृत्तिमूलक स्वामित्व सिद्धान्त' (A theory of functional proprietor-ship) के रूप में विकसित किया। किसीके श्रम का उत्पादन ही धन नहीं है, बल्कि श्रम की विधि भी धन है। ऐसा गुण—दक्षता और क्षमता का गुण—व्यक्ति में मौलिक प्रवृत्ति, कार्य को अच्छी तरह सम्पादित करने की इच्छा और श्रम की प्रतिष्ठा की भावना जागरित करता है। समाज के पुनर्गठन और प्रोफेसर टावनी के शब्दों में 'वृत्तिमूलक मत' (Functional Vote) की पुनर्प्रतिष्ठा ने ही शिल्पसघ के विचार को जन्म दिया या यों कहा जाय कि पुनर्जीवन प्रदान किया।

शिल्पसघ समाजवाद प्रेरणा के लिए मध्यकालीन शिल्पसघों का बहुत ऋणी है। जी० डी० एच० कोल ने लिखा है "यदि मध्यकालीन शिल्पसघ व्यवस्था से हमें शिक्षा मिली, तो वह तोते के समान दोहरानेवाली शिक्षा नहीं थी, वल्कि ऐसी प्रेरणाप्रद शिक्षा थी, जिससे हम भारी पैमाने पर उत्पादन तथा विश्व हाट (World market) के आधार पर ऐसे औद्योगिक सघटन का निर्माण कर सकते हैं, जो मनुष्य की उच्च भावनाओं को प्रभावित करे और सामुदायिक सेवा की परम्परा को

विकसित करने में समर्थ हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम जब इस स्थिति तक पहुँच जायँगे, तब उत्पादक और उपभोक्ता दोनों समान रूप से काम की परिस्थितियों की अपेक्षा उत्तम कोटि की वस्तुओं की माँग करेंगे, इससे भौतिक का नया स्तर स्थापित होगा और हम उत्पादन के बहुत-से क्षेत्रों में लघु स्तर पर उत्पादन की ओर लौट जायेंगे। किन्तु यदि यह अवस्था आती है, तो स्वतन्त्र समाज में स्वतन्त्र व्यक्ति की इच्छा से ही आयेगी।"

स्वतन्त्र समाज में ऐसी स्वतन्त्रता शिल्प-संघ के आधार पर पुनर्गठन की एक भावना लेकर चलती है। शिल्प संघ की व्याख्या "एक दूसरे पर निर्भर व्यक्तियों का समाज के कार्यविशेष के सम्पादन के लिए संगठित स्वायत्त शासित संघ" (ए आर ओरेज) की गयी है। प्रत्येक शिल्प-संघ में मैनेजर से लेकर मजदूर तक ऐसे सभी लोगों को रखना था जो एक निर्दिष्ट उद्योग, व्यापार और व्यवसाय में काम करते हों और हर एक संघ को अपने काम-विशेष के क्षेत्र में एकाधिकार मिलना था।

सन् १९ ५ के शिल्पसंघ पुनर्गठन आन्दोलन ने ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया कि १९१५ में नेशनल गिल्ड्स लीग (शिल्पसंघों का राष्ट्रीय महासंघ) की स्थापना हुई। इस प्रकार के विचार क्रम में इस मूल कल्पना को पुष्ट किया गया कि किसी शिल्पसंघ को व्यवसाय विशेष और व्यवसाय विशेष में काम करनेवालों के अनुपात को साथ लेकर चलना है। ला तूर दु पिन (La T ur du Pin) के शब्दों में 'व्यवसाय में श्रमी सम्पत्ति' का तात्पर्य है कि छोटे पैमाने पर उत्पादन हो ताकि श्रमजीवी सारी विधियों को समझ सकें और एक साथ काम करनेवालों में व्यक्तिगत सम्बन्ध तथा समुचित गति कायम रहे। श्रम और उत्पादन के दावों को मानव-प्रतिष्ठा और स्वतन्त्रता के आगे गौण बन जाना है। किसी भी शिल्पसंघ का अपने विकास के लिए अपने आचारों का पालन करना आवश्यक है। इसे ऊपर से नहीं लादा जा सकता। इसकी प्रगति श्रमजीवी के काम करने के अधिकार

और सामूहिक रूप से सुखपूर्वक जीवन से होती है। इन बातों की उपेक्षा होने का फल यह हुआ कि बहुत-से शिल्पसंघियों ने शिल्पसंघ का जो रूप देखा, उसे ही वास्तविक रूप मान लिया। रूस में उद्योगों का संगठन राष्ट्रीय वृत्तिमूलक संस्थानों के रूप में हुआ था, जो उत्पादन और मूल्य-नियन्त्रण करते थे। ये विशाल उद्योग शिल्पसंघ नहीं थे, क्योंकि इनमें श्रमजीवी-उत्पादक को अपना काम बदलने, शिल्पसंघ के विकास की योजना बनाने तथा उद्योग का विकास करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। इटली के निगमों (Corporations) की तरह रूसी ट्रस्ट राज्य द्वारा ऊपर से लादे गये थे। 'बिना स्वतन्त्रता के कोई शिल्पसंघ नहीं और बिना साहचर्य के कोई स्वतंत्रता नहीं' इस सिद्धान्त की उपेक्षा के फल-स्वरूप बहुत-से शिल्पसंघी कम्युनिज्म के प्रवाह में बह गये।

संघ समाजवाद (Syndicalism)* और उसके शक्तिवादी दर्शन के प्रति शिल्पसंघियों के घातक अनुराग ने ही शिल्पसंघरूपी धारा को कम्युनिस्ट जलप्लावन में बदल दिया। शिल्पसंघ विचार के रूप में इस सत्य की खूबी को स्पष्ट नहीं कर सका कि अपने विकास के लिए उसे स्थिरता चाहिए न कि सतत अशान्ति और गड़बड़ी। श्रमसंघीय समाज की वैधानिक और वित्तीय बारीकियों की उपेक्षा कर दी गयी। यह उपेक्षा सम्भवतः फेबियन निरर्थकता तथा शुद्धवादिता की झक के कारण की गयी। किन्तु श्रमसंघीय विचार में निहित विकास धारणा की भी इसी प्रकार उपेक्षा की गयी। शक्ति-प्राप्ति का स्वप्न श्रमसंघियों को मास्को का यात्री ही बना सकता था।

श्रमसंघीय आन्दोलन का एक भाग वितरणवाद के भँवर में आत्मसात् हो गया। यह सत्य है कि मानव चोरों के बीच पड़ गया और अपनी सम्पत्ति गँवा बैठा, किन्तु पेचीदे औद्योगिक समाज में हर व्यक्ति को

---

* वह श्रमिक आन्दोलन जो ट्रेड यूनियनों को ही सामाजिक क्रान्ति तथा भावी समाज का आधार मानता है।

समाजवाद को पीछे मोड़नेवाली प्रवृत्ति

कि द्वितीय इण्टरनेशनल में सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों पर जर्मन समाजवाद का प्रभाव बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। उदाहरण के लिए उसने विशेष रूप से फ्रासीसी समाजवाद का विकास अवरुद्ध कर दिया (उसके अर्थात् फ्रासीसी समाजवाद के कई सर्वाधिक योग्य व्यक्ति तीसरे रिपब्लिक में पद से कई वर्षों तक अलग रखे गये) और ऐसी कठोर मार्क्सवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया, जिसके चक्र में फ्रासीसी समाजवादी पार्टी का एक मुख्य अग आज तक पडा हुआ है। जो लोग राजनीतिक प्रश्नों को व्यक्तिगत परिधि में देखना चाहते हैं, उनके लिए जौरेस और बेबेल समाजवाद के परस्पर विरोधी रूपों के ही प्रधान नायक नहीं, बल्कि राजनीति को दो अलग अलग ढगों से देखनेवाले प्रधान नायक कहे जा सकते हैं।"*

यह भिन्नता द्वितीय इण्टरनेशनल के जन्म काल में ही सामने आ गयी। १८८९ में पेरिस में जो समाजवादी काग्रेस हुई, वह शिविरों में बँट गयी और परस्पर-विरोधी सम्मेलन हुए। यह सब "स्पष्टरूप से कतिपय प्रतिनिधियों के प्रमाणपत्रों के प्रश्न को लेकर हुआ, लेकिन वास्तव में देखा जाय, तो इसके पीछे वह प्रश्न था, जो आज भी सभी देशों में समाजवादियों को विभाजित किये हुए है। वह प्रश्न था, समाजवादी दूसरे दलों से सहयोग करें या अकेले रहें ? कट्टर मार्क्सवादी अलग रहने के पक्ष में थे, अवसरवादी या सम्भावनावादी दूसरे दलों के साथ सहयोग के समर्थक थे।"†

इगलैण्ड पर इस अन्तर का प्रभाव नगण्य था। विश्व के इस वर्कशाप ने औद्योगिक क्रान्ति में अगुआई की थी। आर्थिक विकास और राजनीतिक स्वतन्त्रता ने सशोधनवाद को लेबर पार्टी के विचार का मौन

* जेम्स जोल दि सेकड इण्टरनेशनल १८८९-१९१४, पृष्ठ ३।

† मैथुभर पी० ओथ सोशलिज्म एण्ड डेमोक्रेसी इन यूरोप—१९१३, पृष्ठ ६९।

वॉन वोलमर ने अपने साथियों के समक्ष कहा कि दक्षिणी जर्मनी के समाजवादी किसीसे भी, जो उन्हें थोड़ा भी स्थान दे, सहयोग करने के लिए तैयार हैं। इसके उत्तर मे बेवेल ने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें इस बात की पुष्टि की गयी थी कि 'राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की प्रधान आवश्यकता क्षणभर का कार्य' नहीं हो सकती, अपितु क्रमिक विकास से ही उसे प्राप्त करना सम्भव है। विकास के काल में सोशल डेमोक्रेटों को 'सत्तारूढ वर्गों से रियायतें' पाने की दृष्टि से प्रयास नहीं करना चाहिए, बल्कि 'पार्टी के चरम एवं पूर्ण लक्ष्य को सामने रखना चाहिए।' बेबेल के सिद्धान्त में चरम लक्ष्य चरम अधिकार से जुडा हुआ था। लक्ष्य और अधिकार दोनो को अवसर की प्रतीक्षा और उस अवसर के लिए कार्य करके, प्राप्त किया जा सकता था।

सन १९०९ में सत्तारूढ बुलोव गुट में फूट बढ गयी। अनुदार जमींदारों ने कर का कोई भी भार वहन करने से इनकार कर दिया और अपने इस कार्य द्वारा समाज के दूसरे तत्त्वों को एक साथ ला बिठाया। विभिन्न व्यापारिक तथा सहयोगी हितों ने अनुदार भूस्वामियों के गुट (Bund-der Landwirte) तथा स्वार्थपूर्ण कर नीति के विरुद्ध अपने को एक अलग गुट हान्सबण्ड (Hansabund) में एकताबद्ध किया। थोड़े समय के लिए हान्सबण्ड और सोशल डेमोक्रेटों के एक साथ काम करने की आशा दिखाई पडी, 'बेवेल से बासरमैन' गुट के विचार का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु लोकतान्त्रिक सरकार के अभाव तथा वर्ग के आधार पर विभाजन ने, जिस पर राजनीतिक जीवन आधृत था, इस विचार की सफलता को असम्भव बना दिया।

इन्हीं सब कारणों से जर्मन समाजवादियों में संशोधनवादी संकट ने सैद्धान्तिक रूप ग्रहण किया। फ्रास में गेज्दे ने कट्टर सिद्धान्तवाद का पक्ष लिया, मिलराँ तथा दूसरे स्वतन्त्र समाजवादियों ने अवसरवादी नीति अपनायी, जब कि जौरेस का अपना एक अलग विशिष्ट विचार था।

सन् १८९७ में फ्रान्स ड्रेफस काण्ड से हिल उठा। रिपब्लिक के लिए

भारी चुनौती और खतरा था। जौरेस ने ड्रेफस के पक्ष में आन्दोलन करनेवालों का साथ दिया। उन्होंने ड्रेफस के विषय में लिखा : "अब वह बुर्जुआ-वर्ग का अधिकारी नहीं रह गया है। उसे दुर्भाग्य की मार ने उसकी वर्गीय विशिष्टताओं से रहित कर दिया है। वह और कुछ नहीं, केवल घोर विपत्ति और निराशा की शिकार मानव-जाति का प्रतीक है। ड्रेफस को बचाने के लिए जौरेस ने ड्रेफस समर्थक सभी पार्टियों का साथ दिया चाहे वे पार्टियाँ समाजवादी रही हों चाहे गैर-समाजवादी।" संसद में 'गुट' के प्रवक्ता के रूप में जौरेस प्रथम मन्त्रीत्वी लोकतन्त्र के प्रथम वास्तविक प्रधान बन गये। राज्य से चर्च के सम्बन्ध की समाप्ति और उसके साथ शिक्षा-व्यवस्था में धर्म-निरपेक्षता तथा सेना के पुनर्गठन के रूप में दो बड़े सुधार किये गये।*

यह अवसर संसद में समाजवाद के सम्बन्ध में क्लीमेंशो के साथ बहस का था जब जौरेस को उनके कार्यक्रम के सम्बन्ध में बताया गया 'क्या अचानक रूप से बुर्जुआ कार्यक्रम है।' अपने कार्यक्रम की व्याख्या करने के बाद मोसियो जौरेस ने मुझे अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने की चुनौती दी है। उत्तर देने के लोभ को संयत रखने में मुझे बड़ी कठिनाई अनुभव हो रही है : 'आप मेरा कार्यक्रम अच्छी तरह जानते हैं। वह आपकी जेब में है। उसे आप मेरे पास से चुरा ले गये हैं।' सभी समाज-वादियों का कार्यक्रम निश्चित रूप से विकासवादी था किन्तु भावना प्रायः क्रान्तिकारी रहती थी।

जौरेस का सम्भावनावादियों से मतभेद था। जिनकी भी आलो-चना करते हुए उन्होंने कहा—'किसी का यह खयाल गलत है कि समाज के विरोध भाव को एक प्रकार से स्वतः समाप्त करने के लिए लोक-तन्त्र का सिद्धान्त निरूपित कर देना ही पर्याप्त है। राजनीतिक लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा और व्यापक मताधिकार से वर्गों का विरोधभाव किसी प्रकार

---

* वेकुल्स ए० मौर्स, वही, पृ० ९९।

समाप्त नहीं होता। जिस प्रकार गेज्दे वर्ग-संघर्ष को लोकतन्त्र से अलग विशिष्ट स्थिति में रखकर गल्ती करते हैं, उसी प्रकार सिरेन्ते भी बिना यह समझे हुए कि वर्गों का विरोधभाव लोकतन्त्र में हेर-फेर और अशुद्धता ला सकता है, उसे विफल कर सकता है, लोकतन्त्र को विशिष्ट स्थिति में रखकर गल्ती करते हैं।" जौरेस के सामने समस्या यह थी कि लोकतन्त्र में तब तक समाजवाद अपने पैर जमाता जाय, जब तक 'अभिजात-वर्ग और बुर्जुवा-वर्ग द्वारा नियन्त्रित राज्य के स्थान पर सर्वहारा और समाजवादी राज्य स्थापित न हो जाय।' उन्होंने कहा "यह कार्य ऐसी नीति अपनाकर पूरा किया जा सकता है, जिसमें सभी लोकतन्त्रवादियों से सहयोग हो, फिर भी अपने को उनसे अलग बनाये रखा जाय।"

मिलरा का अलग ही रास्ता था। १८९८ में रेने वाल्डेक रूसो ने, जिन्होंने इसके पहले फ्रान्सीसी मजदूरों को ट्रेड-यूनियन के अधिकार दिये थे, सरकार बनायी और अलेक्जेण्डर मिलरा को उसमें शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया। उनकी नियुक्ति तत्काल फ्रान्सीसी समाजवादी आन्दोलन के भीतर फिर से संघर्ष का मूल बन गयी और आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव के फलस्वरूप एक पीढ़ी तक विश्व में समाजवादियों की दाँवघात की नीति को प्रभावित किया। ड्रेफस काण्ड ने यदि किसी खास एवं तात्कालिक लक्ष्य के लिए दूसरे दलों से सहयोग के प्रश्न पर विवाद को जन्म दिया, तो मिलारा के मामले में और भी उग्र विवाद हुए।

१८९८ और १९०० के बीच इटली में वैधानिक सरकार खतरे में थी। जनरल पेलों की सरकार ने फरवरी १८९८ में समाजवादियों के विरुद्ध कानून बनाना चाहा। लेकिन लिबरल और रेडीकल सदस्यों ने वैसा नहीं होने दिया जैसा १८७९ में जर्मनी में हुआ, उन्होंने इससे खतरा अनुभव किया और १९०० में नयी लिबरल सरकार को सत्तारूढ किया। फिलिपो और तुराती ने लिबरल और रेडीकल पार्टियों से सहयोग तथा चुनाव-समझौते का प्रश्न उठाया, जिसका फेरी के नेतृत्व में मार्क्सवादियों ने कड़ा विरोध किया। विवाद १९१२ तक चलता रहा, जब बिसोलाती

और मैनोमी से अलग होकर सुधारवादी पार्टी बनायी, जो विफल रही।

संशोधनवाद के प्रश्न पर विचार करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस की बैठक सितम्बर १९ में पेरिस में हुई।

जर्मनी तथा फ्रांस देशों में मजबूत सुधारवादी दल था उन देशों के मार्क्सवादियों (जैसे फ्रान्स के गेस्डे और इटली के फेरी) ने माँग की कि बुर्जुआ सरकारों में शामिल होने या गैर-समाजवादी पार्टियों से सहयोग करने के लिए साफ-साफ शब्दों में निषेध किया जाय। फिर भी बहुत-से लोग ऐसे थे, जो मध्य मार्ग चाहते थे। उदाहरण के लिए बेल्जियम के वान्डरवेल्डे ने कहा। "सरकार में शामिल होना उस स्थिति में उचित है, जब स्वतंत्रता के लिए खतरा हो, जैसे इटली में था। वहीं भी सरकार में शामिल होना उचित है, जहाँ मानव के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न हो जैसे हाल में ही फ्रान्स में था। बेल्जियम में व्यापक मताधिकार प्राप्त करने के लिए भी अन्ततः उसका औचित्य है।"

मिलरां ने जो कुछ किया उसके लिए वान्डरवेल्डे ने उसकी उतनी अधिक आलोचना नहीं की जितनी इस बात के लिए कि उन्होंने अपने कार्यों के सम्बन्ध में दल से परामर्श नहीं किया।

सम्मेलन ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें कहा गया था कि किसी बुर्जुआ सरकार में समाजवादी के पद स्वीकार करने को "राजनीतिक सत्ता जीतने का सामान्य प्रारम्भ नहीं माना जा सकता बल्कि ऐसा समझना चाहिए कि अस्थायी और असाधारण स्थितियों के दबाव को देखते हुए यही उपयुक्त है।

कांग्रेस ने १९ ४ में बहस प्रारम्भ की। चार दिन की बहस के बाद, जो बुद्धि और विचार का अद्भुत संघर्ष था संशोधनवाद का पक्ष लेने-वाला प्रस्ताव १९ के विरुद्ध २१ मतों से अस्वीकार कर दिया गया और उसके बाद जर्मन पार्टी के दल का समर्थन करनेवाला प्रस्ताव, जिस पर १९ सदस्यों ने मत नहीं दिया, ४ के मुकाबले २१ मतों से स्वीकार हो गया। "यह महत्त्वपूर्ण था

या तत्सम्बन्धी मतदान में भाग न लेनेवाले प्रतिनिधि इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्कैण्डनेविया, बेलजियम, स्विट्ज़रलैण्ड जैसे उन देशों के थे, जहाँ उदार संसदीय परम्पराएँ सबसे सुदृढ थीं। इसके विपरीत उसका समर्थन करनेवालों में इटालियनों को छोड़कर शेष सभी प्रतिनिधि (जिनमें जापान का एकमात्र एक प्रतिनिधि भी था) उन देशों के थे, जहाँ उन्हें राजनीतिक अधिकार मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। यह बेबेल की महान् विजय और जौरेस की व्यक्तिगत पराजय थी।"*

समाजवाद में लोकतान्त्रिकता का गला घोंटने की बात उन लोगों ने शुरू की, जिन्हें न तो लोकतन्त्रीय शासन का अनुभव था और न ही अवसर प्राप्त था। इस कार्य में उन्हें गेस्दे और फेरी जैसे कट्टर मार्क्सवादियों का सहारा मिला था। संशोधनवाद को तथ्यों के वजन या तर्क की शक्ति से अमान्य नहीं किया गया, बल्कि वह उन लोगों के अन्धाधुन्ध समर्थन से अमान्य हुआ, जिन्होने समाजवादी शक्तियों को अधिकारवादी स्थिति में (जैसा कि जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी में हुआ) परिपुष्ट किया था।

तीसरे इण्टरनेशनल ने दूसरे इण्टरनेशनल के लक्ष्य को आँख मूँदकर आगे बढाया।

प्रोफेसर अर्नोल्ड ट्वायनबी ने अपनी पुस्तक 'स्टडी आफ हिस्ट्री' में अभियानवादी (Aggressive) और पीछे की ओर मुडकर देखनेवाली (Recessive) शक्तियों के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया है। संशोधनवाद समाजवाद का सदैव पीछे की ओर मुडकर देखनेवाला (और इस प्रकार दुर्निवार) रूप रहा है।

जैसा कि जान प्लामेनात्ज ने अपने विचारोत्तेजक अध्ययन 'जर्मन मार्क्सिज्म एण्ड रशियन कम्युनिज्म' में कहा है "मार्क्सवाद वह दर्शन है, जिसका जन्म पश्चिम में लोक-तन्त्र-युग से पहले हुआ।"† इसीलिए मार्क्स-

* जेम्स जोल वही, पृष्ठ १०४। † पृष्ठ १४।

खेतिहर और समाजवाद : ६ :

समाज में खेतिहर उपेक्षित रहा है। "अपने ही श्रम से, अपने ही प्रयास से, अपनी ही योग्यता से प्राप्त की गयी सम्पत्ति। यह क्या आप निम्न बुर्जुआ की बात कर रहे हैं, छोटे खेतिहर की सम्पत्ति की बात कर रहे हैं? हमें उसे समाप्त करने की जरूरत नहीं है। उद्योग के विकास ने यह कार्य कर दिया है और बराबर कर रहा है।" मार्क्स का यह प्रसिद्ध विचार आमतौर पर समाजवादी दृष्टिकोण था। आशा की जाती है कि विकास के अटूट नियम खेतिहर की समस्या हल कर देंगे।

क्रान्ति को परिपुष्ट करने के लिए खेतिहर का पक्ष अवश्य लिया जा सकता है। १८४९ में ही मार्क्स ने कहा था

"बाल्टिक सागर और कृष्ण सागर के बीच के बड़े-बड़े कृषि-प्रधान देश पितृ-प्रधान सामन्तीय बर्बरता से अपनी रक्षा ऐसी खेतिहर क्रान्ति के द्वारा ही कर सकते हैं, जो दास या बन्धनयुक्त किसान को स्वतन्त्र स्वामी बना देगी। अर्थात् यह क्रान्ति ठीक वैसी ही होनी चाहिए, जैसी देहातों में १७८९ की फ्रान्सीसी क्रान्ति थी।" लेकिन क्रान्ति के बाद क्या होता है? किसान को समाजवादी विकास में किस प्रकार अंगभूत करना है? हम प्रूधों और मार्क्स के दृष्टिकोणों में व्यापक विपरीतता पहले ही देख चुके हैं। क्या एक साथ रखकर इन मतभेदों पर विचार किया जा सकता है?

एंगेल्स ने इस सम्बन्ध में दो अलग-अलग उत्तर दिये। जहाँ तक छोटे-छोटे किसानों का सम्बन्ध था, उन्होंने कहा "हम उन्हें जल्दी अपने पक्ष में तभी कर सकते हैं, जब हम उनसे ऐसे वादे करें जिन्हें हम साफ तौर पर पूरा न कर सकें। सबसे पहले हमें छोटे-छोटे किसानों की निश्चित रूप से बर्बादी दिखाई पड रही है, किन्तु हमें किसी भी हालत

में हस्तक्षेप द्वारा उसमें तेजी लाने की जरूरत नहीं है। दूसरे, यह भी उतना ही स्पष्ट है कि हमें जब राज्य की सत्ता मिलेगी तो हम छोटे-छोटे किसानों को जबरन बेदखल न करेंगे (मुआवजे के साथ या मुआवजे के बिना इसका कोई प्रश्न नहीं है) जैसा कि हमें बड़े-बड़े भूमिपतियों के साथ करना है। छोटे किसानों के सम्बन्ध में हमारा सबसे पहला काम यह होगा कि हम उनके निजी उत्पादन और निजी स्वामित्व को सामूहिक उत्पादन एवं स्वामित्व के रूप में परिवर्तित कर देंगे—किन्तु हम यह कार्य जबर्दस्ती नहीं, बल्कि आदर्श प्रस्तुत करके और सामाजिक सहायता देकर करेंगे।"

सन् १८७५ में एंगेल्स ने अपने 'रूस में सामाजिक सम्बन्ध' शीर्षक लेख में लिखा : "फिर भी यह निर्विवाद है कि इस सामुदायिक रूप (Communal f rm) को बड़े रूप में बदला जा सकता है। लेकिन यह तभी सम्भव है, जब इसे उस समय तक सुरक्षित बनाये रखा जाय जब तक स्थिति इस परिवर्तन के लिए उपयुक्त न हो जाय और इसमें विकास की ऐसी क्षमता रहे कि किसान अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ मिलकर खेती करने लगें। ऐसी स्थिति में रूसी खेतिहर इस ऊँचे स्तर पर पहुँच जायगा और छोटे पैमाने के कुटुम्ब स्वामित्व के मध्यवर्ती स्तर में जाने से उसे छुट्टी मिल जायगी। किन्तु यह तभी हो सकता है, जब इस सामान्य सम्पत्ति की समाप्ति के पूर्व पश्चिम में सफल सर्वहारा क्रान्ति हो जाय—ऐसी क्रान्ति हो जाय जो रूसी कृषक को ऐसे परिवर्तन की स्थिति और विशेषकर उसकी पूरी कृषि व्यवस्था में क्रान्ति के लिए आवश्यक भौतिक साधनों के सम्बन्ध में व्यवस्था कर दे।"

यह स्पष्ट है कृषि को सामूहिक सम्पत्ति बनाना और खासतौर से है सामूहिकीकरण और आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए 'सामाजिक सहायता' और 'भौतिक साधन'। आशा की जाती थी कि पश्चिम के औद्योगिक देशों में क्रान्ति होने से अर्ध विकसित कृषि-प्रधान देशों के लिए सहायता की राह भी निकलेगी। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय

सहायता परिवर्तन के लिए महत्त्वपूर्ण यन्त्र बन गयीं। ऐसी ही सहायता के विरुद्ध आज के मार्क्सवादी प्राय आवाज उठाते रहते हैं। देश के भीतर भी उद्योग से कृषि के लिए सामाजिक सहायता दी जानी थी।

रूसी अर्थ शास्त्री प्रेओब्राजेन्स्की ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "समाजवादी व्यवस्था अपनानेवाला देश आर्थिक दृष्टि से जितना ही पिछडा हुआ तथा निम्न मध्यमवर्गीय होगा और क्रान्ति से सर्वहारा को मिलनेवाला संचित धन जितना ही कम होगा, वह समाजवादी राज्य समाजवाद आने के पूर्व के आर्थिक साधनों के विदोहन के लिए उतना ही अधिक बाध्य होगा।"

कम्युनिस्टों ने इस किंकर्तव्यविमूढता का निवारण तानाशाही अपनाकर किया है। यह सोशल डेमोक्रेट (सामाजिक लोकतन्त्रवादी) ही हैं, जो सन्तोषप्रद उत्तर प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं।

छोटी-छोटी सम्पत्ति की विद्यमानता से समाजवादी व्यग्र बने रह गये। बडी सम्पत्ति को तो वे समझते थे, क्योंकि वे उसे छीन सकते थे, उसका राष्ट्रीकरण कर सकते थे, लेकिन छोटी सम्पत्ति का क्या हो? एंगेल्स ने कहा था "ऐसे खेतिहर को पार्टी में रहने की कोई जरूरत नहीं है, जो हमसे इस बात की आशा रखे कि हम उसकी छोटी सम्पत्ति उसके साथ बराबर बनी रहने दें।" कौट्स्की ने इससे भी दो कदम आगे बढकर कहा "हमारी नीति में खेतिहर का पक्ष उतना ही कम ग्रहण किया जाना चाहिए, जितना जंकर (कुलीन जर्मन) का।"

फ्रांसीसी सुधारवादियों ने छोटी खेती के सम्बन्ध में यह समझाने का प्रयास किया कि वह छोटे उपकरण (tool) से अधिक और कुछ नहीं है और वैसी ही है, जैसे लकडी, पत्थर आदि पर नक्काशी करनेवाले के लिए रुखानी और चित्रकार के लिए ब्रुश। इसके लिए उन्हें कोपभाजन होना पडा और उनके प्रयास के सम्बन्ध में यह कहा गया कि वे छोटी खेती रूपी लघु उपकरण को भी 'निषिद्ध वस्तुओं की तरह चोरी से छिपाकर अन्य व्यावसायिक उपकरणों के साथ समूहवाद के अधिकार-क्षेत्र में

रखना चाहते हैं। थीरेस ने यह दिखाने का प्रयास किया कि बड़ी सम्पत्ति और छोटी सम्पत्ति में अवस्था (Degree) का ही नहीं प्रकार (Kind) का भी अन्तर है : 'एक पूँजी का रूप है और दूसरा श्रम का रूप।' थीरेस का यह प्रयास विफल रहा।*

मार्क्स के बाद कम्युनिस्ट प्रवक्ताओं अर्थात् लेनिन स्टालिन माओ-त्से तुंग और टीटो की खेतिहरसम्बन्धी प्रवृत्तियों की रूपरेखा मैंने अपनी पुस्तक 'सोशलिज्म एण्ड पीजैन्ट्री (समाजवाद और कृषक वर्ग)' में प्रस्तुत की है। मैं यहाँ उन तर्कों को न दुहराऊँगा। कम्युनिस्ट देशों में कृषक को विकसित हो रही समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल बनाने में अनुभव होनेवाली कठिनाइयों तथा ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की कीमत पर पूँजी की वृद्धि पर कभी भी निर्णय रूप से विचार नहीं किया गया। अन्य कठिनाइयों की तरह उन पर भी रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है। एशिया के देश जितने ही अधिक लोकतान्त्रिक ढंग से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन करना चाहेंगे उनके लिए ये कठिनाइयाँ और समाजवाद तथा खेतिहर के बीच सम्बन्ध उतने ही मौलिक महत्त्व के प्रश्न बन जायेंगे।

यदि खेतिहर अर्थ-व्यवस्था का आधुनिकीकरण हो सके या अतिरिक्त कृषक जनसंख्या दूसरे आर्थिक क्षेत्रों में समुचित रूप से लगायी जा सके, तो कोई समस्या न रह जायगी। लेकिन इस समाधान के लिए बड़े पैमाने पर विनियोजन की आवश्यकता होगी। यदि विनियोजन विदेशी सहायता के रूप में हो तो भी समस्या का समाधान हो जाता है। किन्तु जहाँ साधनों को देश में ही प्राप्त करना है, वहाँ दो प्रकार की परिस्थितियाँ आती पड़ती हैं : १ पूँजी वृद्धि परम्परागत अर्थ-व्यवस्था अर्थात् खेतिहर की कीमत पर न हो; २ चूँकि खेतिहरों के उत्पादन तथा आय को बढ़ाना आवश्यक है और आधुनिकीकरण के लिए साधन

---

*देखिए मित्रानी : मार्क्स अगेन्स्ट दि पीजैन्ट।

सीमित हैं और चूंकि समाज के हर वर्ग को आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अधिक बचत और विनियोजन में अपना योग प्रदान करना है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि परम्परागत उत्पादन विधियों को उत्पादनशील बनाया जाय। इस उद्देश्य के लिए कौन-कौन से परम्परागत (Institutional) तथा विचारगत परिवर्तन करने पड़ेंगे, यह विचारणीय है।

किन्तु एशियाई देशों में जहाँ कृषकों की ही प्रधानता है, समाजवादियों ने खेतिहर और अर्थ-व्यवस्था के बीच कोई सन्तोषप्रद सम्बन्ध नहीं निकाला। यह सभी स्वीकार करते हैं कि आचार्य नरेन्द्रदेव भारत के एक बड़े राष्ट्रवादी और समाजवादी कर्णधार थे। मार्क्सवादी समाजवाद के प्रति उनकी निष्ठा अटूट थी। फिर भी उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में 'खेतिहरवाद के खतरे' के सम्बन्ध में चेतावनी दी थी

"एक और खतरा है जिसकी ओर मैं यहाँ ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। यह खेतिहरवाद का खतरा है, जो सभी प्रश्नों को कृषक वर्ग का ही ध्यान रखकर सकीर्ण और वर्गवादी दृष्टि से देखता है। इसके सिद्धान्त इस आदर्श से उद्भूत हुए हैं कि हमारे आथिक विकास में कृपक के रूप को कायम रखना पड़ेगा। यह ग्रामप्रधान लोकतन्त्र में विश्वास करता है, जिसका मतलब है भूमि के स्वामी कृपकों का लोकतन्त्र। यह समझता है कि युद्ध की भावना का अन्त करने और विश्व-शान्ति के लिए ऐसा शासन अधिक उपयुक्त है। यह मजदूर को संरक्षण देगा, क्योंकि मजदूर की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सरकार का प्रतिनिधिक रूप भी स्वीकार करेगा, क्योंकि कई वर्गों ने इस रूप को पसन्द किया है। इसका कार्यक्रम किसी सिद्धान्त (Theory) पर आधृत नहीं है और न ही यह किसी खास कट्टर मत को स्वीकार करता है, बल्कि यह सभी विचारों के तत्त्वों को मिलाकर बना है। इसका दृष्टिकोण आधुनिक विचारों से प्रभावित मध्यम किसान का होता है और निम्न बुर्जुआ व्यवस्था पर आधृत है। अपने प्राकृतिक रूप में यह सकीर्ण भूमि वितरणवाद (Agrarianism) है

और सभी सम्भावित स्थानों में किसानों को सहायता देने की बात सदी इच्छा रखता है। ऐसा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है और उस प्रवृत्ति को आश्रय पहुँचाता है, जो छोटे किसानों को बड़ा भारी महत्व दे सकती है।*
वैज्ञानिक दृष्टिकोण उन सामाजिक परिवर्तन के नियमों द्वारा निश्चित होंगे जो भविष्य की सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में हर वर्ग को उसका उचित स्थान देता है। यह सामाजिक न्याय के लोकतान्त्रिक विचारों के अनुसार सर्वोच्च लेनिन उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन के नियमों से नियन्त्रित होगी। लेनिन के शब्दों में वास्तविक उद्देश्य खेतिहर वर्ग के प्रधान समूह को समाजवाद की भावना की शिक्षा देना और धीरे-धीरे कृषक वर्ग के अधिकांश को सहकारी समितियों के माध्यम से समाजवादी निर्माण की पंक्ति में लाना होगा। *

सामाजिक परिवर्तन के वास्तविक नियम क्या हैं? वे किस प्रकार काम करते हैं? कृषक वर्ग का अर्थ-व्यवस्था में उचित स्थान क्या है? यह स्थान कौन निर्धारित करता है? जिस लोकतान्त्रिक व्यवस्था में खेतिहरों का प्राधान्य हो, वह व्यवस्था उसे खेतिहरों की मान्यताओं और परम्पराओं को क्यों प्रतिबिम्बित नहीं करती? क्या क्रान्तिकारी विधि स्वतंत्रता और लोकमत के अनुरूप है? क्या खेतिहर की समस्त सम्पत्ति और स्वतंत्रता को सामूहिक कृषि-व्यवस्था में विलीन कर दिया जाय?

समाजवादियों की दृष्टि से खेतिहर और आर्थिक विकास से सम्बन्ध की मूल समस्या विकास के उधार दबाव की पूँजीवाद के साथ समरूपता के कारण छिपी रह गयी। पूँजीवाद के उदार पक्ष का वर्णन करना आवश्यक हो सकता है किन्तु क्या आर्थिक विकास भारी कठिनाइयाँ नहीं हैं? क्या लोकतंत्र डेमोक्रेसी के ढाँचे में आर्थिक विकास उधार दबाव से मुक्त रहता है? यह प्रश्न शायद ही किया गया हो।

एक परम मेधावी समाजवादी मेरी ऐसा अध्ययनमर्म ने अपनी

---

* नरेन्द्रदेव सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्यूशन (१९४६) पृष्ठ ५१

पुस्तक 'दि एक्युमुलेशन ऑफ कैपिटल' (पूँजी-सचय) में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने लिखा है "पूँजीवाद तथा साधारण वस्तु उत्पादन के बीच सघर्ष का सामान्य परिणाम यह होता है कि स्वाभाविक अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर वस्तु-प्रधान अर्थव्यवस्था की प्रतिष्ठा करके पूँजी स्वय वस्तुप्रधान अर्थ-व्यवस्था का स्थान ले लेती है। गैर पूँजीवादी सगठन पूँजीवाद के लिए उर्वर भूमि प्रदान करते हैं, बल्कि यों कहा जाय कि पूँजी ऐसे सगठनों के ध्वसावशेष पर पुष्ट होती है। यद्यपि गैरपूँजीवादी अवस्था सचय के लिए अनिवार्य है, तथापि सचय गैरपूँजीवाद की कीमत पर ही बढता है और अन्तत उसे ही समाप्त कर देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से पूँजी-सचय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और पूँजीवाद से पूर्व की उन उत्पादन विधियों के बीच जठराग्नि जैसा है, जिनके बिना पूँजी-सचय नहीं हो सकता और जिन्हे पूँजी-सचय अन्तत तोड-मरोडकर आत्मसात् कर लेता है। इस प्रकार पूँजी गैर-पूँजीवादी व्यवस्था के बिना सचित नहीं हो सकती और न ही दूसरी ओर यह अपने साथ उनके सतत अस्तित्व को बर्दाश्त कर सकती है। गैर-पूँजीवादी उत्पादन विधियों के केवल लगातार और क्रमबद्ध विघटन से ही पूँजी-सचय सभव होता है।"

इस प्रकार का सचय क्या एकमात्र पूँजीवाद की ही विशेषता है या कमोबेश समाजवादी व्यवस्था तक में सचय का यह स्वाभाविक गुण निहित है? एशिया के देशों के लिए यह प्रश्न बडा ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आर्थिक विकास में अभाव और अवगति का निवारण पूँजी की अधिक प्राप्ति तथा विनियोजन से ही हो सकता है।

विकास की प्रारम्भिक समस्याओं का निवारण हो जाने के बाद यदि पश्चिमी यूरोप की तरह समाजवादियों को कार्य-सम्पादन करना पड़े, तो ये सब प्रश्न उपस्थित ही न होंगे। यदि समाजवादियों को विकसित देशों से भारी सहायता मिले, जैसा कि मार्क्स ने रूस के लिए सोचा था, तब भी शायद कठिनाइयाँ हल्की हो जायँ। लेकिन जब समाजवादी अपने

और नयी सम्भावित स्थानों में किसानों को बसाने की बहुत बड़ी इच्छा रखता है। ऐसा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है और उस प्रवृत्ति को बढ़ावा पहुँचाता है जो छोटे किसानों को बड़ा भारी महत्व दे सकती है।"
वैज्ञानिक दृष्टिकोण उस सामाजिक परिवर्तन के नियमों द्वारा निश्चित होगा जो भविष्य की सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में हर वर्ग को उसका उचित स्थान देता है। यह सामाजिक न्याय के लोकतान्त्रिक विचारों के अनुसार चलेगा लेकिन उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन के नियमों से नियन्त्रित होगी। लेनिन के शब्दों में वास्तविक उद्देश्य खेतिहर वर्ग के प्रधान समूह को समाजवाद की भावना की शिक्षा देना और धीरे-धीरे कृषक वर्ग के अधिकांश को सहकारी समितियों के माध्यम से समाजवादी निर्माण की पंक्ति में लाना होगा। *

सामाजिक परिवर्तन के वास्तविक नियम क्या हैं? वे किस प्रकार काम करते हैं? कृषक वर्ग का अर्थ-व्यवस्था में उचित स्थान क्या है? यह स्थान कौन निर्धारित करता है? जिस लोकतान्त्रिक व्यवस्था में खेतिहरों का प्राधान्य हो, वह व्यवस्था छोटे खेतिहरों की भावनाओं और परम्पराओं को क्यों प्रतिबिम्बित नहीं करती? क्या क्रान्तिकारी विचार स्वतन्त्रता और लोकतंत्र के अनुरूप हैं? क्या खेतिहर की समस्त सम्पत्ति और स्वतन्त्रता को सामूहिक कृषि-व्यवस्था में विलीन कर दिया जाय?

समाजवादियों की दृष्टि से खेतिहर और आर्थिक विकास में सम्बन्ध की मूल समस्या विकास के ऊपर दबाव की पूँजीवाद के साथ समरूपता के कारण छिपी रह गयी। पूँजीवाद के सपक्ष पक्ष का वर्णन करना आवश्यक हो सकता है किन्तु क्या आर्थिक विकास भारी कठिनाइयों नहीं है? क्या सोशल डेमोक्रेसी के तत्वावधान में आर्थिक विकास ऊपर दबाव से मुक्त रहता है? यह प्रश्न शायद ही किया गया हो।

एक परम मेधावी समाजवादी नेमी रोम्प उसमन्मर्ता ने अपनी

---

* लेनिन : सोशलिज्म एण्ड पेजेण्ट रिवोल्यूशन (१९) पृ ५१।

पुस्तक 'दि एक्युमुलेशन ऑफ कैपिटल' (पूँजी-सचय) में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने लिखा है "पूँजीवाद तथा साधारण वस्तु उत्पादन के बीच सघर्ष का सामान्य परिणाम यह होता है कि स्वाभाविक अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर वस्तु-प्रधान अर्थव्यवस्था की प्रतिष्ठा करके पूँजी स्वय वस्तुप्रधान अर्थ-व्यवस्था का स्थान ले लेती है। गैर-पूँजीवादी सगठन पूँजीवाद के लिए उवर भूमि प्रदान करते हैं, बल्कि यों कहा जाय कि पूँजी ऐसे सगठनों के ध्वसावशेष पर पुष्ट होती है। यद्यपि गैरपूँजीवादी अवस्था सचय के लिए अनिवार्य है, तथापि सचय गैरपूँजीवाद की कीमत पर ही बढता है और अन्तत उसे ही समाप्त कर देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से पूँजी-सचय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और पूँजीवाद से पूर्व की उन उत्पादन विधियों के बीच जठराग्नि जैसा है, जिनके बिना पूँजी-सचय नहीं हो सकता और जिन्हें पूँजी-सचय अन्तत तोड मरोडकर आत्मसात् कर लेता है। इस प्रकार पूँजी गैर-पूँजीवादी व्यवस्था के बिना सचित नहीं हो सकती और न ही दूसरी ओर यह अपने साथ उनके सतत अस्तित्व को बर्दाश्त कर सकती है। गैर-पूँजीवादी उत्पादन विधियों के केवल लगातार और क्रमबद्ध विघटन से ही पूँजी-सचय सभव होता है।"

इस प्रकार का सचय क्या एकमात्र पूँजीवाद की ही विशेषता है या कमोबेश समाजवादी व्यवस्था तक में सचय का यह स्वाभाविक गुण निहित है? एशिया के देशों के लिए यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आर्थिक विकास में अभाव और अवगति का निवारण पूँजी की अधिक प्राप्ति तथा विनियोजन से ही हो सकता है।

विकास की प्रारम्भिक समस्याओं का निवारण हो जाने के बाद यदि पश्चिमी यूरोप की तरह समाजवादियों को कार्य-सम्पादन करना पड़े, तो ये सब प्रश्न उपस्थित ही न होगे। यदि समाजवादियों को विकसित देशों से भारी सहायता मिले, जैसा कि मार्क्स ने रूस के लिए सोचा था, तब भी शायद कठिनाइयाँ हल्की हो जायँ। लेकिन जब समाजवादी अपने

को उपलब्ध पाते हैं (जैसा कि एशिया के बहुत-से देशों में आज हम देख रहे हैं) और उन्हें बाहर से बहुत सीमित सहायता प्राप्त होती है तब यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ऐसा मार्क्सवादियों द्वारा विश्लेषित प्रक्रिया केवल पूँजीवाद की ही विशेषता है या प्रारम्भिक विकासक्रम के सभी देशों में विद्यमान है।

एंगेल्स ने और भी सूक्ष्म विश्लेषण किया है : विशाल उद्योग का यह अनिवार्य परिणाम है कि यह जिस विधि से अपना अतिरिक्त बाजार तैयार करता है, उसी विधि से उस बाजार को नष्ट भी कर देता है। श्रमिकों के घर उद्योगों के बाजार को नष्ट करके ही यह इस बाजार का निर्माण करता है। लेकिन इस उद्योग के बिना श्रमिक जीवित नहीं रह सकते। श्रमिक के रूप में वे बर्बाद हो जाते हैं, उनकी क्रय-शक्ति घटकर निम्नतम स्तर पर आ जाती है और तब स्थापित उद्योगों के लिए वे तब तक अपना बाजार न प्रस्तुत कर सकेंगे जब तक वे सर्वहारा होकर नयी स्थिति में न आ जायँ।

विशाल उद्योग की यह मार और पेट क्या उसकी अपनी विशेषता है या यह केवल पूँजीवादी सन्दर्भ में ही दिखाई पड़ती है ? किसी लोकतान्त्रिक समाज में इसको भुगतने को बर्दाश्त करने के लिए कौन तैयार हो ! विशेषज्ञों ने सिद्ध किया है कि आर्थिक विकास और औद्योगीकरण जनसंख्या की वृद्धि को जन्म देते हैं। इस प्रकार कृषि प्रधान जनसंख्या अपेक्षाकृत घटती जाती है, किन्तु पूर्ण रूप से उद्योगों में नहीं खप पाती। आर्थिक परिवर्तन के अन्त में जो भी लाभ हो एशिया के लिए अन्तिम परिणाम के बजाय प्रक्रिया या तरीके का अधिक महत्त्व है। और प्रक्रिया कभी कठिनाई-रहित नहीं होती।

सन् १८ १ में अमेरिका के किसान संघ के एक नेता सिनेटर केपर ने लिखा : 'आज का अमेरिकी किसान आज से पचास या एक सौ वर्ष पहले के अपने पूर्वज से बिलकुल भिन्न प्रकार का व्यक्ति है। आज भी अनेक ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ जीवित हैं जिन्हें स्मरण है कि एक समय किसान

अधिक अंश में निर्माता थे, अर्थात् वे अपने निजी उपयोग के लिए अनेक औजार बनाते थे। हर किसान के पास औजारों का संग्रह रहता था, जिनसे वह लकड़ी का पाँचा, भूमि को बराबर करने का पाटा या सुहागा (हेंगा), कुदाल का बेंट, हल की मुठिया, गाडी का आरा और दूसरी चीजें बनाता था। उसके बाद किसान पटसन, ऊन और कपास का उत्पादन करने लगा। ये चीजें फार्म पर ही तैयार की जाती थीं, उनसे सूत, सूत से कपडा और कपड़े से पहनने का वस्त्र बनता और फिर पहना जाता था। हर फार्म में लकड़ी और लोहे का छोटा वर्कशाप होता था और घरों में धुनाई का यन्त्र और करघे रहते थे, दरियाँ और गलीचे बुने जाते थे और ओढने बिछाने के तरह-तरह के कपड़े तैयार किये जाते थे। हर फार्म में बत्तखें रहती थीं, जिनके छोटे छोटे पर से भरे हुए गद्दे और तकिये माँग के अनुसार बाहर भेजे जाते थे और जो कुछ बच रहता था, उसे पास के बाजार में बेच दिया जाता था। जाड़े के दिनों में गेहूँ और आटा तथा अनाज की चीजें बडी बडी गाडियों में भरकर, जिन्हें ६ या ८ घोड़े खींचते थे, सौ दो सौ मील दूर बाजार में ले जायी जाती थीं और वहाँ उन्हें बेचकर अगले वर्षभर के लिए किराने की और सूखी चीजें आदि ली जाती थीं। इसके अलावा किसानों में ही अनेक मिस्त्री थे। एक गाडी के तैयार करने में एक वर्ष से दो वर्ष तक का समय लगता था। उसमें लगनेवाली चीजें आसपास से प्राप्त करनी पडती थीं। गाडी में कौन-सी लकडी लगेगी, यह करार में स्पष्ट कर दिया जाता था। यह लकडी किसी खास ऋतु में ली जाती थी, कुछ समय तक उसे सुखाया जाता था। इस प्रकार सब चीजों को एकत्र किया जाता था और गाडी बन जाती थी। करार करनेवाले दोनों पक्ष जानते थे कि इसकी एक-एक लकडी कहाँ से आयी है और उसे कितने समय तक पकाया गया है। जाड़े के दिनों में पडोस का बढ़ई अगले वर्ष बननेवाले भवन के लिए खिडकियाँ, दरवाजे, कारनिस या टोंटे आदि बनाता था। जब शरत् का

खेतिहर की कामधेनु

अधिक अंश में निर्माता थे, अर्थात् वे अपने निजी उपयोग के लिए अनेक औजार बनाते थे। हर किसान के पास औजारों का संग्रह रहता था, जिनसे वह लकडी का पाँचा, भूमि को बराबर करने का पाटा या सुहागा (हेंगा), कुदाल का बेंट, हल की मुठिया, गाडी का आरा और दूसरी चीजें बनाता था। उसके बाद किसान पटसन, ऊन और कपास का उत्पादन करने लगा। ये चीजें फार्म पर ही तैयार की जाती थीं, उनसे सूत, सूत से कपडा और कपडे से पहनने का वस्त्र बनता और फिर पहना जाता था। हर फार्म में लकडी और लोहे का छोटा वर्कशाप होता था और घरों में धुनाई का यन्त्र और करघे रहते थे, दरियाँ और गलीचे बुने जाते थे और ओढने बिछाने के तरह-तरह के कपड़े तैयार किये जाते थे। हर फार्म में बत्तखें रहती थीं, जिनके छोटे छोटे पर से भरे हुए गद्दे और तकिये माँग के अनुसार बाहर भेजे जाते थे और जो कुछ बच रहता था, उसे पास के बाजार में बेच दिया जाता था। जाड़े के दिनों में गेहूँ और आटा तथा अनाज की चीजें बडी बडी गाड़ियों में भरकर, जिन्हें ६ या ८ घोड़े खींचते थे, सौ-दो सौ मील दूर बाजार में ले जायी जाती थीं और वहाँ उन्हें बेचकर अगले वर्षभर के लिए किराने की और सूखी चीजें आदि ली जाती थीं। इसके अलावा किसानों में ही अनेक मिस्त्री थे। एक गाडी के तैयार करने में एक वर्ष से दो वर्ष तक का समय लगता था। उसमें लगनेवाली चीजें आसपास से प्राप्त करनी पडती थीं। गाडी में कौन-सी लकडी लगेगी, यह करार में स्पष्ट कर दिया जाता था। यह लकडी किसी खास ऋतु में ली जाती थी, कुछ समय तक उसे सुखाया जाता था। इस प्रकार सब चीजों को एकत्र किया जाता था और गाडी बन जाती थी। करार करनेवाले दोनों पक्ष जानते थे कि इसकी एक एक लकडी कहाँ से आयी है और उसे कितने समय तक पकाया गया है। जाड़े के दिनों में पडोस का बढई अगले वर्ष बननेवाले भवन के लिए खिडकियाँ, दरवाजे, कारनिस या टोंटे आदि बनाता था। जब शरत् का

खेतिहर की कामधेनु

पाला शुरू होता था, मोची किसान के घर पर आता था और वहाँ अपने लिए निर्धारित स्थान पर बाड़े में परिवार के लिए जूते बनाता था। ये सब चीजें किसानों के बीच होती थीं और सब का अधिकांश खेत में पैदा चीजों से चुकाया जाता था। जाड़ा आते ही मांस के लिए पशुओं का वध भी शुरू हो जाता था। परिवार के लिए समूचे वर्ष के लिए मांस तैयार किया जाता और सुरक्षित रख दिया जाता था। गेहूँ साफ किया जाता था और एक बार में इतना ही साफ किया जाता था, जितना परिवार की आवश्यकता पूर्ति के लिए पर्याप्त हो न कि इतना अधिक कि उसका एक भी दाना बर्बाद हो। हर चीज बचायी और काम में लायी जाती थी। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था का एक परिणाम यह होता था कि खेती का काम चलाने के लिए तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम नकद रकम की जरूरत पड़ती थी। अनुपाततः एक ही डालर की रकम इतनी अधिक थी कि उन दिनों के लगते बड़े किस्म भी पारिश्रमिक, औजारों की मरम्मत तथा दूसरे आकस्मिक नकद खर्चों की पूर्ति उससे कर लेते थे।"७०

उपर्युक्त चित्रण में निस्सन्देह रूप से आदर्श दिखाया गया है। इसमें ऐसा सीधा सादा जीवन चित्रित किया गया है, जैसा जीवन कभी भी नहीं था। और रहा भी हो तो शायद थोड़े-से भाग्यवानों का। यह भी सत्य है कि ऐसे जीवन में कठिनाई और अकेलेपन का दूसरा पक्ष भी था। किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी इस वर्णन में एक बहुत महत्त्व-पूर्ण सत्य है। इस प्रकार के वर्णन दूसरे देशों के सम्बन्ध में भी किये जा सकते हैं। कृषक का जीवन विविध गतिविधियों को एक साथ मिलाता है। न केवल परिवार विविध उत्पादक कार्यों में लगा रहता है, बल्कि पूरा गाँव-समाज ही किसान परिवारों के लिए आवश्यक सारे कार्य करता है। परिवार अनेक कार्यों में लगा होता है और ये परिवार प्रायः आत्मनिर्भर गाँव समाजों से जुड़े रहते हैं।

[illegible]

आर्थिक विकास, द्रव्य को कार्यकलापों का आधार बनाना, विशिष्टीकरण ये सब पुराने और घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए सम्बन्धों को समाप्त कर देते हैं। वंचित और रहित किये जाने की प्रक्रिया से बच निकलना असम्भव है। ब्रिटिश वस्तु निर्माताओं ने भारत के गाँवों में जो कहर बरपा किया, उसका रमेशचन्द्र दत्त तथा दूसरे लोगों ने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है। मशीन से बनी वस्तुओं की जब भी गाँवों में हाथ से बनी चीजों से प्रतियोगिता होगी, तभी वह आफत आयेगी। उच्च शिल्प-विज्ञान अपने से नीचे स्तर की यन्त्र-पद्धति के उत्पादन को तहस-नहस कर देता है, यह अविकल प्रक्रिया है। साम्राज्यवाद का अपराध यह है कि उसके अन्तर्गत औद्योगीकरण का लाभ और उद्योगों से होनेवाली बर्बादी दो अलग अलग देशों में होती है, लाभ शासक देश को होता है और बर्बादी उपनिवेश की होती है। किन्तु उस देश में भी क्षेत्र और वर्ग के आधार पर ऐसा विभेद होता है। एक अवधि, उदाहरण के लिए एक सौ वर्ष, में स्थिति में अन्तत समानता आती है। इसीलिए समाजवादी पूँजीवाद की बुराइयों के विरोधी हैं। लेकिन समाजवादी पुनर्निर्माण में भी ये खतरे विद्यमान है। विशेष सरक्षात्मक कार्रवाइयों द्वारा उनसे गाँवों को बचाया जा सकता है और इन कार्रवाइयों के अन्तर्गत नयी औद्योगिक पद्धतियों की अवस्था (Degree) ही नहीं, अपितु आकार (Form) में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। सामाजिक लोकतन्त्र इस दिशा में मार्गदर्शक विचार की आवश्यकता समझता है।

किसान को उसीकी भलाई तथा सामाजिक प्रगति के लिए बहुधन्धे के गहन जाल से मुक्त करना पड़ेगा। इससे अतीत में कुछ लोगों को आराम और निश्चिन्तता का सरल जीवन मिला होगा, किन्तु आज वे पुराने सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं और बहुसख्यक लोगों के लिए वे भारस्वरूप हैं। खेतिहर को आर्थिक विकास की कठिनाइयों का सामना अकेले और साधन-रहित होकर नहीं करने दिया जा सकता। उसका उत्पादन इस तरह का है कि वह आसानी से दोहरे दबाव का शिकार हो जाता है।

थी रायट मित्र द्वारा किया गया निम्नलिखित वर्णन यहाँ अप्रासंगिक न होगा : "किसान पर मूल्य का बन्धन कसता गया। जब मन्दी (इस शताब्दी के चतुर्थ दशक में) शुरू हुई, खेती में काम आनेवाले उत्पादों का थोक मूल्य केवल १५ प्रतिशत गिरा जब कि उत्पादन ८ प्रतिशत कम कर दिया गया। किन्तु खेती में पैदा वस्तुओं का मूल्य ६१ प्रतिशत गिर गया जब कि उत्पादन में केवल ६ प्रतिशत ही कटौती की गयी थी।" अतः कृषि से उत्पादित वस्तुओं तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य गत सम्बन्ध को निश्चित करना आवश्यक है। यह महत्त्व की बात है कि इस प्रकार का सम्बन्ध केवल विकसित देशों में ही निश्चित किया गया है, जहाँ खेतिहरों की समस्या गम्भीर नहीं रह गयी है। जिनको वे अनिवार्य रूप से वसूली नहीं करनी है और पूरी अर्थ-व्यवस्था का पूर्वनियोजित आधार पर संचालन नहीं होना है जैसा कि कम्युनिस्ट देशों में होता है, तो यह आवश्यक हो जायगा कि मूल्य नीति को स्थिर करने के परिणामों पर विचार किया जाय।

स्फूर्तिदायक मानव

ग्रामीण जनता की उत्पादन विधियों के आधुनिकीकरण की बात अक्सर सुनाई पड़ा करती है। ऐसे कार्य के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता है और यदि उतनी पूँजी हो भी तो भी किसानों के खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े और सम्भवतः कृषि पद्धति के देशों के लिए उस आधुनिकीकरण की विधि को एकदम अनुपयुक्त बना देती है। इस क्षेत्र में आगे आनेवाले कुछ समय तक परम्परा से चले आ रहे तरीकों को उत्पादनशील बनाने पर जोर देना आवश्यक है। और यहीं पर ज्यों पीस समाजवादियों की शिक्षा पद्धति के लिए मार्गदर्शक बन जाती है।

आधुनिक यन्त्रों से भारी पैमाने की खेती का धरती पर बहुत बुरा असर होता है। अमेरिका के बारे में जानकार लोगों का कहना है कि "कृषि-योग्य भूमि के कुल क्षेत्रफल का पंचम भाग फिर खेती करने के लायक नहीं रह गया है और तिहाई भाग कृषि क्षमता से वंचित हो गया

है।" अमेरिका और रूस दोनों अपनी भूमि का मनमाना उपयोग कर सकते हैं, किन्तु एशिया के अधिकांश देशों में भूमि का पूर्णत विदोहन हो चुका है और साथ ही भूमि की इतनी कमी है कि उसे फिर से सुधारने, फिर से उपजाऊ बनाने में किसानों को बहुत श्रम और बहुत चिन्ता करनी पड़ेगी। यह ऐसा कार्य है, जिसके लिए कोई भी विस्तीर्ण कृषि-व्यवस्था प्रयास नहीं कर सकती।

उतोपीय समाजवादियों ने ग्रामीण जनता के लिए उपयुक्त विभिन्न सामाजिक-आर्थिक आधारों तथा सामाजिक मूल्यों का विकास किया था। बड़े-बड़े दावों और तर्कों के लिए उतोपीय समाजवादी उतने ही (और शायद उससे भी अधिक) दोषी हैं, जितने दूसरे लोग, किन्तु उनके विचारों को इन सब गलतियों से अलग करके देखा जाय, तो जो कुछ सामने आता है, वह ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए बहुत उपयुक्त है।

उनके स्वाभाविक ढग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, उनकी नीतिपरायणता की चाह, जो वास्तव में मूल्यवान् है। १९१५ में सिडनी वेब ने डाक्टर जान मथाई की पुस्तक की भूमिका में विचार प्रकट किया था "पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में बहुमत से होनेवाले निर्णय का हम बहुत आदर करते हैं। यदि हम 'सहमति के द्वारा सरकार' में विश्वास करते हैं, समाज के द्वारा किये गये निर्णय में हमारी आस्था है, तो भारत के गाँव हमें क्वेकर (शान्तिवादी) की मीटिंग की तरह, बल्कि सम्भवत और ऊँचे विकल्प प्रदान करते हैं। इंग्लैण्ड में हमारे कानून के जानकार और राष्ट्रनायक आज भी एक शताब्दी पूर्व के आस्टिनवादी पाण्डित्य दर्शन के बोझ से लदे हुए हैं, जिसने उन्हें सिखाया है कि कर्तव्य अधिकार का उलटा है, जो अदालती कार्रवाई द्वारा लागू न कराया जा सके, वह अधिकार नहीं है। निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वतन्त्र जनता, पूरे गाँव, किसीके अपने पेशे, परिवार के सदस्यों या भावी पीढ़ियों को बाँधनेवाला कोई कर्तव्य नहीं हो सकता। ब्रिटेन की शुरू की मैनर व्यवस्था की तरह

भारत का गाँव अधिकार के बजाय कर्तव्य पर जोर देता है और उन अधिकारों की सीमा में बँधे रहने के बजाय जिनके आधार पर कोई व्यक्ति स्वत्व के लाभ के लिए कारबार कर सके जनता से शत्रु-भावना रखने में प्रयत्नशील रहता है।"†

भारतीय गाँव के सम्बन्ध में यह मूल्यांकन शायद उस समय भी सही नहीं था जब यह किया गया था। उसके बाद लगभग ४० या उससे अधिक वर्षों में इस दिशा में और भी कम सत्य रह गया है। आज प्रत्येक ग्रामीण 'व्यक्तिवादी पाश्चिम-धर्म' से भरा हुआ है। पुरानी भावनाओं को फिर से जागरित नहीं किया जा सकता। ये भावनाएँ प्राचीन सामाजिक परम्पराओं और सामाजिक वातावरण की कृति थीं। अब वे सामाजिक परम्पराएँ और सामाजिक वातावरण दोनों ही नष्ट हो चुके हैं इसलिए यह भावना भी समाप्त हो गयी है। ग्रामीण समाज में एक नयी भावना लाने और समाज में फिर से प्राण फूँकने की जरूरत है, क्योंकि समुदाय-निर्माण के द्वारा ही खेतिहर उन कठिनाइयों और समस्याओं का ठीक तरह से सामना कर सकता है जो आर्थिक विकास के फलस्वरूप आती हैं भले ही वह समाजवाद द्वारा शुरू किया गया विकास ही क्यों न हो।

इस नयी भावना का रूप हो? इसके पहले एक मूलभूत निर्णय हो जाना जरूरी है। जमींदारी समाप्त हो जाने के बाद गाँवों में क्या समाजवादियों को कम्युनिस्टों की तरह वर्ग-संघर्ष को उत्तेजित करना चाहिए और एक वर्ग को दूसरे के विरुद्ध भड़काने के उस ढंग को अपनाना चाहिए, जो लेनिन से माओ-त्से-तुंग तक निर्धारित हुए हैं। क्या गाँव की एकरसता बरतनेवाली शक्ति समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ता ही हों! यदि यह मार्ग अपनाया जायगा तो लोकतान्त्रिक अधिकारों और समाजवादी मूल्यों की रक्षा नहीं हो सकती। इस स्थिति

---

† जान मथाई : विलेज गवर्नमेंट इन ब्रिटिश इंडिया पृष्ठ १९

रूप से पूरा कम्युनिस्ट रूप आ जायगा—जनवादी न्यायालय होंगे, धनी किसानों (Kulaks) का उन्मूलन होगा, जबरन कर लेंगे और फिर इस कार्य में सहायता के लिए हिंसा होगी। दूसरा रास्ता यह है कि गाँव को पुन सामुदायिक समैक्य और गाँव-समाज की स्वायत्तता स्थापित करने में सहायता दी जाय, जिससे वहाँ प्रत्यक्ष लोकतन्त्र सम्भव हो सके। गाँव और व्यवसाय सबसे छोटे वे सामाजिक संगठन हैं, जिनमें रीति-रिवाज और कार्यकर्ताओं के दमनात्मक दबाव से स्वतन्त्र रहकर मानव सामाजिकता का मुक्तिदायी पाठ पढ़ता है। अपनाये जानेवाले उस विकल्प के द्वारा ही उतोपीय समाजवाद (जिसके विषय में हम अन्यत्र विचार कर चुके है) की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के विषय में निर्णय होगा।

दुर्भिक्ष जाँच आयोग (१८८०) ने कहा था "भारत के पास अपना दरिद्र रक्षा नियम है, किन्तु वह अलिखित है।"* इसका अर्थ यह हुआ कि १८८० के आसपास सामाजिक समैक्य और पारस्परिक उत्तरदायित्व की एक निश्चित भावना थी। भारतीय सिंचाई आयोग (१९०१-३) ने कहा था "हमें बार-बार विश्वास दिलाया गया कि तालाबों की हिफाजत सन्तोषप्रद ढंग से नहीं हो रही है और 'खुदी मरम्मत' का प्राय अन्त हो चुका है। दूसरे लोग इसे बिल्कुल समाप्तप्राय मानते थे। हमारी स्वय यह स्वीकार करने की इच्छा नहीं होती कि एक इतनी उपयोगी परम्परा सचमुच समाप्त हो गयी है।"† १८६९-७० के सार्वजनिक निर्माण आयोग ने इस प्रश्न पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया था और इस व्यवस्था की विद्यमानता के न जाने कितने प्रमाण दिये। इस प्रकार १८७० (या १८८०) और १८९० के बीच इस पुरानी सामुदायिक रीति का अन्त हुआ।

आज सभी लोग सामुदायिक भावना को पुनर्जीवित करने की

* रिपोर्ट, परिशिष्ट ७, पृष्ठ ६५।

† रिपोर्ट, भाग २, पृष्ठ ११२।

आवश्यकता अनुभव करते हैं । पर उस पुरानी परम्परा और पुरानी पुरानी रीति के रूप में फिर से नहीं आ सकती । इसे सहज भावना से अपनाये गये ग्रामीण वातावरण में अनुभव की गयी आकांक्षा को अपनाना श्रेय को जाती और उस के अन्य लोगों के साथ मानव के सम्बन्धों को अर्थपूर्ण बनाती है । इसी उद्देश्य के लिए गांधी से लेकर विनोबा और जयप्रकाश तक हमारे सर्वोदयी समाजवादी बराबर प्रयत्नशील रहे हैं । क्या ग्रामीण समस्याएँ हल की जा सकती हैं क्या परम्परा से चले आ रहे तत्वों को, बिना उस सामाजिक अनुराग के जिसे वे सदा प्रदान करते हैं, उपयुक्त ठीक बनाया जा सकता है ? क्या समाजवादी टेलियर को शिक्षा क्षेत्र के कार्यों में 'वाद्रिग्नवादी पारिवार-दर्शन' के विषय में शिक्षित करने का आग्रह करेंगे ? क्या एकवाक्य करने का कार्य यहीं विशेष हो करेगी ?

गाँव समाज को संगठनात्मक आवश्यकताओं को पर्व-सदर्भ को पेश करके या दर्शों की सांस्कृतिकता द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता । नव समाज के निर्माण की बिना पारस्परिक सहयोग चाहते हैं, न कि अन्दर अन्दर सुलगता हुआ बैर-भाव । क्या अध्यात्म से अनुप्रेरित का आध्यात्मिक धर्मों की स्वतःस्फूर्त स्वीकार्यता का कोई विकल्प हो सकता है ? ग्रामीण इन चीजों को स्वीकार करेगा या नहीं यह अलग प्रश्न है, महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समाजवादी के पास इसका कोई विकल्प है, इससे बचने का कोई उपाय है ?

गाँव-समाज आम तौर पर छिन्न-भिन्न हो गये हैं । गाँव आर्थिक असंतोष और सामाजिक ह्रास का चित्र प्रस्तुत करते हैं । क्या सहयोग की भावना को पुनर्जीवित किये बिना समाजवादी परिवर्तन के लिए प्रयास करना सम्भव है ? यह सच है कि गाँवों में भारी असमानता और अन्याय है उन्हें धीरे-धीरे दूर करना सुधारकों और प्रशासकों का काम है । जब तक गाँवों में परिवर्तनों के लिए सहयोग का वातावरण नहीं बनता तब तक सुधार की कार्रवाइयाँ कागज पर ही रह जायेंगी । प्रश्न है कि यह वातावरण कैसे लाया जाय ।

डेनमार्क में गाँवों को क्रियाशील बनाने में देहाती स्कूलों ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। केवल पढ़ने-लिखने की नहीं, बल्कि सामुदायिक जीवन की शिक्षा को सर्वत्र समाज का उत्तम पोषक माना गया है। चीन से लेकर पेरू तक सभी जगह समझा जाता है कि पारस्परिक सहायता आवश्यक है, किन्तु अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि पारस्परिक सहायता दल आर्थिक स्थिति या राजनीतिक मत पर आधृत विभिन्न कृषक वर्गों और राज्य की भेदभाव पूर्ण कर-नीति, अनिवार्य रूप में सरकार को अन्न समर्पण, 'गाँव से पूँजीवादी तत्त्वों को समाप्त करने के लिए' ऋण वितरण जैसे आर्थिक अस्त्रों के जोर दबाव के बीच सामाजिक कटुता के वातावरण में काम करते हैं या गाँव में सामुदायिक ऐक्य बढ़ाकर।

हमारे खयाल से जोर सामुदायिक जीवन पर दिया जाना चाहिए। एकमात्र रचनात्मक कार्य, गाँव समाज के ढाँचे का पुनर्निर्माण ही सहयोग तथा उस भावना को पैदा कर सकता है, जो परम्परागत तत्त्वों को उत्पादनशील बनाने में सहायक होगी। आधुनिकीकरण आवश्यक है, किन्तु नयी भावना ऐसा सांस्कृतिक वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है, जिसमें बड़े धन-विनियोगों और उच्च शिल्प-पद्धतियों को खपाया जा सके। एशिया में, जहाँ भूमिवालों का अनुपात कम है, जहाँ कृषि प्रधान जनसंख्या के भार के कारण अधिक उत्पादन के लिए गहन प्रयास की आवश्यकता है, यह स्थिति विशेष रूप से है।

अनेक पर्यवेक्षक इजराइल के समाजवादी विकास-क्रमों से बहुत प्रभावित हुए हैं। यहूदी समाजवादी अपनी इस सफलता का आधार यह बताते हैं कि वहाँ जनता ने व्यापक रूप से एक सामान्य मूल्य व्यवस्था, एक जीवन प्रणाली स्वीकार की है, जिससे नयी परम्पराओं का जन्म हो रहा है और नयी रीतियों में तथा नयी-नयी रीति चलानेवालों में अन्तर रहना सम्भव है।

भूदान और ग्रामदान का पूरा कार्यक्रम स्वीकार न भी किया जाय, तो भी उनके पीछे काम करनेवाली भावना में, इस दृष्टि से, नव-

जिस तरह यूरोप में हुआ था, जिसका मैक्सवेबर ने अच्छा विश्लेषण किया है। इस विषय को लेकर भारत के सम्बन्ध में लिखी जानेवाली पुस्तक का अधिक उपयुक्त नाम 'हिन्दू आचार और समाजवाद की भावना' होगा। मैंने तो केवल यह दिखलाने का प्रयास किया है कि त्याग का परम्परागत भारतीय-दर्शन विकास के मार्ग में बडी बाधा नहीं है, यथार्थ में यह भारतीय जीवन के भौतिक पक्ष के साथ बराबर पूर्ण रूप से जुडा रहा है और जैसा कि पिछले एक सौ वर्ष के धार्मिक और सामाजिक सुधारकों, विशेषकर गान्धीजी ने व्याख्या की है, इसमें आधुनिक औद्योगिक समाज के लिए आवश्यक आन्तरिक उत्साह और अनुशासनशीलता प्रदान करने का पूरा सामर्थ्य है।"*

भावना का बडा महत्त्व है। उसे नीतिपरायण, शान्तिवादी मूलतः उतोपीय अर्थात् आदर्शवादी या मिशनरी होना चाहिए। ऐसी भावना विकास को सुन्दरता प्रदान करती है।

एशिया में जो स्थिति विद्यमान है, उसमें गाँव प्रशासन और अर्थ-व्यवस्था की बुनियादी इकाई बना हुआ है। फिर से एकता और स्वायत्तता प्राप्त करने में गाँव की जितनी ही सहायता की जायगी, गाँव का विघटन उतना ही रुकेगा।

प्रक्रियागत अभिव्यक्ति

डाक्टर जान मथाई ने लिखा है "गाँव के प्रधान अधिकारी—मुखिया, जिलेदार और चौकीदार—यद्यपि अब भी प्रशासनिक कार्य करते हैं, तथापि वे गाँव-समाज से अधिक सरकार के सेवक हो गये हैं।"† इस स्थिति को समाप्त करना और बिल्कुल दूसरे रूप में बदलना है।

जैसा कि प्रूधों ने बराबर कहा है, एक गाँव को दूसरे गाँवों के साथ काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए। संघीय भावना का

* दि पेनइस मई १९५६, पृष्ठ ८६।

† वही, पृष्ठ १७।

नयी बस्तियों के बसाने और सहकारी उद्योगों, सार्वजनिक तथा अर्ध सार्वजनिक आर्थिक उद्योगों की व्यवस्था में हाथ होता है (हिस्ट्रैड्रट द्वारा सचालित कुछ कारखाने इसके उदाहरण हैं)। उसका मुख्य कार्य बाजार तैयार कर और पूँजी तथा साख के विभिन्न साधनों को जुटाकर अपने समूह और सस्थान के लाभ तथा सम्पत्ति और आर्थिक कार्यकलापों के क्षेत्र को अधिक-से-अधिक बढाना है। उसकी दृष्टि में उसका कार्य केवल आर्थिक ही नहीं है। वह अपने को समाज के नैतिक मूल्यों का विकास करनेवाला और नयी बस्तियों तथा अपनी सस्था का विस्तार करनेवाला समझता है, और यह एक ऐसा तथ्य है, जिसमें कुछ सत्य है। यद्यपि वह आर्थिक अनुमानों में बडा दक्ष होता है, फिर भी वह उन्हें इन लक्ष्यों के आगे गौण मानता है और दूसरों से यह आशा रखता है कि हमारे कार्यों को वे हमारी ही तरह समझें।" इस प्रकार के नये उपक्रमी की खोज बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए सेवा सहकारी समितियाँ अच्छे व्यक्ति और प्रशिक्षण दोनों प्रदान कर सकती हैं।

कृषि तथा ग्रामोद्योग की कुछ हद तक पारस्परिक निर्भरता को पुनर्जीवित किया जा सकता है। लेकिन यह ऐसा कार्य है, जिसमें कठिनाइयाँ हैं। एक ओर यन्त्रों तथा शिल्प-कौशल में सुधार करना होगा और दूसरी ओर कृषि पर बढती हुई जनसख्या के उत्तरोत्तर अधिक भार को घटाने तथा अधिक लोगों को काम देने और उनकी आय बढाने के लिए औद्योगीकरण में तेजी लानी पड़ेगी। समस्या का सारतत्त्व यही है कि कृषक को किस प्रकार आर्थिक विकास के साथ सम्बद्ध किया जाय।

● ● ●

समाजवादी आन्दोलन के रंग-बिरंगे इतिहास में जल्दी-जल्दी जो विचार बने हैं उनमें कहीं भी व्यवस्थित ढंग से एक साथ नहीं प्रस्तुत किया गया। इस तरह का अध्ययन मनोरंजक होगा।

समाजवादियों, विशेषकर मार्क्सवादियों ने समाजवादी समाज के ब्यौरे पर विचार करना अस्वीकार कर दिया। कार्ल कौत्स्की ने जो बड़ी तीव्र की वह उनकी प्रवृत्ति का एक उदाहरण है : "वे (विरोधी) समाजवादी कामनवेल्थ (सर्वसमान व्यवस्था) को उसी तरह देखते हैं, जिस तरह किसी पूँजीवादी उद्योग, उदाहरणार्थ स्टाक कम्पनी को, जो शुरू की जानेवाली है और लोग जिसकी पूँजी (स्टाक) तब तक लेने के लिए तैयार नहीं होते, जब तक उन्हें विवरण-पत्रिका (प्रासपेक्टस) दिखाकर यह प्रमाणित न कर दिया जाय कि व्यवसाय चल सकेगा और उसमें लाभ होगा। इस प्रकार की धारणा का १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में औचित्य रहा होगा, आज के युग में समाजवादी कामनवेल्थ की इन महानुभाव को जानकारी भी किञ्चित नहीं है।"

पूँजीवाद विकसित हो चुका था, उसकी बुराइयों का पर्दाफाश करना और उसे छिन्न-भिन्न करने में सेना लगाना ये समाजवादियों के लिए मुख्य कार्य थे। इतिहास की शक्तियाँ पूरी शक्ति से समाजवाद की विजय के लिए कार्य कर रही थीं। ऐसी स्थिति में समाजवादी समाज का चित्र तैयार करने में समय बर्बाद करना बिल्कुल व्यर्थ था। समाजवादी समाज के सम्भावित स्वरूप के विषय में अनुमान लगाने को बेकार ही नहीं हानिकर भी माना जाता था। कार्ल कौत्स्की ने कहा था : यह निरर्थक और हानिकर चीज है कि समाजवादी समाज

को लाने और सगठित करने के लिए निश्चयात्मक प्रस्थापनाएँ (Positive propositions) की जायँ। सामाजिक अवस्था का रूप क्या हो, इस सम्बन्ध में प्रस्थापनाएँ वही की जायँ, जहाँ अपना बोलबाला हो और जहाँ की स्थिति को हम अच्छी तरह जानते हो।"

पूरे समाजवादी चिन्तन का मुख्य मौन हेतूपस्थिति (Hypothesis) यह थी कि उत्पादक शक्तियों का विकास पूँजीवाद द्वारा होगा और उनके परिपक्व हो जाने के बाद ही समाजवादियों का प्रवेश होगा। आर्थिक विकास की समस्याओं विशेषकर अर्ध विकसित से विकसित अर्थव्यवस्था के सक्रमण के चरणों की रूपरेखा तैयार करने की ओर समाजवादियों ने ध्यान नहीं दिया। जहाँ समाजवादी काफी समय से सत्तारूढ रहे हैं—जैसे स्वीडेन में—वहाँ वे निस्सन्देह रूप से कल्याण-कारिता की सीमा से बहुत आगे तक बढ़ चुके हैं, किन्तु आर्थिक जीवन में प्रधानता समाजीकरण के बजाय स्थिरता की रही है। इसके अलावा उन्नत देशों में आर्थिक विकास की समस्या उस तरह की नहीं है, जैसी अर्द्धोन्नत देशों में है।

समाजवाद के साहित्य में समाजवादी परिवर्तन की कोई पहले से बनी बनायी मूल योजना नहीं है। मार्क्स ने कहा था "उत्पादन, वितरण, और उपभोग ' सभी पूर्ण के अग हैं, अन्तर एकरूपता के भीतर ही रह सकता है। उत्पादन की और सब बातों से प्रमुखता रहती है। उसीसे आगे का काम बढता है और हर बार नयी प्रक्रिया होती है। केवल 'नीच समाजवाद' ही मुख्य रूप से वितरण के प्रश्नों के चारों ओर चक्कर काटता है।" 'गुरु' के इस कथन के बावजूद अधि-काश समाजवादियो ने उत्पादन पर बहुत ही नाममात्र का ध्यान दिया है और 'मुख्य रूप से वितरण के प्रश्नों के चारों ओर' चक्कर काटते रहे हैं। यही अधिकाश समाजवादियों का गौरव और साथ ही-साथ सीमा बन गया।

एगेल्स ने चेतावनी दी थी "इतिहासरूपी देव सभी देवों से अधिक

गिरती है। वह अपने रथ को युद्ध में ही नहीं, बल्कि 'शान्तिपूर्ण आर्थिक विकास के समय में भी लाशों के ढेर पर दौड़ाता है।'" रथ के मार्ग को, आर्थिक विकास के नियमों का समाजवादियों ने कभी निर्धारित नहीं किया। विकास के मार्ग में स्तालिन के (समाजवादरूपी) जगन्नाथ के रथ के नीचे बलिदान होनेवालों की लाशों का एक ढेर लग गया। किन्तु हम लोगों का, जो लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों को महत्त्व देते हैं उन तरीकों की खोज करनी पड़ेगी जो ऐसी निर्दयता का दमन करें।

जहाँ समाजवादी सत्तारूढ़ होते हैं वहाँ उन्हें (१) उद्योगों इत्यादि के लिए, जो पहले से ही कार्यरत हैं और (२) अर्थव्यवस्था के विकास तथा विस्तार के लिए, उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने के लिए अपनी नीति निश्चित करनी पड़ती है। पहली स्थिति दूसरों से प्राप्ति से सम्बन्धित है और दूसरी 'ऊपर उठने' की स्थिति है। दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और एशिया जैसे महाद्वीप के अल्पविकसित तथा इस प्रकार देशों में उन पर अच्छी तरह ध्यान देने और उनके लिए प्रयास करने की आवश्यकता है।

नीति को निश्चित करने का पहला अवसर प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिमी यूरोप के समाजवादियों को मिला। जैसा कि ओटो बोअर (Otto Bauer) ने कहा है : "मध्य यूरोप में लोकतन्त्र की विजय युद्ध के फलस्वरूप मध्य राष्ट्रों की पराजय के परिणामस्वरूप हुई।" "युद्ध ने जनता को दरिद्र, बुरी तरह दरिद्र बना दिया।" "जिस युद्ध ने लोकतन्त्र को विजयी बनाया उसीने हमें बाध्य करके उस मार्ग पर बढ़ाया जो समाजवाद की ओर ले जाता है।'

बाद में एक के बाद एक दो समाजीकरण आयोग बनाये गये। उनकी रिपोर्टों में जानकारी का ऐसा भण्डार है, जिसका अब लोप नहीं किया गया। इन आयोगों ने 'पूर्ण समाजीकरण' या 'अत्यधिक तेजी से समाजवाद' के विचार को अमान्य कर दिया। 'पूर्ण समाजी-करण' या 'अत्यधिक तेजी से समाजवाद' की व्याख्या की उस नीति

जो लेनिन ने, शायद परिस्थितियों से बाध्य होकर कार्यान्वित किया और तब से जहाँ भी कम्युनिस्ट सत्तारूढ हुए, वहीं उस नीति का पालन किया जा रहा है। आयोगों ने आंशिक समाजीकरण का (जैसे कोयला खदानों के क्षेत्र में) समर्थन किया। उसी नीति को द्वितीय महायुद्ध के बाद ब्रिटेन की मजदूर सरकार ने अपनाया।

समाजीकरण के सम्बन्ध में शुरू के विचार-विमर्शों में समाजीकरण आयोग द्वारा प्रस्तावित सभी कोयला खदानों के राष्ट्रीकरण के मुकाबले जो समस्थित (Horizontal) समाजीकरण है, ऊर्ध्व या लम्बमान (Vertical) समाजीकरण के लिए प्रस्ताव रखे गये। इन प्रस्तावों के अनुसार समाजीकरण खदानों के एक वर्ग में ही करना था और इसके साथ ही लोहा तथा इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग और कोयले का उपयोग करनेवाले अन्य उद्योगों के एक उपयुक्त भाग को समाजी-करण के अन्तर्गत लाना था। ऐसे आंशिक फिर भी सुसम्बद्ध समाजी-करण के समर्थकों का कहना था कि हमारे प्रस्ताव सरकार को इस योग्य बनायेंगे कि वह कोयले, कच्चे लोहे और उनसे बननेवाली चीजों के वास्तविक उत्पादन-व्यय को जान सके। इस प्रकार ये प्रस्ताव अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को, जिनमें वे क्षेत्र भी शामिल हैं, जिन पर निजी स्वामित्व चला आ रहा है, प्रभावशाली ढग से नियन्त्रण में लेने का कार्य भी सरल कर देते हैं। ये प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये गये और अतीत की कारा में ही बन्द रह गये।

इसके बाद दूसरा सुझाव जिसे आर्थिक योजना में विसेल और मोले-नड़ाफ ने प्रस्तुत किया था, यह था कि उत्पादन को सयुक्त प्रयास से अर्थात् अपनी व्यवस्था के मामले में स्वतन्त्र ऐसे सगठनों के द्वारा सुनि-योजित किया जाय, जिनमें मजदूरों और मालिकों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ व्यापारियों तथा उपभोक्ताओं के भी प्रतिनिधि रहें। मजदूरों तथा मालिकों के प्रतिनिधि, जिन्हें समान अधिकार होते, ट्रेड यूनियनों तथा उद्योग मालिक संघ द्वारा चुने जाने थे। शायद इन योजनाओं तथा

लिए कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) के प्रारम्भिक कार्यक्रमों पर नजर डालें, तो हम देखेंगे कि 'उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों का राष्ट्रीकरण' उद्देश्य घोषित किया गया है। यदि ऐसे विचार अब पुराने पड गये हैं, तो यही समय है कि जान-बूझकर उनका परित्याग कर दिया जाय। लॅगड़ाता हुआ समाजीकरण उतना ही या शायद और भी अधिक बुरा है, जितना अत्यधिक तेज राष्ट्रीकरण, जो कम्युनिस्टों की विशेषता है। १९१९ में एक जर्मन समाजवादी प्रोफेसर न्यूरथ द्वारा दी गयी चेतावनी आज भी अर्थ रखती है "यदि अगले कुछ वर्षों में राष्ट्रीकरण की दिशा में क्रमबद्ध कदम उठाने का इरादा किया गया और इस बीच में आंशिक अराजकता बनी रहने दी गयी, तो समाज पंगु हो जायगा, क्योंकि उद्योगों के जो मालिक समाजीकरण की नीति अपनाये जाने के बाद अभी मालिक के रूप में बच गये हैं, वे इसलिए दूरगामी निर्णय न कर पायगे और दूरदर्शी मनोवृत्ति न अपना सकेंगे कि पता नहीं, कब उनका नम्बर आ जाय।" राष्ट्रीकरण का बराबर खतरा अर्थव्यवस्था को पंगु बना दे सकता है।

विवेकपूर्ण समाजीकरण लोकतान्त्रिक समाजवाद की खास विशेषता है। पूर्ण या अत्यधिक तेजी का राष्ट्रीकरण और लोकतन्त्र साथ-साथ नहीं चल सकते। कम्युनिस्टों द्वारा अपनाया गया राष्ट्रीकरण स्वतन्त्रता को कठोरता से सीमित और कठिनाइयों को बढानेवाला है।

समाजीकरण उसीकी चिन्ता करता है जो विद्यमान है, जो स्थापित है और काम कर रहा है। अर्द्धोन्नत देशों के सामने जो वास्तविक कार्य है वह है नवनिर्माण, परम्परागत अर्थव्यवस्था का आधुनिक एवं सक्षम अर्थव्यवस्था में परिवर्तन। इस मामले में पश्चिम के समाजवादियों ने समाजीकरण की तरह विचार की कोई परिपक्वता नहीं दिखायी। वही प्रोफेसर न्यूरथ लिखते हैं "समाज के भौतिक जीवन का स्तर केवल सक्षम अर्थनीति से ऊँचा उठाया जा सकता है। उत्पादन की क्षमताओं और समाज की पूरी आवश्यकताओं से अभिज्ञ होना ही

एक बहुत बडा अश एशिया का होगा। यदि आर्थिक विकास जनसख्या में वृद्धि की गति के मुकाबले अधिक तेजी से नहीं होता और इस प्रकार इस वृद्धि को नहीं रोकता या कम-से-कम नयी कठिनाइयाँ पैदा होने से नहीं रोकता, तो यह जनसख्या-वृद्धि कठिन समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है। जनसख्या के बढने से नगरों की वृद्धि और विस्तार होता है। देहातों में जनसख्या एक प्रतिशत बढती है, तो शहरों में करीब ढाई प्रतिशत और यह ढाई प्रतिशत वृद्धि नगरों में बच्चों के जन्म से ही नहीं, अपितु गाँवों से लोगों के शहरों में आ जाने के कारण भी होती है। नगरों में भी बड़े नगर और भी तेजी से बढते हैं, उनकी जनसख्या-वृद्धि की गति प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत या इससे भी अधिक होती है। नगरों मे इस प्रकार के भारी अभाव, जिनके साथ-साथ तेजी से आथिक विकास नहीं हो रहा है, भयानक परिणाम उपस्थित करेंगे। आर्थिक विकास को इस दोहरे दबाव का सामना करना है।

जनसंख्या-वृद्धि आर्थिक विकास के लिए क्या जटिलताएँ उत्पन्न कर सकती है, इसे कोल और हूवर ने अपने हाल के अध्ययन 'पापुलेशन ग्रोथ एण्ड इकॉनामिक डेवलपमेण्ट इन इण्डिया, १९५६-१९८६' (भारत में १९५६-१९८६ के बीच जनसख्या-वृद्धि तथा आर्थिक विकास) में दर्शाया है। 'जीवन निर्वाह और मृत्यु सम्बन्धी, परिवर्तन का सिद्धान्त प्रकट करता है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप मृत्यु-अनुपात में असाधारण कमी हो जाती है और जन्मानुपात में कमी मृत्यु में कमी होने की तुलना में काफी समय बाद होती है। १८९१ से १९२१ तक की अवधि में भारत में जनसख्या वृद्धि ५ प्रतिशत से थोडी अधिक थी, १९२१ से १९५१ तक की अवधि में जनसख्या ४४ प्रतिशत बढ गयी। 'जीवन निर्वाह और मृत्यु सम्बन्धी महान् क्रान्ति' भारत में पहुँच गयी है।

प्रजनन का अनुपात ऊँचा है, मध्यम है या निम्न, इससे भारी अन्तर हो जाता है। कोल और हूवर के अनुसार १९८६ में जनसंख्या

उपर्युक्त दोनों अनुपातों से क्रमशः ७७५ लाख, ६१४ लाख, ५८१ लाख हो सकती है अर्थात् लगभग १ करोड़ का अन्तर हो सकता है।

अधिक तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या से आर्थिक विकास में क्या अंतर आता है इस पर दोनों लेखकों ने विचार किया है। वे निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :

"वे विचार सिद्ध करते हैं कि निम्न अनुपात की जनसंख्या-वृद्धि की स्थिति में कुल राष्ट्रीय आय १ वर्षों में २ प्रतिशत से कुछ अधिक बढ़ेगी जिसका अर्थ हुआ प्रतिवर्ष अनुपाततः १.८ प्रतिशत वृद्धि। इस वृद्धि में उत्तरोत्तर अधिक गति है, तीन प्रतिशत से शुरू होकर यह अन्त में जाके चार प्रतिशत हो जायगी। इसके विपरीत ऊँचे जन्मानुपात की स्थिति में राष्ट्रीय आय १ वर्षों में केवल १११ प्रतिशत बढ़ती है अर्थात् प्रतिवर्ष वृद्धि का अनुपात केवल २.८ प्रतिशत होता है, जो इस अवधि के अन्त में केवल १.७ प्रतिशत रह जाता है।

"प्रति उपभोक्ता की दृष्टि से देखा जाय तो अन्तर और भी अत्यधिक है। निम्न जन्मानुपात की स्थिति में इस अवधि में प्रति उपभोक्ता आय ९१ प्रतिशत हो जाती है और अन्तिम पाँच वर्षों में लगभग १ प्रतिशत प्रति वर्ष के अनुपात से बढ़ती है। ऊँचे जन्मानुपात की स्थिति में प्रति उपभोक्ता पीछे आय का बढ़ना १९७६ में रुक जाता है और उसके बाद वृद्धि की प्रवृत्ति अत्यल्प ह्रास में परिवर्तित हो जाती है। किसी भी समय में उपभोक्ता की स्थिति १९५६ की तुलना में २ प्रतिशत से अधिक अच्छी नहीं होती।

ऊँचे जन्मानुपात की स्थिति में १९८६ में राष्ट्रीय आय १९५६ के उत्पादन (१) के आधार पर २११ प्रतिशत होगी और प्रति उपभोक्ता आय, जो १९५६ में १ है, केवल ११४ होगी। निम्न जन्मानुपात हो तो राष्ट्रीय आय १ ७ प्रतिशत और प्रति उपभोक्ता आय १९१ प्रतिशत होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि जल्दी ही विकास की गति नहीं बढ़ानी

जाती, तो बढती हुई जनसख्या आगे बढ रहे विकास को पीछे ढकेल देगी। फिर, ३० वर्ष तक विकास के बाद यदि प्रति उपभोक्ता आय वस्तुत' अपरिवर्तित ही बनी रहे, तो क्या स्थिरता बनायी रखी जा सकती है? गतिहीनता और स्थिरता साथ-साथ नहीं चल सकती। विकास की तीव्र गति ही बढते हुए वेग को कायम रख सकती है, जनसख्या का बढना रोक सकती है, रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर सकती है और लोकतन्त्र की मर्यादा रख सकती है। समाजवाद को समस्या हल करनी है।

लोगों का नगर में जाकर बसना एशिया में अपनी अलग ही विशेषता रखता है। भारत में १९५१ में नगरों में रहनेवालों की सख्या साढे पाँच करोड थी। १९६१ में यह सख्या बढकर ८ करोड हो जाने की सम्भावना है और १९८६ तक १९ करोड ३० लाख तक जा सकती है। जब कि १९५१ में देश की जनसंख्या का केवल १७ प्रतिशत नगरों में था, १८८६ में ३७ प्रतिशत हो जायगा। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैक्सिको में जिसकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति हमसे बहुत भिन्न नहीं है, ४५ प्रतिशत जनसख्या नगरों में रहती है।

एशिया में यद्यपि नगरों में जनसख्या के १३ प्रतिशत लोग ही रहते हैं, तथापि उसमें ८ प्रतिशत से अधिक बड़े नगरों में रहते हैं। कृष्येतर (non-agricultural) श्रमिकों की संख्या मोटे तौर से ३० प्रतिशत है। पश्चिमी देशों, जैसे अमेरिका (१८५०), फ्रान्स (१८६०), जर्मनी (१८८०) और कनाडा (१८९०) में नगरीकरण (Urbanization) की ऐसी अवस्था में कृष्येतर व्यवसायों में लगे हुए श्रमिकों की संख्या मोटे तौर पर ५५ प्रतिशत थी। संसार के एक लाख से अधिक जनसख्या के ८९७ नगरों में ४६३ नगर ऐसे देशों में हैं, जहाँ आधी से अधिक जनसख्या खेती में लगी हुई है और ४३४ नगर उद्योगप्रधान देशों में हैं। प्रथम समूह के नगरों की जनसख्या मोटे तौर पर १६ करोड है और दूसरे समूह की लगभग साढे १५ करोड।

है कि अर्थ व्यवस्था में विकासवर्धक क्षेत्र किन तत्त्वों से बनता है ? वह क्षेत्र कोई भी हो और निश्चय ही यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है—इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि खाद्यान्न और वाणिज्यिक या नकदी फसलों का उत्पादन बढाना आवश्यक है। मेक्सिको में वास्तविक औद्योगिक विकास १९३९ में शुरू हुआ और तब से राष्ट्रीय उत्पादन प्रतिवर्ष ७ प्रतिशत के अनुपात से बढा है। २० वर्ष से कम की इस अवधि में कृषि उत्पादन ढाई गुना बढ गया है, जिसमें से ४० प्रतिशत उद्योगों के लिए कच्चा माल होता है। औद्योगिक क्रान्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक साथ साथ कृषि में भी क्रान्ति न हो। विकासवर्धक क्षेत्र उद्योग या उसके कुछ विभागों में होने के बावजूद विकास के गतिवेग को तब तक कायम नहीं रखा जा सकता, जब तक कृषि-क्षेत्र अपनी उत्पादन-शक्ति नहीं बढाता।

विकासवर्धक क्षेत्र

एशिया में जो स्थिति है, उसमें सामुदायिक भावना को पुनर्जीवित किये बिना कृषि उत्पादन नहीं बढाया जा सकता। प्रश्न यह नहीं है कि कितना लगाया जाता है और कितना प्राप्त होता है, बल्कि यह है कि जर्जर भूमि को फिर से ठीक हालत में किया जाय, सिंचाई की सुविधाओं को सुधारा जाय और खाद तैयार की जाय। संक्षेप में कह सकते हैं कि ये ऐसे कार्य हैं, जिन्हें सामुदायिक प्रयास से ही पूरा किया जा सकता है। अधिक उत्पादन आवश्यक है, किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि किसान को विपण्य अधिशेष (Marketed surplus) में वृद्धि की जाय। यही वह बचत है, जो औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की जरूरत को पूरा करती है।

उत्पादन में वृद्धि से विपण्य बचत स्वत नहीं बढ जाती, क्योंकि किसान में उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। निम्नलिखित तालिका, जो रूस द्वारा किये गये अनुभव को स्पष्ट करती है, इस सम्बन्ध में अपवाद नहीं है

पृथक् करके सोचने की भी है, जब कि दोनों का उत्तरोत्तर अधिक पारस्परिक सम्बन्ध ही विकास को तत्त्वपूर्ण बनाता है।

निस्सन्देह रूप से खेतिहर जीवन और औद्योगीकरण में कुछ द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व को बँधी हुई दृष्टि से नहीं दूर किया जा सकता। तीव्र गति से विकास ही इस आरम्भस्थ द्वन्द्व को उपयोगी सहयोग में बदल सकता है। उन्नत देशों की यही शिक्षा रही है। अलेक्जेण्डर गर्सचेंक्रोन ने अनुभव की समीक्षा इस प्रकार की है "१९वीं शताब्दी के यूरोप के आर्थिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह विचार बहुत दृढ हो जाता है कि भारी पैमाने पर औद्योगिक विकास होने से ही औद्योगीकरण के पूर्व की अवस्था और औद्योगीकरण से होनेवाले लाभ के बीच व्याप्त तनाव कठिनाइयों को समाप्त करता है और उन शक्तियों को पैदा करता है, जो औद्योगिक प्रगति में सहायक हों।"

बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास प्रारम्भ करने के लिए कई शर्तें पूरी करनी होंगी। सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि प्राथमिकता ऐसे उत्पादन कार्यों को दी जाय, जो यन्त्र और शिल्प कौशल में सुधार करें, उन्हें क्रान्तिकारी बना दें। इसका अर्थ यह हुआ कि इस्पात, कोयला और विद्युत् उद्योगों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। यही विकास-वर्धक क्षेत्र का हृदय है।

विकास का अर्थ है, पूरी उत्पत्ति के बचत का पुन विनियोजन, और श्रम तथा अन्य खर्चों का कम लगना। जो भी तरीका बचत को बढाता है, वह विकास को तेज बनाता है। वाल्टर गैलेनसन और हार्वे लायबेन्स्टाइन नामक दो अमेरिकी अर्थशास्त्रियों ने हाल में ही हिसाब लगाया था कि विभिन्न श्रेणी की सूती वस्त्रोत्पादन व्यवस्थाओं में रोजगार देने की कितनी क्षमता है। आँकड़े भारत के हैं और १९४३ की कीमतों तथा अवस्थाओं को आधार माना गया है। निष्कर्ष नीचे की तालिका में दिये गये हैं •

नित्यक्रम में उलट-पुलट स्वीकार करना।" ऐसी स्वीकृति किसानों और शिल्पियों को ही नहीं देनी है, बल्कि समाजवादियों को भी देनी है।

विकास और सामाजिक जागृति

जनता के कल्याण में समाजवादियों की गहरी दिलचस्पी और गहन सम्बद्धता है। आर्थिक समानता और सामाजिक सुरक्षा मुख्यत उन्हींके प्रयासों के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं। उत्पादन का चक्र तभी अर्थपूर्ण बनता है, जब उसकी इति उपभोग में हो और उपभोग उचित वितरण पर निर्भर हो। श्रमजीवी वर्ग के जीवन को उन्नत करने से ही उत्पादी प्रयासों को अर्थ और प्रवर्तक शक्ति मिलती है। सारे विकास में, दूसरे कार्यों की ही तरह असमानता की दबी हुई प्रवृत्ति रहती है, जैसा कि प्रोफेसर गुन्नार मिर्दल ने अपनी पुस्तकों में सिद्ध किया है।* असमानता नैतिक दृष्टि से ही अस्वीकार्य नहीं है, बल्कि आर्थिक दृष्टि से उस पर प्रतिबन्ध भी जरूरी है। समानतामूलक कार्यों को आगे बढाना, समानता स्थापित करना प्रगति के लिए सच्चे रूप में कार्य करना है। समानता और कल्याण पर जोर, जो समाजवाद की विशेषता है, कभी भी अधिक उग्र नहीं हो सकता।

अर्ध-विकसित देशों में उत्पादन-विधियों की वृद्धि ऐसे ही नहीं हो जायगी। उन विधियों को पूरी चेतना के साथ प्रश्रय देना पड़ेगा। जैसा लेनिन ने १९२३ में कहा था "हमें अब यह कहने का अधिकार है कि सहकारी समितियों की सीधी सादी वृद्धि की समाजवाद की वृद्धि से एकरूपता है। फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमने समाजवाद सम्बन्धी अपनी धारणा में बुनियादी रूप से परिवर्तन कर दिये हैं। यह बुनियादी परिवर्तन इस बात में है कि क्रान्ति के बाद, सत्ता छीनने के बाद, हमने शुरू में राजनीतिक युद्ध पर सबसे अधिक जोर दिया और हम इसके लिए बाध्य भी थे। अब जोर मुख्यत शान्तिपूर्ण एवं संगठनात्मक 'सांस्कृतिक' कार्य पर होना चाहिए।" समुचित

* देखिये—रिच लैण्ड्स एण्ड पूअर।

तेजी से लाभ करता है। साहसी राजनीतिज्ञ यह बात अच्छी तरह समझ सकता है कि उसके मतदाता इस निर्लज्जता को अपने बच्चों के लिए उस श्रेष्ठतर जीवन के बदले में सहन कर लेंगे, जिसे यह (लाभरूपी निर्लज्जता) अपने साथ लाती है।"*

लाभ को विनियोजन के रूप में कैसे मोड़ा जाय, यह ऐसी समस्या है, जिस पर बराबर ध्यान देने की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव है जब हम लाभ के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ना बन्द कर दें।

यह कार्य हमें अर्थ-व्यवस्था का मार्ग निर्धारित करने के प्रश्न के सामने लाकर खड़ा कर देता है। विकास, उत्पादन या उपभोग की ओर कौन-सी चीज अग्रसर करती है ? १९ वीं शताब्दी में गतिशीलता उत्पादन में निहित थी। जिस परस्पर प्रतिक्रिया से उत्पादन और उपभोग एक-दूसरे को बढ़ाते हैं, उसमें उपक्रामक या अगुआई करनेवाली अन्तः-प्रेरणा मुख्य रूप से उत्पादन के पक्ष से आती थी। विनियोजन और आय-वृद्धि की परस्पर क्रिया में कारणात्मक स्वत्व (Causal Claim) प्रधानत विनियोजन से आय की दिशा में बढ़ता था। उपभोग और माँग आश्रित की स्थिति में थी। प्रेरक शक्तियाँ प्रधानत उत्पादन तथा पूर्ति के साथ थीं। समाजवाद इस पद्धति को उलट देने की कोशिश करता है। उत्पादनवादी अर्थ-व्यवस्था में कठोरपन होता है। पश्चिम में कम सुविधा पाये हुए लोगों के लिए आर्थिक व्यवस्थाओं, सामाजिक सुरक्षा की कार्रवाइयों और कोयला उद्योग, रेलवे यातायात की तरह के एकाधिकारों के राष्ट्रीकरण जैसे सामाजिक सुधारों में बराबर होती जा रही वृद्धि के द्वारा इसकी बुराइयों को कमजोर कर दिया गया है। वितरणगत न्यायपरता उत्पादन-व्यवस्था को नियन्त्रित करती है। एशिया में क्या उचित वितरण उत्पादन-वृद्धि को कायम रख सकता है ? ऐसा न होने का परिणाम यह होगा कि हम विकास की प्रवृत्ति से विमुख होंगे। क्या योजना उत्पादन तथा वितरण के लिए सामान्य आधार प्रदान कर

* मौरिस मिनकिन डेवलपमेण्ट फॉर फ्री एशिया, पृ० ४३।

गी। इन नियमों में व्यवस्था है कि पारिश्रमिक में वृद्धि उत्पादन-क्षमता वृद्धि के मुकाबले बहुत धीमी गति से होनी चाहिए, क्योंकि उत्पादन-व्यय में कमी और विनियोजन के लिए अधिक सचय करने के लिए एकमात्र यही उपाय है।"

कम्युनिस्ट जब विरोध-पक्ष में रहते हैं, तब वे अधिक विनियोजन के उद्देश्य से लाभ बढाने के लिए घातक 'भ्रान्तिमूलक धारणा' को जान-बूझकर प्रश्रय देते हैं और आर्थिक वृद्धि के दृढ नियमों को धृष्टता के साथ अस्वीकार करते हैं। एक बार इतिहास में बतायी गयी चेष्टा के द्वारा सत्तारूढ़ हो जाने पर वे निर्णायक कलाबाजी दिखाते हैं। जरूर यह द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त है।

लोकतन्त्र और मानववाद में आस्था रखनेवाले समाजवादी 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाला आचरण नहीं कर सकते। उन्हें ज्ञान और व्यवहार का एक नियम लेकर मार्ग-दर्शन करना है।

कम्युनिस्ट यह तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं, जैसा कि कई एक समाज वादी भी कहते हैं कि एक बार उत्पादनशील शक्तियों का राष्ट्रीकरण कर दिये जाने के बाद पूँजी-सचय का सुगम और दूसरा गुणात्मक रूप हो जाता है। सारी गडबडियाँ निजी स्वामित्व मे ही निहित हैं, जो उत्पादनशील शक्तियों और उनकी उपयोगिता के बीच हस्तक्षेप करता है। इस हस्तक्षेप को समाप्त करने का अर्थ प्राचुर्य तथा समृद्धि के फाटक को खोल देना है। उस भ्रान्ति से मुक्त होना ही लोकतान्त्रिक समाज-वाद का आदि और अन्त है।

हमने बराबर विवेकपूर्ण समाजीकरण का पक्ष लिया है। कम्युनिस्ट जिस प्रकार का पूर्ण राष्ट्रीकरण करना चाहते हैं, उसका कोई आर्थिक औचित्य नहीं है। उसका केवल इतना ही राजनीतिक लाभ है कि वह समाज पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर देता है। कम्युनिस्टों के राष्ट्रीकरण का अर्थ-व्यवस्था के केवल प्रधान अंगों पर ही प्रभाव नहीं पडता, अपितु कृषि फार्म, छोटे-छोटे व्यवसाय, कल-पुर्जों के छोटे कारबार

आर्थिक विकास के लिए प्रेरक शक्ति उन लोगों से प्राप्त होती है जिनमें नयी खोज की प्रवृत्ति हो। एक ओर किसी वस्तु का नये तथा भिन्न ढग से उत्पादन करना और दूसरी ओर बहुत कुछ प्रचुर मात्रा में उत्पादन करना, नयी खोज के ये दो पहलू हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में इसे उपक्रमी (Entrepreneur) करता था और वह जोसेफ शम्पटर की कल्पना का ऐसा उपक्रमी था, जो नयी खोजों को प्रयोग में लाता था। इस प्रकार का उपक्रमी एशिया के देशों में नहीं है। कम्युनिस्ट व्यवस्था में इस कार्य को पार्टी कार्यकर्ता और कोमिस्सार (Commissar) करता है। समाजवादी व्यवस्था में रचनात्मक प्रवृत्ति को नये प्रयोगों से जाग्रत करना है, नयी सस्था, नये तरीके अपनाने हैं। कुछ स्थितियों में कारखानों पर मजदूरों का नियत्रण, कुछ स्थितियों में इजराइल की तरह उद्योग पर ट्रेड-यूनियनों का स्वामित्व, नये उपक्रमियों के प्रशिक्षण के लिए नये औद्योगिक सस्थान, सार्वजनिक निगम, सहकारिता प्रधान व्यवस्था और निजी स्वामित्व—यही सब समाजवादी भावना के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। इस प्रकार के प्रयोग से ही योग्य नायक और विकास का कार्य करनेवाले इंजीनियर वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से तैयार किये जायेंगे।

पूर्ण राष्ट्रीकरण मानता है कि राज्य अर्थात् उसके अंगों में किसी काम के लिए आगे बढने तथा उद्योग-सचालन की शक्ति निहित है। यह ऐसा ही प्रमाणरहित कथन है, जैसे यह मान लेना कि एशियाई अर्थ-व्यवस्था नवीन पूँजीवादी पद्धतियों से ही विकसित हो सकती है। ऐसी शक्तियों को बहुत सजगता से तैयार तथा नियंत्रित करना होगा।

नवीनताएँ तथा प्रयोग केवल व्यवस्था के स्तर तक ही सीमित नहीं हैं। शिल्प प्रक्रिया के लिए भी उनका महत्त्व कम नहीं है। औद्योगिक खोजों और प्रयोगों का रूप और अवस्था दोनों परिवर्तनशील हैं। यह ऐसा तथ्य है, जिसकी कम्युनिस्टों ने उपेक्षा की है और जिसे समाजवादियों ने अच्छी तरह से समझा नहीं है। हमें इस सत्य को समझना चाहिए कि

आर्थिक विकास के लिए प्रेरक शक्ति उन लोगों से प्राप्त होती है जिनमे नयी खोज की प्रवृत्ति हो। एक ओर किसी वस्तु का नये तथा भिन्न ढग से उत्पादन करना और दूसरी ओर बहुत कुछ प्रचुर मात्रा में उत्पादन करना, नयी खोज के ये दो पहलू हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में इसे उपक्रमी (Entrepreneur) करता था और वह जोसेफ शम्पटर की कल्पना का ऐसा उपक्रमी था, जो नयी खोजों को प्रयोग में लाता था। इस प्रकार का उपक्रमी एशिया के देशों में नहीं है। कम्युनिस्ट व्यवस्था में इस कार्य को पार्टी कार्यकर्ता और कोमिस्सार (Commissar) करता है। समाजवादी व्यवस्था में रचनात्मक प्रवृत्ति को नये प्रयोगों से जाग्रत करना है, नयी सस्था, नये तरीके अपनाने हैं। कुछ स्थितियों में कारखानों पर मजदूरों का नियत्रण, कुछ स्थितियों में इजराइल की तरह उद्योग पर ट्रेड-यूनियनों का स्वामित्व, नये उपक्रमियों के प्रशिक्षण के लिए नये औद्योगिक सस्थान, सार्वजनिक निगम, सहकारिता प्रधान व्यवस्था और निजी स्वामित्व—यही सब समाजवादी भावना के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। इस प्रकार के प्रयोग से ही योग्य नायक और विकास का कार्य करनेवाले इजीनियर वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से तैयार किये जायेंगे।

पूर्ण राष्ट्रीकरण मानता है कि राज्य अर्थात् उसके अगों में किसी काम के लिए आगे बढने तथा उद्योग-सचालन की शक्ति निहित है। यह ऐसा ही प्रमाणरहित कथन है, जैसे यह मान लेना कि एशियाई अर्थ-व्यवस्था नवीन पूँजीवादी पद्धतियों से ही विकसित हो सकती है। ऐसी शक्तियों को बहुत सजगता से तैयार तथा नियन्त्रित करना होगा।

नवीनताएँ तथा प्रयोग केवल व्यवस्था के स्तर तक ही सीमित नहीं हैं। शिल्प प्रक्रिया के लिए भी उनका महत्त्व कम नहीं है। औद्योगिक खोजों और प्रयोगों का रूप और अवस्था दोनों परिवर्तनशील हैं। यह ऐसा तथ्य है, जिसकी कम्युनिस्टों ने उपेक्षा की है और जिसे समाजवादियों ने अच्छी तरह से समझा नहीं है। हमें इस सत्य को समझना चाहिए कि

एशिया में उत्पादन के सम्बन्धों में ही नहीं अपितु उत्पादन की पद्धतियों में भी परिवर्तन करना पड़ेगा।•

आर्थिक विकास अकेले में प्रगति नहीं कर सकता। यदि तथा रचनात्मक प्रवृत्ति का बढ़ना कभी भी आर्थिक जीवन तक ही सीमित न रहेगा। एक बार ऐसे प्रसार जारी हो गए सारे कार्यकलापों को प्रभावित करेगी। जैसा कि प्रोफेसर जॉन नेफ ने अपनी पुस्तक 'कल्चरल फाउन्डेशन्स ऑफ इण्डस्ट्रियल सिविलाइजेशन' (औद्योगिक सभ्यता के सांस्कृतिक आधार) में सिद्ध किया है, 'कोई भी औद्योगिक क्रान्ति बिना बौद्धिक पुनरुत्थान के आगे नहीं बढ़ती। नये रचनात्मक उत्थान में मानव बुद्धि का पूर्ण योगदान विकास का आवश्यक लक्षण है। इस स्थिति में समाजवादियों का क्षेत्र राजनीति या अर्थनीति तक ही सीमित नहीं रह सकता संस्कृति के सारे क्षेत्र को उनकी सर्वव्यापिनी प्रेरणा प्राप्त होनी चाहिए और बदले में समाजवादियों को ऐसे योगदान से अपने को उत्तम बनाना चाहिए। शोषित और पीड़ित संसार में समाजवाद को अन्तःकरण की आवाज बनना है, उसे मानव-विचार को भविष्य की कल्पना और उस कल्पना को चरितार्थ करने की आस्था प्रदान करनी है।

• देखिये, [illegible]।